# स्वातंत्र्योत्तर प्रमुख हिन्दी महाकाव्यों का-

## काव्यशास्त्रीय अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

**शोध-प्रबन्ध**



शोध-निर्देशक

डा० विश्वम्भर सिंह भदौरिया
पूर्व प्राचार्य

अतर्रा महाविद्यालय, अतर्रा बांदा (उ० प्र०)

अनुसन्धात्री

श्रीमती ललिता देवी

'स्वातंत्र्योत्तर प्रमुख हिन्दी महाकाव्यों का काव्यशास्त्रीय अध्ययन'

(सन् 1948 से 1980 ई0 तक)


पृष्ठ संख्या

भूमिका

प्रथम अध्याय – १-३९

महाकाव्य के लक्षण

महाकाव्य के लक्षण, भारतीय मत, भामह का मत, दण्डी का मत, रूद्रट का मत, विश्वनाथ का मत। पाश्चात्य मत, अरस्तू का मत, डब्लू0पी0केर का मत, डिक्सन का मत, बावरा का मत। महाकाव्य के अनिवार्य लक्षण, (1) प्रबन्धात्मकता और छन्दोबद्धता (2) सर्गबद्धता (3) जीवन के समग्र रूप का चित्रण (4) शैली की गम्भीरता, उदात्तता और मनोहारिता (5) महत् उद्देश्य और जीवन-दर्शन।

द्वितीय अध्याय ४०-१०८

स्वातंत्र्योत्तर प्रमुख हिन्दी महाकाव्यों का स्वरूप-विवेचन

स्वातंत्र्योत्तर प्रमुख हिन्दी महाकाव्य और उनका कथानक, जननायक, अंगराज, वर्द्धमान, देवार्चन, रावण, जयभारत, पार्वती, मीरां, एकलव्य, तारकवध, कृष्णाम्बरी, लोकायतन, झाँसी की रानी, महाभारती, भगवान् राम, जानकीजीवन अरूणरामायण।

तृतीय अध्याय – १०९-१६३

रस-निष्पत्ति

रस की परिभाषा, रस के सहायक अंग, स्थायीभाव, संचारीभाव, विभाव, अनुभाव, रस-निष्पत्ति, रस-निष्पत्ति, के सम्बन्ध में विभिन्न आचार्यों के मत, भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक और अभिनव गुप्त, विश्वनाथ।

प्रमुख रस — शृंगार, करुण, अद्भुत, हास्य, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, शान्त और वात्सल्य। आलोच्य महाकाव्यों में रस-निष्पत्ति।

चतुर्थ अध्याय :— १६४-२५९

## अलंकार-विधान

अलंकार की परिभाषा, अलंकार और अलंकार्य का भेद, गुण और अलंकार में भेद, प्रसिद्ध अलंकारों के लक्षण और उदाहरण (1) शब्दालंकार — (1) अनुप्रास (2) यमक (3) वक्रोक्ति (4) वीप्सा (5) पुनरुक्तिवदाभास (6) पुनरुक्तिप्रकाश (7) चित्र (8) श्लेष। अर्थालंकार —(1) उपमा (2) मालोपमा (3) अनन्वय (4) असम (5) रूपक (6) उपमेयोपमा (7) उदाहरण (8) दृष्टान्त (9) अर्थान्तरन्यास (10) प्रतिवस्तूपमा (11) तुल्ययोगिता (12) दीपक (13) अपन्हुति (14) निदर्शना (15) उत्प्रेक्षा (16) अतिशयोक्ति (17) उल्लेख (18) स्मरण (19) सन्देह (20) भ्रान्तिमान् (21) प्रतीप (22) व्यतिरेक (23) तद्गुण (24) अतद्गुण (25) मीलित (26) उन्मीलित (27) कारणमाला (28) एकावली (29) काव्यलिंग (30) असंगति (31) परिकर (32) परिकरांकुर (33) परिवृत्त (34) परिसंख्या (35) व्याजस्तुति (36) प्रत्यनीक (37) अप्रस्तुत प्रशंसा (38) समासोक्ति, (39) मुद्रा (40) यथासंख्य (41) पर्यायोक्ति (42) विभावना (43) विशेषोक्ति। उभयालंकार —(1) संसृष्टि (2) संकर। कुछ पाश्चात्य अलंकार —(1) मानवीकरण (2) विशेषण विपर्यय। आलोच्य महाकाव्यों में अलंकार।

२६०-२८०

पंचम अध्याय

## वक्रोक्ति

वक्रोक्ति का स्वरूप और विकास, वक्रोक्ति के भेद, वर्ण-विन्यास वक्रता, पदपूर्वार्द्ध वक्रता पदपरार्द्ध वक्रता, वाक्यवक्रता, प्रकरण वक्रता, प्रबन्धवक्रता, आलोच्य महाकाव्यों में वक्रोक्ति।

षष्ठ अध्याय — २७१-३२१

## रीति और वृत्ति

रीति शब्द की परिभाषा, प्रमुख रीतियाँ (1) वैदर्भी रीति (2) गौड़ी रीति (3) पाँचाली रीति (4) लाटी रीति। वृत्ति का स्वरूप और परिभाषा, वृत्तियों के भेद (1) भारती वृत्ति (2) सात्वतीवृत्ति (3) कैशिकी वृत्ति (4) आरभटी वृत्ति। आलोच्य महाकाव्यों में रीतियाँ और वृत्तियाँ।

सप्तम अध्याय — ३२२-३४२

## ध्वनि

ध्वनि की परिभाषा, ध्वनि के भेद (1) लक्षणामूला या अविवक्षित वाच्य ध्वनि। (2) अभिधामूला या विवक्षितवाच्य ध्वनि। अविवक्षित वाच्यध्वनि के भेद -(क) अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि (ख) अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि। अभिधामूला या विवक्षित वाच्य ध्वनि के भेद (क) असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि (2) संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि। असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि के आठ भेद — रस, रसाभास, भाव, भावाभास, भावशान्ति, भावोदय, भावसन्धि, भावशबलता। संलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि के तीन भेद —(क) शब्दशक्तिमूलानुरणन् रूप-व्यंग्य ध्वनि (ख) अर्थशक्तिमूलानुरणन् रूप व्यंग्य ध्वनि (ग) उभय शक्तिमूलानुरणन् रूप व्यंग्य ध्वनि। आलोच्य महाकाव्योंमें ध्वनि का स्वरूप।

अष्टम अध्याय — ३४३-३६५

## औचित्य

औचित्य का स्वरूप, औचित्य के भेद, आलोच्य महाकाव्यों में औचित्य का स्वरूप।

नवम अध्याय — ३६६-४०४

## शब्द-शक्ति

शब्द-शक्ति की परिभाषा, और भेद, अभिधा, लक्षणा, व्यंजना। लक्षणा के भेद —रूढ़ा, लक्षणा, प्रयोजनवती लक्षणा। व्यंजना के भेद- शाब्दी व्यंजना, आर्थी व्यंजना। आलोच्य-महाकाव्यों में शब्द-शक्तियाँ।

दशम अध्याय ४०५-४२८

काव्य-गुण

काव्य-गुण की परिभाषा और उसके प्रमुख भेद – ओजगुण, प्रसादगुण, माधुर्यगुण। आलोच्य महाकाव्यों में काव्य-गुणों की स्थिति।

एकादश अध्याय ४२९-४६५

भाषा-शैली

भाषा का महत्त्व, शैली, शैली और व्यक्तित्व, शैली का बौद्धिक तत्त्व, शैली का भावतत्त्व, शैली का सौन्दर्य तत्त्व, पाश्चात्य विद्वानों द्वारा शैली तत्त्व की मीमांसा, प्लेटो, अरिस्टोटल, शोपेनहार, भारतीय विद्वानों द्वारा शैली पर विचार, रीति और शैली, शैली का व्यक्तिपक्ष, शैली का वस्तुपक्ष। आलोच्य महाकाव्यों में भाषा-शैली का स्वरूप।

उपसंहार ४६६-४८०

स्वातंत्र्योत्तर महाकाव्यों का काव्यशास्त्रीय अध्ययन, उपलब्धि और सीमाएँ।

परिशिष्ट – ४८१-४८४

उपजीव्य महाकाव्य

उपकारक ग्रन्थ-सूची

(1) संस्कृत ग्रन्थ (2) हिन्दी ग्रन्थ।

---

## भूमिका

भारतीय वाङ्मय में काव्य के दो भेद बतलाये गये हैं -(1) गद्यकाव्य (2) पद्यकाव्य। पद्यकाव्य के पुनः दो भेद होते हैं -(1) मुक्तक काव्य (2) प्रबन्धकाव्य। खण्डकाव्य और महाकाव्य; प्रबन्धकाव्य के ये दो रूप होते हैं। महाकाव्य काव्य के सभी रूपों में उत्तम माना गया है। भारतीय काव्यशास्त्र में जहाँ महाकाव्य के बृहत् आकार को महत्व प्रदान किया गया है, वहाँ उसके नायक की धीरोदात्तता और समग्र जीवन के चित्रण पर भी बल दिया गया है। भारत वर्ष में महाकाव्य के लक्षणों का बड़ी सूक्ष्मता के साथ विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। यदि हम इन सभी लक्षणों की कसौटी पर कस कर देखें, तो हिन्दी के 2, 4 काव्य ही महाकाव्य की परिधि में आ सकेंगे। अतएव महाकाव्य का स्वरूप-निर्धारण करते समय हमें उदारता से काम लेना होगा।

आधुनिक युग में हिन्दी में अनेक महाकाव्यों का प्रणयन हुआ है। इन महाकाव्यों को आधार बनाकर हिन्दी में अनेक शोध-प्रबन्ध लिखे गये हैं, जिनमें से 'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास (डा० शम्भूनाथ सिंह), 'आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्पविधान' (डा० श्यामनन्दन किशोर), 'हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य' (डा० शीला शर्मा), 'हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य (डा० गोविन्दराम शर्मा) और 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य (डा० निजामउद्दीन), प्रमुख हैं। परन्तु इन शोधप्रबन्धों में महाकाव्यों के कथानक के आधार पर उनका सामान्य विवेचन किया गया है, किन्तु उनका काव्यशास्त्रीय अध्ययन नहीं किया गया है। प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में पहली बार स्वातंत्र्योत्तर प्रमुख हिन्दी महाकाव्यों का काव्यशास्त्रीय तत्वों के आधार पर विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध एकादश अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों के मत से महाकाव्य के लक्षणों का उल्लेख किया गया है। भारतीय आचार्यों में भामह, दण्डी, रूद्रट, और विश्वनाथ के मत उद्धृत किये गये हैं। विश्वनाथ का महाकाव्य-लक्षण-निर्देश अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के लक्षण-निर्देशों की तुलना में व्यवस्थित और प्रांजल है। पाश्चात्य आचार्यों में अरस्तू, डब्लू0पी0केर, डिक्सन और बावरा के मतों की चर्चा की गयी है। अन्त में प्राच्य और पौरस्त्य विद्वानों के मतों में समन्वय स्थापित करते हुए महाकाव्य के निम्नांकित अनिवार्य लक्षण स्वीकार किये गये हैं (1) प्रबन्धात्मकता और छन्दोबद्धता (2) सर्गबद्धता (3) जीवन के समग्र रूप का चित्रण। (4) शैली की गम्भीरता और उदात्तता (5) महत् उद्देश्य और जीवन-दर्शन।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत सन् 1948 से 1980 ई0 तक की अवधि में प्रणीत प्रमुख हिन्दी महाकाव्यों के कथानक की समीक्षा करते हुए उनके स्वरूप पर विचार किया गया है। डा0निजामउद्दीन ने अपने शोध प्रबन्ध 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य में 25 महाकाव्यों' का विवेचन किया है। डा0 देवीप्रसाद गुप्त ने अपने आलोचना ग्रन्थ 'आधुनिक प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्य' में भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् के वर्षों लिखे गये 27 प्रमुख महाकाव्यों का उल्लेख किया है।[1] इनमें से रश्मिरथी, उर्मिला और उर्वशी का महाकाव्यत्व प्रबन्धात्मकता, महाकाव्य के लिए निर्धारित सर्ग-संख्या, कथानक के विस्तार और उसकी उपयुक्तता की दृष्टि से सन्दिग्ध है। इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर प्रमुख हिन्दी महाकाव्यों के रूप में मैंने निम्नांकित 17 महाकाव्यों का चयन किया है- जननायक, अंगराज, वर्द्धमान, देवार्चन, रावण, जयभारत, पार्वती, मीरा, एकलव्य तारकवध, कृष्णाम्बरी, लोकायतन, झांसी की रानी, महाभारती, भगवानराम, जानकी-जीवन, और अरुण रामायण। इस अध्याय के अन्त में रस, अलंकार, वक्रोक्ति, रीति,

---

1- आधुनिक प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्य-पृ0 43-44

ध्वनि, औचित्य, शब्दशक्ति, काव्य-गुण और भाषा-शैली को आलोच्य महाकाव्यों के काव्यशास्त्रीय अध्ययन का आधार माना गया है, जिनके आधार पर पृथक् पृथक् अध्याय में अध्येय महाकाव्यों का विवेचन किया गया है।

तृतीय अध्याय में रस-सामग्री का उल्लेख करते हुए रस-निष्पत्ति सम्बन्धी प्रमुख मतों की समीक्षा की गयी है। रसों की संख्या और उनके स्वरूप पर प्रकाश डालने के पश्चात् आलोच्यमहाकाव्यों में रस-निष्पत्ति की स्थिति पर विचार किया गया है। चतुर्थ अध्याय में अलंकारों की व्याख्या की गयी है। प्रमुख अलंकारों की परिभाषाओं का उल्लेख करने के पश्चात् अलंकार तथा अलंकार्य और अलंकार तथा गुण में भेद बतलाया गया है। इसके अनन्तर अध्येय महाकाव्यों में प्रतिपादित अलंकारों का उल्लेख किया गया है। पंचम अध्याय में वक्रोक्ति का स्वरूप और उसके भेदों का उल्लेख करने के पश्चात् प्रतिपाद्य महाकाव्यों में वक्रोक्ति की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

षष्ठ अध्याय में प्रमुख रीतियों – वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली और लाटी – तथा प्रमुख वृत्तियों – भारती, सात्वती, कैशिकी और आरभटी – के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए अध्येय महाकाव्यों में उनकी स्थिति पर विचार किया गया है। सप्तम अध्याय में ध्वनि की परिभाषा और ध्वनि के भेदों पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। इसके पश्चात् स्वातंत्र्योत्तर महाकाव्यों में ध्वनि की व्यंजना पर प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार अष्टम अध्याय में औचित्य के स्वरूप, उसके भेद और प्रतिपाद्य महाकाव्यों में औचित्य की अभिव्यक्ति पर विचार किया गया है। नवम अध्याय में शब्दशक्ति के तीन रूपों – अभिधा, लक्षणा, व्यंजना की विवेचना की गयी है और आलोच्य महाकाव्यों में उनकी स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

दशम अध्याय के अन्तर्गत प्रमुख काव्य-गुणों – ओज, प्रसाद और माधुर्य के स्वरूप पर विचार करने के पश्चात् आलोच्य महाकाव्यों में उनकी स्थिति की समीक्षा की गयी है। एकादश अध्याय में भाषा-शैली के सम्बन्ध में प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों के विचारों की व्याख्या करते हुए प्रतिपाद्य महाकाव्यों की भाषा-शैली पर विचार किया

गया है। उपसंहार के अन्तर्गत अध्येय महाकाव्यों के काव्यशास्त्रीय अध्ययन के फल-स्वरूप प्राप्त निष्कर्षों पर प्रकाश डाला गया है।

मैंने प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के लेखन में डा0 नगेन्द्र, डा0विजयपाल सिंह, डा0मुंशीराम शर्मा, डा0भगीरथ मिश्र, डा0 गोविन्द त्रिगुणायत, डा0 शम्भूनाथ सिंह, डा0 रघुनन्दन किशोर, डा0 वीणा शर्मा, डा0 देवीप्रसाद गुप्त, डा0 गोविन्द राम शर्मा, डा0 प्रतिपाल सिंह और डा0 निजामउद्दीन के ग्रन्थों से विशेष सहायता ली है। अतएव मैं इन सभी विद्वानों के प्रति कृतज्ञ हूँ। मैं अपने निर्देशक डा0 विश्वेश्वर सिंह भदौरिया, पूर्व प्राचार्य - अतर्रा महाविद्यालय अतर्रा(बाँदा) के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। उनके कुशल एवं विद्वत्तापूर्ण निर्देशन के अभाव में मेरे लिए यह शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करना सम्भव नहीं था। मेरे पिताजी, डा0विश्वम्भर दयाल अवस्थी, अध्यक्ष- हिन्दी-विभाग, अतर्रा महाविद्यालय, अतर्रा(बाँदा) ने सदैव मेरा उत्साह वर्द्धन किया है, किन्तु मैं उन्हें धन्यवाद देकर उनके स्नेह का मूल्य कम नहीं करना चाहती।

दिनांक 16-1-1985

विनीत

ललिता देवी

(श्रीमती ललिता देवी)

आत्मजा

डा0विश्वम्भर दयाल अवस्थी, अध्यक्ष-हिन्दी-विभाग

अतर्रा महाविद्यालय, अतर्रा(बाँदा)

## महाकाव्य के लक्षण

कवि काव्य के माध्यम से जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करता है।[1] उत्तमकाव्य लौकिक और पारलौकिक कल्याण का विधायक होता है। आचार्य विश्वनाथ के मत से काव्य के दो रूप होते हैं[2]— (1) श्रव्यकाव्य (2) दृश्यकाव्य। श्रव्यकाव्य तीन प्रकार का होता है —(1) गद्यकाव्य (2) पद्यकाव्य[3] (3) चम्पू।[4] पद्यकाव्य दो रूपों में उपलब्ध होता है— (1) मुक्तक काव्य (2) प्रबन्ध काव्य। प्रबन्धकाव्य के दो भेद होते हैं —(1) खण्ड काव्य (2) महाकाव्य। महाकाव्य काव्य के सभी रूपों में श्रेष्ठ माना जाता है, क्योंकि उसमें मानव-जीवन का व्यापक चित्रण उपलब्ध होता है। स्वातंत्र्योत्तर प्रमुख हिन्दी महाकाव्यों का काव्य-शास्त्रीय अध्ययन करने के पूर्व यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम महाकाव्य के लक्षणों का उल्लेख कर आलोच्य महाकाव्यों के महाकाव्यत्व की परीक्षा की जाये। अस्तु, प्रस्तुत अध्याय में महाकाव्य सम्बन्धी भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोणों का उल्लेख करते हुए उनके औचित्य पर विचार किया जायेगा।

### महाकाव्य के लक्षण :— (भारतीय मत)

भारतीय काव्यशास्त्र में विभिन्न आचार्यों ने महाकाव्य के लक्षणों का उल्लेख किया है। यहाँ प्रमुख आचार्यों के मतों का उपस्थापन किया जायेगा।

---

1 Poetry is the criticism of life.

2- दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्। (साहित्यदर्पण, षष्ठपरिच्छेद)

3- छन्दोबद्धपदं पद्यम्। (वही, 6/313)

4- गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते। (वही, 6/336)

**भामह का मत :—**

भामह के मत से महाकाव्य के निम्नांकित लक्षण होते हैं :—

(1) महाकाव्य सर्गबद्ध होता है।

(2) उसमें महान् चरित्रों का प्रतिपादन किया जाता है।

(3) उसकी भाषा शिष्ट एवं अलंकृत होती है।

(4) उसमें प्रसंगानुसार आक्रमण और युद्ध आदि का विस्तृत वर्णन किया जाता है।

(5) महाकाव्य में नायक का अभ्युदय दिखलाया जाता है। किसी अन्य पात्र के उत्कर्ष का वर्णन करते हुए किसी भी अवस्था में नायक के वध का उल्लेख नहीं होना चाहिए।

(6) उसमें नाटक की सभी सन्धियों (मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, और निर्वहण) तथा कार्यावस्थाओं (आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम) का उल्लेख किया जाता है।

---

1- सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च यत्।
अग्राम्यशब्दमर्थ्यं च सालंकारं सदाश्रयम्॥
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत्।
पंचभिः सन्धिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत्॥
चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत्।
युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्॥
नायकं प्रागुपन्यस्य वंशवीर्यश्रुतादिभिः॥
न तस्यैव वधं ब्रूयाद् अन्योत्कर्षाभिधित्सया॥
यदि काव्यशरीरस्य न स व्यापितयेष्यते।
न चाभ्युदयभाक्तस्य मुधादौ ग्रहणस्तवौ॥ (काव्यालंकार, प्रथम परिच्छेद/19-23)

(7) महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रतिपादन किया जाता है।

इस प्रकार भामह ने अपने लक्षणों में निम्नलिखित दृष्टिकोण का परिचय दिया है :—

(1) सर्गों में विभाजन से महाकाव्य में एक व्यवस्था आती है। नाटकीय संधियों और कार्यावस्थाओं के प्रयोग के द्वारा कथानक के विकास में क्रमबद्धता और कलात्मकता आती है।

(2) वर्णनात्मकता महाकाव्य के लिए अनिवार्य है, पर कथा के क्रम एवं मनोवैज्ञानिकता के निर्वाह के लिए अनावश्यक विस्तार का त्याग आवश्यक है।

(3) नायक का वध अशोभन है।

(4) महाकाव्य सोद्देश्य है, चार वर्गों की स्थिति यह प्रमाणित करती है।

<u>दण्डी का मत</u> :—

दण्डी ने महाकाव्य की जो परिभाषा दी है, वह परवर्ती अधिकांश आचार्यों, जैसे हेमचन्द्र, विश्वनाथ आदि के लिए पथप्रदर्शक बनी। किन्तु उनमें भामह द्वारा निर्दिष्ट सभी तत्त्वों को अन्तर्भुक्त करने के साथ ही कुछ अनावश्यक और विस्तृत तत्त्वों का सन्निवेश कर दिया गया है, जिससे महाकाव्य की सीमा बँध गयी है। दण्डी के अनुसार महाकाव्य के प्रमुख स्थायी लक्षण निम्नांकित हैं[1]—

---

1- सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्॥
इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलायत्तं चतुरोदात्तनायकम्॥
नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनैः।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः॥
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः।
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि॥ (शेष पृष्ठ 4 पर)

(1) महाकाव्य सर्गबद्ध हो, पर सर्ग न बहुत बड़े हों और न बहुत छोटे।

(2) महाकाव्य का प्रारम्भ आशीर्वाद, देवस्तुति या ग्रन्थ के कथानक के संकेत देने वाले वस्तु से हो।

(3) कथानक इतिहास, लोक प्रचलित कथा या अन्य सद्वृत्त पर आधारित हो।

(4) उसमें धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष — इन चार मानव-लक्ष्यों का उल्लेख हो।

(5) नायक विदग्ध और उदात्त हो।

(6) महाकाव्य प्रकृति, नगर, समुद्र, ऋतु, चन्द्रोदय, सूर्योदय, उत्सव-वर्णन, उद्यान-विहार, जलक्रीड़ा, मधुपान, कुमार-जन्म, विवाह, विप्रलम्भ, मिलन, मंत्रणा, दूतप्रयाण, युद्ध और नायक के अभ्युदय सूचक प्रसंगों के वर्णन से युक्त हो।

---

अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरन्तरम्।

सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः।

सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरंजकम्।

काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सदलंकृति॥

न्यूनमप्यत्र यैः कैश्चिदंगैः काव्यं न दुष्यति।

यद्युपात्तेषु सम्पत्तिराराधयति तद्विदः॥

गुणतः प्रागुपन्यस्य नायकं तेन विद्विषाम्।

निराकरणमित्येष मार्गः प्रकृतिसुन्दरः॥

वंशवीर्यश्रुतादीनि वर्णयित्वा रिपोरपि।

तज्जयान्नायकोत्कर्षवर्णनं च धिनोति नः॥

— काव्यादर्श, 1/14-22

(7) उसमें अलंकार, रस और भाव का चित्रण होना चाहिए।

(8) महाकाव्य के सर्गों में भिन्न-भिन्न वृत्तों का प्रयोग हो।

(9) उसमें नाटकीय संधियाँ हों।

**भामह और दण्डी के विचारों की पारस्परिक तुलना और निष्कर्ष :—**

भामह और दण्डी के विचारों की तुलना करते हुए हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं —

(1) दण्डी ने भामह के विचारों को अपनी परिभाषा में अन्तर्भुक्त किया है।

(2) दण्डी ने सर्गों के आकार को नियमित रखने की सलाह दी है।

(3) प्रारम्भ में मंगलाचरण और स्तुति की आवश्यकता बतलाकर जहाँ दण्डी ने भारतीय दृष्टि की पवित्रता का स्मरण दिलाया है, वहीं आगे आने वाले महाकवियों पर एक अनावश्यक बोझ डाल दिया है।

(4) भामह ने केवल महान् चरित्रों की गाथा को महाकाव्य के लिए पर्याप्त माना था। दण्डी ने इसका स्पष्टीकरण कर इतिहास, लोक प्रचलित कथा या सद्वृत्त को महत्त्व प्रदान किया। यहाँ भामह के कथन का ही विस्तार है।

(5) भामह के चतुर्वृत्त और नाटकीय संधियों को दण्डी ने ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है।

(6) दण्डी ने चतुर और उदात्त की विशेषताओं को जोड़कर नायक का महत्त्व घटा दिया है। इसमें भामह के महान् शब्द की व्यापकता नहीं रही।

(7) दण्डी ने जहाँ यह कहा है कि 'सर्गैरनतिविस्तीर्णैः' वहाँ भामह ने लिखा 'नातिव्याख्येयमृद्धिमत्' अर्थात् दण्डी ने जहाँ सिर्फ सर्गों के न बहुत बड़ा और न छोटा होने का लक्षण निर्धारित किया, वहाँ भामह ने व्याख्या की अधिकता का बोध कराकर संकेत से कथाशिल्प की सार्थकता के लिए उसे वर्जित बतलाया।

(8)

(8) दण्डी ने लोकरंजन जैसे सामाजिक तत्त्व पर जोर दिया है।[1]

रुद्रट का मत :-

सातवीं शताब्दी में रुद्रट नामक एक विलक्षण आचार्य हुए, जिन्होंने महाकाव्य का लक्षण निर्धारित करते समय पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा उपलक्षित वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त प्राकृत और अपभ्रंश के महाकाव्यों को भी आधार बनाया।[2]

---

1- आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान, डा० श्याम नन्दन किशोर, पृ० 32-70

2- सन्ति द्विधा प्रबन्धाः काव्यकथाख्यायिकादयः काव्ये।

उत्पाद्यानुत्पाद्या महल्लघुत्वेन भूयोऽपि॥

तत्रोत्पाद्या येषां शरीरमुत्पादयेत्कविः सकलम्।

कल्पितयुक्तोत्पत्तिं नायकमपि कुत्रचित्कुर्यात्॥

पंजरमितिहासादे प्रसिद्धमखिलं तदेकदेशं वा।

परिपूरयेत् स्ववाचा यत्र कविस्ते त्वनुत्पाद्याः॥

तत्र महान्तो येषु च विततेष्वभिधीयते चतुर्वर्गः।

सर्वे रसाः क्रियन्ते काव्यस्थानानि सर्वाणि॥

ते लघवो विज्ञेया येष्वन्यतमो भवेच्चतुर्वर्गात्।

असमग्रानेकरसा ये च समग्रैकरसयुक्ताः॥

तत्रोत्पाद्ये पूर्वं सन्नगरीवर्णनं महाकाव्ये।

कुर्वीत तदनु तस्यां नायकवंशप्रशंसां च॥

तत्र त्रिवर्गसक्तं समुद्भवशक्ति सर्वगुणयुक्तम्।

रक्तसमस्तप्रकृतिं विजिगीषुं नायकं न्यस्येत्॥

विधिवत् परिपालयतः सकलं राज्यं च राजवृत्तं च।

तस्य कदाचिदुपेतं शरदादिं वर्णयेत् समयम्॥

(1) महाकाव्य में ऐसी कथा की आवश्यकता होती है; जो उत्पाद्य, अनुत्पाद्य, महत्‌लघु हो।

(2) इसमें प्रसंगानुकूल अवान्तर कथाओं की योजना होती है।

(3) सन्धिबद्धता और नाटकीय तत्वों की योजना इसका अनिवार्य तत्व है।

(4) इसमें समग्र जीवन का चित्रण प्रधान घटना के क्रोड़ में प्रकृति-चित्रण, देश, नगर आदि का वर्णन होता है।

(5) महाकाव्य का नायक द्विज, सर्वगुण सम्पन्न, महावीर, विश्वविजयी, शक्तिशाली, नीति-निपुण और सुयोग्य सम्राट् होता है।

(6) महाकाव्य में प्रतिनायक और उसके वीर का वर्णन किया जाता है।

(7) प्रतिनायक पर नायक की विजय दिखलायी जाती है। ~~इसके~~

(8) इसमें फल के रूप में चतुर्वर्ग की प्राप्ति दिखलायी जाती है।

(9) महाकाव्य में दिव्य और अतिमानवीय कार्यों का वर्णन होना चाहिए; परन्तु इसमें ~~और~~ अविश्वसनीय घटनाओं का उल्लेख नहीं होना चाहिए।

<u>निष्कर्ष :—</u>

रुद्रट के लक्षणों के परीक्षण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि —

(1) रुद्रट अपेक्षाकृत अधिक उदार लक्षणकार हैं।

(2) यहाँ विकसनशील और अपभ्रंश-प्राकृत के महाकाव्यों को भी महत्त्व प्रदान किया गया है।

(3) मंगलाचरण आदि रूढ़ियों का परित्याग किया गया है।

(4) केवल अलंकरण को महाकाव्यों का आदर्श नहीं माना गया है।

~~(5) केवल अलंकरण को महाकाव्यों का आदर्श नहीं गया है।~~

(5) रुद्रट ने मनुष्य के आचरण की स्वाभाविकता को समझा है। उन्होंने अविश्वसनीय कार्यों को केवल गन्धर्व आदि की सहायता से ही करवाना उचित समझा है, मनुष्य के माध्यम से नहीं, यह एक बहुत बड़ी विशेषता मानी जा सकती है, जिसका आधुनिक युग में विकास हुआ। आधुनिक युग में दैवी सहायता को भी अस्वाभाविक मानकर केवल मानवोचित

गणित को ही वर्णनीय माना गया है। यहाँ तक कि देवचरितों को भी मानवानुकूल बनाया गया है।

(6) रूद्रट के द्वारा अवान्तर कथाओं को महाकाव्य का सहायक तत्व माना गया है।[1]

विश्वनाथ का मत :-

चौदहवीं शताब्दी के महान् आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य के अपने सभी आदर्श अब तक के आचार्यों के मतों की व्याख्या के रूप में रखे फिर भी दण्डी के मत का इन पर विशेष प्रभाव दिखलायी पड़ता है। इनके लक्षण अत्यन्त विस्तृत और महाकाव्य के अनावश्यक और रूढ़ लक्षणों से भी युक्त हैं, जैसे महाकाव्य में कम से कम आठ सर्गों का होना, मंगलाचरण, वस्तु निर्देश आदि की योजना।[2]

---

1- आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प-विधान- डा0 श्यामनन्दन किशोर, पृ0 32-60

2- सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।

सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ॥

एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ॥

शृंगार वीर शान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।

अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटक संधयः ॥

इतिहासोद्भवं वृत्तम् अन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।

चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्॥

आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।

क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्॥

एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्य वृत्तकैः ।

नातिस्वल्पाः नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह॥

नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन् दृश्यते।

सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनम् भवेत्॥ (शेष पृष्ठ 10 पर)

**लक्षणों का विश्लेषण :-**

आचार्य विश्वनाथ के लक्षणों के विश्लेषण से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं —

(1) महाकाव्य का कथानक सर्गबद्ध होना चाहिए।

(2) उसका नायक सुर या सद्वंशीय क्षत्रिय हो, उसमें धीरोदात्त नायक के गाम्भीर्य, क्षमाशीलता, आत्मश्लाघाहीनता, स्थिरता, तथा स्वाभिमान आदि गुण होने चाहिए।[1] एक वंश के कई राजाओं में भी ये गुण हो सकते हैं और वे भी नायक हो सकते हैं।

(3) महाकाव्य में श्रृंगार, वीर और शान्त रस में से कोई एक प्रधान रस हो और अन्य रस उसके सहायक हों।

(4) कथावस्तु में सभी संधियाँ हों।

---

* संध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासराः।

प्रातर्मध्यान्हमृगया शैलर्तुवनसागराः॥

संयोग विप्रलम्भौ च मुनि स्वर्गपुराध्वराः।

रणप्रयाणो पयममंत्र पुत्रोदयादयः॥

वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह।

कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा॥

नामास्य सर्गोपादेय कथया सर्गनाम तु।

अस्मिन्नार्षे पुनः सर्गाः भवन्त्याख्यान संज्ञकाः॥

(साहित्यदर्पण/षष्ठपरिच्छेद/315-328)

1- अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः।

स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः॥ (वही, 3/32)

(5) कथानक इतिहास प्रसिद्ध हो या सज्जन-चरित्र से सम्बद्ध हो।

(6) नायक के जीवन का लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी चतुर्वर्ग की प्राप्ति हो।

(7) प्रारम्भ में मंगलाचरण, ईश्वर-वन्दना, आशीर्वाद या कथा-वस्तु के निर्देश के बाद सज्जनों की प्रशंसा और असज्जनों की निन्दा हो।

(8) सर्ग के अन्त में छन्द बदल जाये, पर कथा प्रवाह के लिए छन्द की एकरसता आवश्यक है। किसी किसी सर्ग में अनेक छन्द भी हो सकते हैं।

(9) महाकाव्य में कम से कम आठ सर्ग हों, जो न तो बहुत बड़े हों और न बहुत छोटे।

(10) यथास्थान और यथावसर सन्ध्या, सूर्य चन्द्र, रात्रि प्रदेश, अन्धकार, दिवा, प्रभात मध्यान्ह, मृगया, पर्वत ऋतुओं वनों सागरों, सम्भोग, विप्रलम्भ, ऋषियों, नगरों, यज्ञों, युद्धों, आक्रमणों, विवाह, कुमारजन्म आदि विषयों का सांगोपांग चित्रण हो।

(11) सर्ग के अन्त में आगे आने वाली कथा की सूचना (पूर्वाभास) हो।

(12) महाकाव्य का नाम कवि, कथानक, नायक या अन्य पात्र पर हो सकता है, परन्तु प्रत्येक सर्ग का नाम उसके वर्ण्य-विषय के आधार पर ही होना चाहिए।

समीक्षा और निष्कर्ष :—

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि विश्वनाथ ने अपने लक्षणों के निर्धारण में महाकाव्य के प्राचीन और नवीन लक्षणों का सम्मिश्रण किया है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्य — भामह, दण्डी, आदि के मतों को स्वीकार करते हुए भी कुछ ऐसे तथ्यों का विधान किया है, जो महाकाव्य के अनिवार्य लक्षण नहीं हैं। दण्डी की तरह शिशुपालवध, किरातार्जुनीयम्, नैषधचरित, रघुवंश आदि महाकाव्यों को आधार मानकर भी जिन नये तत्वों का उद्घाटन इन्होंने किया, उनका प्रभाव तो परवर्ती प्राचीन महाकाव्यों की रचना पर पड़ा, किन्तु आधुनिक युग में वे लक्षण महाकवियों द्वारा अस्वीकृत हो गये।

विश्वनाथ ने महाकाव्य सम्बन्धी कुछ ऐसे लक्षणों की ओर इंगित किया, जिनसे उनकी परिभाषा अधिक विस्तार पा सकी। यथा —

(1) अब तक सर्गों की संख्या निश्चित नहीं थी। विश्वनाथ ने कम से कम आठ सर्गों का होना अनिवार्य माना।

(2) जहाँ दण्डी ने 'सर्गैरनतिविस्तीर्णैः' लिखा, वहाँ विश्वनाथ ने 'नातिस्वल्पानातिदीर्घा' लिखकर सर्गों की लम्बाई के साथ ही छोटाई के सम्बन्ध में भी निर्देश किया। अब तक एक सर्ग में जहाँ एक ही छंद के प्रयोग की आवश्यकता मानी जाती थी, वहाँ विश्वनाथ ने एक सर्ग में अनेक छंदों के प्रयोग को अपवाद के रूप में स्वीकार कर लिया —

नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।

(3) नायकों के सम्बन्ध में कुछ और विशिष्ट गुणों का आरोप करके उन्होंने नायकों के चुनाव - सम्बन्धी क्षेत्र को सीमित कर दिया।

(4) विश्वनाथ ने शान्त और करुण रस को प्रधान रसों की सूची से अलग कर दिया, जो उनके दृष्टिकोण की संकीर्णता का परिचायक है।

(5) विश्वनाथ ने वर्णन-सम्बन्धी सूची को और भी विस्तृत कर दिया, फलतः भविष्य में महाकाव्य के नाम पर आने वाली रूढ़िबद्ध रचनाओं में अनावश्यक रूप में जगत् की अनेक वस्तुओं की निर्जीव सूची आने लगी।

(6) विश्वनाथ के अनुसार एक वंशीय अनेक राजा एक महाकाव्य के नायक हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में प्रायः कथानक के प्रवाह और रसानन्द में बाधा ही उपस्थित होती है। रघुवंश की तरह के सुनियोजित महाकाव्य कितने लिखे जा सकते हैं? हिन्दी में [illegible] में यह प्रयोग असफल रहा।

## पाश्चात्य मत

**पाश्चात्य काव्य शास्त्रियों के मत से महाकाव्य के लक्षण :—**

महाकाव्य ( Epic ) के स्वरूप और परिभाषा के सम्बन्ध में पाश्चात्य विचारकों में भी ~~इस सम्बन्ध में~~ बहुत अधिक गवेषणा हुई है। यद्यपि भारतवर्ष में काव्य शास्त्र की विचार-पद्धति अधिक प्राचीन और व्यापक है, परन्तु दोनों विचारधाराओं के प्रमुख विद्वानों के मतों का विश्लेषण और परीक्षण आवश्यक है। अतः यहाँ प्रमुख पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों के मत से महाकाव्य के लक्षणों का उल्लेख किया जायेगा।

**अरस्तू का मत :—**

अरस्तू ने कला और साहित्य के क्षेत्र में अनुकरण को बहुत अधिक महत्व प्रदान किया है। अरस्तू के विचारों का विश्लेषण निम्नांकित बिन्दुओं में किया जा सकता है—[1]

(1) महाकाव्य में महच्चरित्र का वर्णन और उसके चारित्र्य का अनुकरण होता है।

(2) महाकाव्य में आनन्द प्रदान करने की क्षमता होती है

---

1 Epic Poetry agrees so far with Tragic, as it is imitation of great Characters and actions by means of words. It makes use of only one kind of metre throughout, and it is narrative.

Aristotle's poetics – Demetrius
Page 13

~~१- अरस्तू का काव्यशास्त्र, अनुवादक — डॉ० नगेन्द्र, पृ० ६१~~

(3) उसमें आदि से अन्त तक एक ही छन्द प्रयुक्त होता है।

(4) उसमें अन्विति (यूनिटी) का पूर्ण निर्वाह होता है।[1]

वस्तुतः अरस्तु ने महाकाव्य के सम्बन्ध में यह विचार ट्रेजडी की तुलना करते हुए व्यक्त किया है। अरस्तु ने भारतीय आदर्शों के अनुकूल महच्चरित्र का वर्णन स्वीकार करते हुए भी उसकी कुछ दुर्बलताओं को स्वीकार किया है। इस दिशा में वे तासो से भिन्न और ड्राइडेन से अभिन्न हैं, क्योंकि तासो चरित्र नायक को पूर्णतः निर्दोष होना आवश्यक समझता है। ड्राइडन इसे आवश्यक नहीं मानता। महाकाव्य की समयसीमा के सम्बन्ध में अरस्तु के विचार मिन्टरनो, होरेस और जिराल्डी से भिन्न हैं, क्योंकि मिन्टरनो ने एक साल के घटना-क्रम को स्वीकार किया है, होरेस ने इसका यथेष्ट विस्तार आवश्यक माना है और जिराल्डी ने नायक के पूरे जीवन वृत्त का चित्रण अनिवार्य माना है।

डब्लू०पी०केर का मत :-

डब्लू०पी०केर ने महाकाव्य को एक विकसनशील प्रक्रिया मानते हुए बौद्धिक और कल्पनाशील स्वतंत्रता की ओर उसकी गति मानी है। उन्होंने महाकाव्य की विषयवस्तु के अन्तर्गत बहुत से विषयों का समावेश किया है[2] और महाकाव्य को साहित्य की अन्य कोटियों की अपेक्षा सर्वाधिक गंभीर और प्रमुख समझा है।

---

1- अरस्तु का काव्यशास्त्र, अनुवादक- डा०नगेन्द्र, पृ० 6।

2. Epic poetry is one of the complex and comprehensive kinds of Literature, in which most of the other kinds may be included - romance, history, commedy, Tragical, historical, Sufficiently Various denote the variety of the Iliad and The Odessey.

English Epic and Heroic Poetry - Page 16

**डिक्सन का मत :-**

डिक्सन ने अपनी पुस्तक 'इंगलिश एपिक एण्ड हिरोइक पोयट्री' के 'द आइडिया आफ एपिक' प्रकरण में महाकाव्य के स्वरूप का विवेचन करते हुए उसे किसी युगविशेष की आवश्यकता और देन माना है और महाकवि की विशिष्टता को युग सापेक्ष कहा है।

एबरक्रोम्बी ने महाकाव्य की रचना का विवेचन करते हुए विषय-वस्तु और शैली दोनों का मूल्यांकन किया है और यह बताया है कि महाकाव्य के निर्माण के लिए महाकाव्यात्मक तत्वों का कहाँ तक हाथ है। उन्होंने वस्तु और शैली की परम्परा को स्वीकार करते हुए महाकाव्य में अन्य काव्यों की अपेक्षा इसका उपयोग अधिक आवश्यक और कौशलपूर्ण माना है।[1] महाकवि परम्परा के बिखरे तारों को जोड़कर मनोनुकूल राग निकालता है। उन्होंने माना है कि प्रत्येक कवि अपने समय के महाकाव्य को दृष्टि में रखकर महाकाव्य की रचना करता है। अतः उन्होंने युग सापेक्ष परिभाषा को भी मान्यता दी है। उनके विचार से जिस काव्य को पढ़ने से पैराडाइजलास्ट' अथवा इलियड आदि को पढ़ने जैसे भाव मिलें, वह महाकाव्य है।

**बावरा का मत :-**

सी०एम०बावरा ने 'फ्राम वर्जिल टू मिल्टन' में महाकाव्य के सम्बन्ध में जो परिभाषा दी है, उसके अनुसार महाकाव्य में निम्नांकित तत्व होने चाहिए।[2]

---

1. The Epic poem has behind him a Tradition of matter and a Tradition of Style; and That is what every other poetry has behind him Too; only for The Epic poem The Tradition is rather narrower, rather more strictly compelling.
The Epic – Page 19
2. The Epic – Page 1

(1) इसमें कथात्मकता हो, और इसका आकार बड़ा हो।

(2) इसमें महत्त्वपूर्ण और गरिमामयी घटनाओं का वर्णन हो।

(3) युद्ध आदि बड़े कार्यों का वर्णन हो।

(4) आनन्द की उपलब्धि हो।

(5) मनुष्य में महत्ता, गौरव आदि भावों को जगाने वाले तत्त्व हों।

श्री बावरा ने संक्षेप में महाकाव्य के सभी भावात्मक और आन्तरिक तत्त्वों की चर्चा की है, परन्तु उनकी [illegible] परिभाषा में बाह्य तत्त्वों का समावेश नहीं है।

पौरस्त्य विद्वानों की भाँति ही पाश्चात्य आलोचकों के महाकाव्य सम्बन्धी मतों की विभिन्नताओं के बीच भी बहुत कुछ समानता है। कुछ हद तक बाह्य लक्षणों में अन्तर होते हुए भी आन्तरिक लक्षणों में साम्य है।

<u>पाश्चात्य विचारकों के मत से महाकाव्य के रूप और उनके पारस्परिक भेद :-</u>

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार दो प्रकार के महाकाव्य होते हैं —(1) संकलनात्मक, प्राकृतिक, संचित या विकसनशील महाकाव्य (दि एपिक आफ ग्रोथ, या आथेन्टिक एपिक) और (2) कलात्मक साहित्यिक या अलंकृत महाकाव्य (दि एपिक आफ आर्ट या लिटरेरी एपिक)। जहाँ पहली कोटि की रचना अनेक व्यक्तियों की प्रतिभा का प्रसाद होती है, वहाँ दूसरी कोटि की रचना किसी एक कलाकार की देन होती है।

स्वभावतः पहले में स्वाभाविकता, अकृत्रिमता और विकसनशीलता होती है और दूसरे में आलंकारिकता, कलात्मकता और सुनियोजना होती है। 'इलियड और ओडेसी, रामायण, महाभारत और पृथ्वीराज रासो इसी कोटि की रचनाएँ हैं। पैराडाइज लास्ट, रघुवंश, कुमारसम्भव, कामायनी, साकेत आदि दूसरी कोटि की रचनाएँ हैं। पहली कोटि के महाकाव्य जहाँ मुख्यतः गेय होते हैं वहाँ दूसरी कोटि की रचनाएँ मुख्यतः पाठ्य होती हैं।[1]

## महाकाव्य के प्रमुख तत्व

**कथानक :—**

यद्यपि दोनों ही दृष्टियों से महाकाव्य का कथानक लोक प्रसिद्ध अथवा ऐतिहासिक होता है, तथापि पौरस्त्य महाकाव्यों में समय का प्रसार पाश्चात्य महाकाव्यों की अपेक्षा अधिक होता है। इलियड और ओडसी जैसे विशालकाय महाकाव्यों की घट-नायें कुछ दिनों के भीतर ही घटित होती हैं; पर महाभारत, रामायण आदि ग्रन्थों में युग-युग की घटनायें संगृहीत हैं।

(2) दोनों ही दृष्टियों से नायक धीर, महान्, तथा जातीय गौरव और संस्कृति का अग्र-दूत होता है। लेकिन आदर्श प्रधान देश भारत नायक के आदर्श चरित्र और लोकोन्नायक व्यक्तित्व को महाकाव्य में चित्रित करता है, जबकि 'पैराडाइज लास्ट' की भाँति पाश्चात्य महाकाव्यों के नायक पराजय या पतन की ओर भी उन्मुख दिखलाये जा सकते हैं। हमारे यहाँ के महाकाव्यों में शरीर बल की अपेक्षा आत्मिक बल की प्रधानता स्वीकार की गयी है। बलवीर ही नहीं हमारे नायक सत्यवीर, दानवीर, धर्मवीर भी होते हैं।

**रस :—**

हमारा दृष्टिकोण संघर्ष को नहीं, आनन्द, शान्ति और वैराग्य को प्रधानता देता है। पाश्चात्य देशों की संघर्ष प्रधान संस्कृति के अनुरूप उनके महाकाव्यों के नायक युद्ध-प्रेमी अत: दिखलायी पड़ते हैं। हमारे महाकाव्यों में शृंगार, वीर या शान्त रस की प्रधानता होती है, किन्तु पाश्चात्य महाकाव्यों में वीर रस की ही प्रधानता होती है।

**अलौकिकता :—**

अलौकिक घटनाओं और अदृश्य शक्तियों का जितना प्रभाव पाश्चात्य महाकाव्यों में है, उतना पौरस्त्य महाकाव्यों में नहीं। हमारे यहाँ इन शक्तियों का स्थान गौण है। वे अप्रत्यक्ष रूप से मानव क्रियाकलापों की सहायक मात्र होती हैं। दूसरी बात यह है

कि हमारा देश कर्मवाद तथा भाग्यवाद का समन्वय दिखलाता है, उसके विपरीत पाश्चात्य महाकाव्यों में दैवीशक्ति का निर्मम रूप ही दिखलायी पड़ता है, जो मानव को सुख की अपेक्षा दुःख प्रदान करने में अधिक प्रसन्न होती है।

<u>छन्द :—</u>

हमारे यहाँ सर्ग के अन्त में छन्द के बदलने और अनेक छन्दों के प्रयोग की छूट है जबकि विदेशी महाकाव्यों में एक ही छन्द का प्रयोग भर किया जाता है। भारतीय महाकाव्यों में रसानुकूलता तथा भावानुकूल छन्दों के प्रयोग की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

<u>आकार :—</u>

प्राचीन पाश्चात्य महाकाव्यों की अपेक्षा भारतीय महाकाव्यों का आकार काफी बड़ा है। पाश्चात्य महाकाव्य इलियड और ओडसी तो आकार में बहुत ही छोटे हैं। यहाँ तक कि वे दोनों मिलाकर भी रामायण से छोटे हैं। महाभारत तो दोनों से लगभग आठ गुना बड़ा है।

<u>निष्कर्ष :—</u>

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन ऊपरी अन्तरों के होते हुए भी महाकाव्य की महाप्राणता, कथावस्तु की व्यापकता, नायक की महत्ता, वर्णन की प्रचुरता, वाक्-शैली की गरिमा आदि पर पूर्वी और पश्चिमी दोनों ही आचार्यों ने बल दिया है।

डा० देवीप्रसाद गुप्त ने अपनी पुस्तक 'आधुनिक प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्य' में महाकाव्य के सकल लक्षणों का समाहार निम्नांकित चार शीर्षकों के अन्तर्गत किया है, जिन्हें महाकाव्य-रचना के रस विधायक तत्व कहा जा सकता है।[1]

---

1- आधुनिक प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्य, पृ० 24

(1) लोक प्रख्यात कथानक

(2) उदात्त चरित्र-सृष्टि

(3) विशिष्ट रचना-शिल्प

(4) महत् उद्देश्य और जीवन-दर्शन

**(1) लोक प्रख्यात कथानक :—**

महाकाव्य-रचना का सर्वप्रमुख और अनिवार्य तत्व कथानक है। कथातत्व के अभाव में महाकाव्य-सृजन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। महाकाव्य के कथानक में दो विशेषताएँ अनिवार्यतः होनी चाहिए। प्रथम उसकी ख्याति और द्वितीय कथानक का सुसंगठन। इनके अतिरिक्त एक सामान्य विशेषता विषयवस्तु का व्यापक होना भी है। कथावस्तु के प्रमुख स्रोत होते हैं — इतिहास, पुराण, समसामयिक घटनाचक्र और कवि-कल्पना। महाकाव्यों के लिए प्रथम दो स्रोत ही उपयुक्त हैं। समसामयिक घटनाचक्र पर आधृत कथावस्तु विख्यात भी हो और कवि कल्पना का समावेश, तो प्रत्येक प्रकार की कथावस्तु में होता ही है।

अधिकांश महाकाव्यों की कथावस्तु का चयन इतिहास-पुराण से ही किया गया है, क्योंकि इतिहास-पुराण के कथानक इतने लोक प्रख्यात हैं कि पाठक सहज ही उन्हें हृदयंगम कर लेता है। कथानक के स्रोत की दृष्टि से पुराणों का अन्यतम स्थान है। पुराणों में भारतीय जीवन-चेतना को प्रेरणा प्रदान करने वाली असंख्य घटनाएँ भी भरी हुई हैं। यही कारण है कि हिन्दी महाकाव्य-कारों ने पुराण-ग्रन्थों को महाकाव्य-वस्तु का अक्षय भण्डार माना है। हमारे युग के अधिकांश महाकाव्यों की विषय-वस्तु का संकलन पुराणों से ही किया गया है। अतः पुराणों की इस दृष्टि से महत्ता स्पष्ट ही है। हिन्दी में ही नहीं, विश्व के सुप्रसिद्ध प्राचीन महाकाव्यों में भी पौराणिक और किम्बदन्ती आख्यानों ( Myths and legends ) को ही कथानक के रूप में ग्रहण किया गया है। वास्तव में

महाकाव्यकार की कल्पना शक्ति इतनी प्रबल और विराट् होनी चाहिए कि वह पुराणों की जीर्ण-शीर्ण कथाओं को प्राणवान् बना सके तथा उन्हें युग जीवन के साँचे में ढाल कर प्रस्तुत कर सके। पौराणिक कथाओं के पुनराख्यान की कोई सार्थकता या महत्व नहीं, यदि वे समसामयिक जीवन-चेतना को प्रभावित करने की क्षमता से शून्य हों।

महाकाव्य की कथावस्तु का संगठित होना भी आवश्यक है। इसके अभाव में महाकाव्य के प्रबन्धत्व में बाधा पड़ती है। महाकाव्य-वस्तु के संगठित स्वरूप के लिए आचार्यों ने सर्गों का विधान किया है। संधियों की योजना से विषय-वस्तु का विकास क्रम-बद्ध ढंग से होता है। संधियों के अतिरिक्त महाकाव्य-वस्तु में घटनाओं की अन्विति और कार्य-व्यापारों की सुसम्बद्धता भी होनी चाहिए।

महाकाव्य के कथानक का व्यापक होना भी आवश्यक है। महाकाव्य में सम्पूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति होती है। यह तभी सम्भव है, जब कथानक व्यापक एवं पूर्ण हो। उसमें समग्र जीवन को अंकित करने की क्षमता होनी चाहिए। महाकाव्य का कथानक जातीय जीवन और समूह चेतना को साकार करने की शक्ति और क्षमता को संधारण कर सके, इसी में महाकाव्यकार के कथा-संयोजन-कौशल को देखा जा सकता है। संक्षेप में लोक-प्रसिद्धि, सुसंगठन और व्यापकता महाकाव्य की कथावस्तु की प्रमुख विशेषताएँ कही जा सकती हैं।

(2) उदात्त चरित्र-सृष्टि :—

महाकाव्य-रचना का प्रमुख तत्व चरित्र-सृष्टि है। किसी भी कथा में अच्छे-बुरे सभी प्रकार के पात्र होते हैं। महाकाव्यकार का दायित्व है कि वह असत् पात्रों पर सत्पात्रों की विजय का प्रदर्शन करे। किन्तु इस प्रदर्शन के लिए उसे असत् प्रवृत्तियों वाले पात्रों की अवैध हत्या या वध नहीं करवाना चाहिए, वरन् सत्पात्रों के उच्च व्यावहारिक आदर्शों की प्रेरणा असत् कोटि के पात्रों को ग्रहण करानी चाहिए। इस प्रक्रिया में पात्रों का चारित्रिक मनोवैज्ञानिक एवं स्वाभाविक ढंग से ही होना चाहिए। पात्रों के चरित्र-विश्लेषण

में महाकाव्यकार की दृष्टि निरपेक्ष अर्थात् पूर्वाग्रह-मुक्त होनी चाहिए। उसे पात्रों के कार्यों एवं चारित्रिक विशेषताओं के आधार पर उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का मूल्यांकन करना चाहिए। विशेषकर नायक के सम्बन्ध में महाकाव्य के रचयिता का दृष्टिकोण निस्पृह होना चाहिए।

महाकाव्य की मुख्य या आधिकारिक कथावस्तु से सम्बन्धित पात्रों में प्रमुख पात्र नायक होता है। काव्य का कार्य-व्यापार नायक द्वारा ही संचालित होता है। अतः नायक के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में जातीय जीवन के आदर्शों की प्रस्थापना के लिए संघर्षरत रहने की क्षमता और शक्ति होनी चाहिए। किन्तु इस कार्य के लिए आवश्यक नहीं कि वह उच्चकुलीन सद्वंशीय, धीरोदात्त और दैवीय गुणों से ही सम्पन्न हो। वर्तमान युग की काव्यधारा का मूल स्वर मानवतावादी जीवनादर्शों की स्वीकृति और स्थापना है। अतः मानवोचित चारित्रिक दुर्बलताएँ नायक में भी हो सकती हैं और इनके कारण ही किसी पात्र को नायकत्व के पद से वंचित नहीं किया जा सकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि नायक का प्रयास महान् होना चाहिए। कार्यों से ही महत्व अर्जित की जाती है। आज के अधिकांश महाकाव्य नायिका प्रधान भी हैं, अतः पुरुष पात्र ही नायकत्व के एकाधिकारी नहीं हैं। अस्तु महाकाव्य के नायक के लिए निम्नांकित बातें आवश्यक हैं —

(1) मानवीय चरित्र।

(2) स्त्री और पुरुष दोनों ही (पात्र) नायक पद पर समासीन हो सकते हैं।

(3) महान् लक्ष्य की सिद्धि के लिए प्रयत्नशील होना।

(4) जातीय जीवनादर्शों को प्रतिष्ठित करने की भावना।

समष्टिरूप में चरित्र-विश्लेषण करते समय महाकाव्यकार की दृष्टि मानव-जीवन के समग्र मूल्यांकन की ओर होनी चाहिए। मानवीय व्यक्तित्व के महान् से महान् स्वरूप की परिकल्पना नायक के चरित्र में साकार की जानी चाहिए।

**(3) विशिष्ट रचना-शिल्प :-**

यों तो प्रत्येक साहित्यिक रचना का निश्चित शिल्प होता है, जिसके आधार पर उसे आकार-प्रकार प्रदान किया जाता है। किन्तु महाकाव्य सदृश सर्वोपरि काव्यरूप के [illegible] शिल्प में विशिष्टता लाने के लिए उसके रचयिता को कुछ नियमों का अनुपालन करना ही चाहिए। नियमों के अनुपालन से अभिप्राय यह है कि महाकाव्यकार को महाकाव्य के स्वरूप-विधायक उपकरणों का संयोजन विशेष विधि से करना चाहिए। रचना-शिल्प के दो पक्ष हैं — अन्तरंग और बहिरंग। महाकाव्य के अन्तरंग का निर्माण रसात्मकता द्वारा होता है। बहिरंग के निर्माण में भाषा, शैली, छन्द, वर्णन एवं चित्रण सहायक होते हैं।

**बहिरंग के उपकरण :-**

**(अ) वस्तु-वर्णन :-**

महाकाव्य में वस्तु-वर्णन वैविध्यपूर्ण होना चाहिए। महाकाव्य में युग-जीवन का समग्र चित्र ही अंकित रहता है। अतः जीवन की अनेक रूपता की व्यंजना विविध वर्णनों द्वारा ही सम्पन्न हो सकती है। प्रकृति के विविध रूपों का कलात्मक वर्णन और नाना भावों की मनोरम झाँकियों की अभिव्यक्ति ही महाकाव्यकार के वर्णन-कौशल को व्यक्त करते हैं। काव्याचार्यों ने महाकाव्य में वस्तु-वर्णन-व्यापारों की लम्बी सूचियों का उल्लेख इसी दृष्टि से किया है। प्रकृति और मानव का अनादि काल से साहचर्य रहा है। परिस्थितियों के अनुरूप दोनोंके सम्बन्धों में भी परिवर्तन का क्रम गतिमान रहा है। इसीलिए महाकाव्य में मानव और प्रकृति के मिलन और संघर्ष तथा परिणाम और उपलब्धियों का वर्णन रहता है। इसके अतिरिक्त विषय वस्तु के इतिवृत्तात्मक स्थलों की रूक्षता को दूर करने के लिए भी भावपूर्ण, मनोरम एवं मार्मिक प्रकृति-दृश्यों की योजना अपेक्षित होती है।

**(ब) कल्पना-शक्ति :-** महाकाव्य के कथा-स्रोतों का उल्लेख करते हुए कहा जा चुका है कि कथानक के प्रमुख स्रोत इतिहास पुराण हैं। महाकाव्यकार का कर्तव्य और कौशल यह

बात में निहित है कि वह इतिहास-पुराण के पुरा-आख्यानों और जीर्ण-शीर्ण कथा-स्रोतों को कल्पना शक्ति के प्रयोगों द्वारा दीप्तिमान करके युग जीवन और समाज के तत्कालीन परि-सन्दर्भों में प्रस्तुत करे। कथानक के अतिरिक्त चरित्र योजना, शिल्प-विधान और उद्देश्य सिद्धि में भी कल्पना-शक्ति का योगदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता। सत्य तो यह है कि प्रौढ़ कवि-कल्पना ही महाकाव्य को जन्म दे सकती है।

**(ड) मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि :—**

महाकाव्य वस्तु के विशाल कलेवर में मार्मिक प्रसंगों की अवतारणा पाठक को सरसता प्रदान करती है। इनकी सृष्टि द्वारा ही महाकाव्य एक प्रभावपूर्ण रचना के रूप में समादृत होता है। महाकाव्यकार को घटनाओं के चयन में ऐसे स्थलों को महत्व देना चाहिए, जो अपनी प्रभावक्षमता के कारण रागात्मक वृत्तियों को जागृत एवं उद्दीप्त कर सकें।

**(ढ) गरिमापूर्ण भाषा-शैली :—**

महाकाव्य की शैली का स्वरूप अन्य काव्यरूपों की अपेक्षा विशिष्ट और गरिमापूर्ण होता है। गुण, रीति, अलंकार, शब्दशक्तियाँ, ध्वनि आदि शैली-विधान के उपकरण हैं, किन्तु इनका सम्बन्ध शैली के बाह्य रूप से है। शैली की व्यापकता और गम्भीरता (प्रौढ़ता) उसकी अन्तरात्मा है। काव्य-चेतना की प्रबलता का प्रभाव सरल भाषा और सामान्य अलंकृति द्वारा गम्भीर व्यंजना करना है। शैली के माध्यम से कवि-व्यक्तित्व की भी अभिव्यक्ति होती है। इस गुण को साकार करने के लिए भाषा-शैली में चमत्कारपूर्ण अलंकरण, जटिल शब्द समूह और क्लिष्टता अपेक्षित नहीं, वरन् थोड़े में बहुत कहने, सरल शब्दावली में गम्भीर व्यंजना तथा चेतना-प्रभाव को व्यक्त करने की क्षमता होनी चाहिए। महाकाव्य की शैली का सबसे बड़ा गुण सम्प्रेषणीयता तथा प्रसंग-गर्भित होना चाहिए। महाकाव्यकार की शैली के स्वरूप का निर्माण चमत्कार या प्रयत्नपूर्वक न होकर उसकी

सुदीर्घ काव्य-साधना का परिणाम होता है।

(ई) छन्द विधान :-

छन्द बद्धता महाकाव्य के लिए अनिवार्य है। काव्यात्मक उदात्तता के लिए भी छन्द-विधान अपेक्षित है। संस्कृत के आचार्यों ने तो सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन के नियम का विधान भी किया है। यद्यपि इस नियम का कोई विशेष महत्त्व नहीं है और न ही आधुनिक महाकाव्यों में इस नियम का अनुपालन ही किया जाता है। तो भी छन्द-वैविध्य से पाठक की मनोवृत्ति को सुख मिलता है तथा कवि-कौशल का परिचय मिलता है।

(उ) सर्ग-योजना :-

प्रबन्धत्व के सफल निर्वाह के लिए सर्ग-योजना अनिवार्य है। कथावस्तु के सम्यक् संयोजन और विभाजन के लिए भी सर्ग-योजना अपेक्षित है। कथानक का विभाजन हर स्थिति में आवश्यक है। यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि 'सर्ग' ही नाम दिया जाये। कथावस्तु का विभाजन समयों, काण्डों, पर्वों, प्रपाठों या अन्य शीर्षकों में भी हो सकता है। सर्गों की संख्या के सम्बन्ध में भी कोई निश्चित मत नहीं है। प्राचीन आचार्यों ने महाकाव्य में आठ की संख्या को मान्यता दी है, किन्तु आज के महाकाव्यों में सर्गों की संख्या 6, 7, 25 इत्यादि भी मिलती है।

अन्तरंग पक्ष

रसात्मकता —

भारतीय साहित्य शास्त्र में रस को काव्य की आत्मा माना गया है। रस की स्थिति काव्य की संज्ञा पाने वाली प्रत्येक रचना में अनिवार्यतः होती है। रसात्मकता महाकाव्य के अन्तरंग का निर्माण करती है। प्राचीन काव्याचार्यों ने महाकाव्य में वीर, शृंगार और शान्त रसों में से किसी एक की प्रधानता एवं अन्य रसों की सम्यक् योजना का उल्लेख किया है, किन्तु आज यह आवश्यक नहीं माना जाता। कोई भी रस प्रधान हो

सकता है। वर्तमान युग में करुण रस प्रधान अनेक महाकाव्य लिखे गये हैं।

रसानुभूति महाकाव्य के पाठक के हृदय में भावोच्चता या महत् प्रभाव की जनक होती है। मानव मात्र में मूल मनोभाव और संवेदनाएँ एक सी हैं। उन भावों को उच्च और उदार बनाने के लिए उन्हें जीवन की विस्तृत भूमिका में अवतरित कराना महाकाव्यकार की प्रतिभा का द्योतक होता है। उसके आंतरिक पात्रों के क्रिया-व्यापारों और घटना-प्रवाह से अनुभूति का तादात्म्य रस की भूमिका पर ही हो सकता है। इतिवृत्तात्मक विरसता भी रस-प्रवाह से ही दूर होती है। भाव-चित्रण की रसात्मकता द्वारा ही संभव है।

**(4) महत् उद्देश्य और जीवन-दर्शन :—**

महाकाव्य महत् उद्देश्य और जीवन-दर्शन से अनुप्राणित रचना है। भारतीय काव्याचार्यों ने महाकाव्य का उद्देश्य चतुर्वर्ग फल-प्राप्ति अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि तथा रसात्मकता माना है; किन्तु वर्तमान युग-जीवन के संदर्भ में मात्र उन्हें ही महाकाव्य का लक्ष्य स्वीकार नहीं किया जा सकता है। महत् उद्देश्य से अभिप्राय महाकाव्य-सृजन के लिए रचयिता की अन्तरात्मा में किसी महान् प्रेरणा का आविर्भाव की है। प्रेरणा का स्रोत जीवन की कोई भी घटना, परिस्थिति अथवा वस्तु हो सकती है। किन्तु कवि का कौशल उस प्रेरणा-भाव को विश्व-व्यापी परिप्रेक्ष्य में रूपायित करने में है। आज की प्रत्येक काव्य-रचना सोद्देश्य है। आज यह मान्यता बलवती है कि काव्य-रचना कवि के लिए आत्मतोषी या स्वान्तःसुखाय न होकर जाति, समाज और विश्व-जीवन की सन्तुष्टि के लिए होनी चाहिए। डा0 माता प्रसाद गुप्त का यह कथन प्रस्तुत संदर्भ में उल्लेखनीय है कि "मानवता को अहित से हित, अशान्ति से शान्ति और नीचे से ऊँचे ले जाना ही वस्तुतः महाकाव्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व माना जा सकता है। इसी में उसकी वास्तविक महत्ता होनी चाहिए।[1] अतः महाकाव्य के उद्देश्य की महत्ता और उसकी

---

1- तुलसीदास, तृतीय संस्करण, पृ0 370

सिद्धि के लिए आवश्यक है कि महाकाव्य कही जाने वाली प्रत्येक रचना में —

(अ) मानवतावादी जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा हो,

(ब) युगीन जीवनादर्शों की स्थापना हो,

(स) रचना का सांस्कृतिक उन्नयन में योगदान हो,

(द) उन्नत विचारदर्शन (जीवनदर्शन) हो,

(य) संजीवनी शक्ति प्रदान करने की क्षमता हो।[1]

परिभाषा की समस्या :—

डा० शम्भूनाथ सिंह ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास' में महाकाव्य की परिभाषा तथा लक्षणों पर विचार करते हुए लिखा है[2] कि महाकाव्य की परिभाषा निश्चित करना अत्यन्त कठिन कार्य है, क्योंकि विभिन्न युगों में उसका स्वरूप बदलता रहा है। यही कारण है कि विभिन्न युगों के साहित्याचार्यों ने उसके भिन्न भिन्न मानदण्ड स्थिर किये, फिर भी महाकाव्य की सम्यक् परिभाषा आज तक स्थिर नहीं हो सकी है। किन्तु कुछ निष्कर्षों के आधार पर हम महाकाव्य की व्यापक परिभाषा निश्चित करके उसके सामान्य तत्वों और विशेषताओं का विवेचन और उसकी विभिन्न शैलियों का निर्धारण कर सकते हैं। पश्चिमी देशों तथा भारत के प्राचीन साहित्याचार्यों और पंडितों ने महाकाव्य के लक्षण निर्धारित करते समय अपने सामने आदर्श महाकाव्यों या महाकवियों को रखा है। वे महाकाव्य जिस युग में रचे गए हैं, उस युग के लिए तो अवश्य वह परिभाषा उपयुक्त थी; पर बाद के युगों में वे परिभाषाएँ और मानदण्ड पूर्णतया लागू न हो सके।

---

1- हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य, डा० देवीप्रसाद गुप्त, पृ० 28

2- हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, डा० शम्भूनाथ सिंह, पृ० 41

अतएव पुरानी परिभाषाओं और लक्षण ग्रंथों से हमारा काम नहीं चल सकता। हमें वैज्ञानिक महाकाव्य के रूप विकास का अध्ययन करके उसकी परिभाषा निर्धारित करनी होगी। इस दिशा में आधुनिक युग के अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने बहुत अधिक कार्य किया है; जिनमें प्रो० डब्लू०पी०केर, एबर क्राम्बी, मेकनील डिक्सन और सी०एम०बावरा के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

महाकाव्य की परिभाषा निश्चित करने में कठिनाई का कारण यही है कि युग-युग में इसका रूप अन्य काव्य-रूपों की अपेक्षा अधिक स्पष्टता से बदलता रहा है, क्योंकि इसका युग-जीवन से अत्यन्त निकट का सम्बन्ध होता है और आज तो परिस्थितियाँ पहले से इतनी बदल गयी हैं कि बहुत से विद्वानों ने घोषणा कर दी है कि इस युग में महाकाव्य की रचना हो ही नहीं सकती। डिक्सन ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि आज मानव जीवन के चित्रण का विस्तार इतना अधिक हो गया है कि कोई महा-कवि चाहे कितना भी दूर-द्रष्टा या विराट् कल्पना वाला क्यों न हो, वह महाकाव्य के भीतर अपने युग जीवन की सभी बातें और अनुभूतियों को उस प्रकार नहीं समाविष्ट कर सकता; जैसे होमर, व्यास या वाल्मीकि ने किया है। यह बात सही भी है। विश्व में सभी जगह आज महाकाव्यों की रचना बहुत कम हो रही है। उनकी जगह उपन्यासों को भी 'एपिक' कहा जाने लगा है। निष्कर्ष यह है कि महाकाव्य के विकास के इतिहास को देखकर और सारे संसार के महाकाव्यों के स्वरूप को ध्यान में रखकर यदि कोई परिभाषा निर्धारित की जाये, जिसमें महाकाव्य के सभी सामान्य लक्षण आ जायें, तो भी वह अन्तिम परिभाषा नहीं हो सकती। सम्भवतः इसी परिवर्तनशीलता को देखकर क्रोचे ने सौन्दर्यशास्त्र में कहा है कि काव्यरूपों का वर्गीकरण करना ही बेकार है। कला के क्षेत्र में गीतिकाव्य, महाकाव्य, नाटक, उपन्यास आदि का भेद नहीं हो सकता। यदि किया जाता है तो वह कृत्रिम भेद है, क्योंकि एक तो आत्मगत और वस्तुगत भावों या विचारों

की अलग अलग स्थिति नहीं है, दूसरे कलाकार और कवि सदा शास्त्रीय नियमों का उल्लंघन करते रहते हैं। प्रत्येक उत्कृष्ट कलात्मक निर्माण में कलाकार अपने पूर्व के नियमों की उपेक्षा करके अपने आलोचकों को इस बात के लिए विवश करता है कि वे शास्त्रीय नियमों में परिवर्तन करें। अतः परिभाषाएँ भिन्न-भिन्न बनती हैं और फिर-फिर सुधरती रहती हैं। क्रोचे के इस कथन में बहुत अधिक सत्य का अंश है। फिर भी काव्य-भेद किया जाता रहा है और परिभाषाएँ बनती रहती हैं; क्योंकि मनुष्य की बुद्धि का काम ही विश्लेषण करना है। यहाँ महाकाव्य के ऐतिहासिक विकास और परम्परागत नैरन्तर्य के आधार पर उसकी परिभाषा देने और उसके तत्वों का उद्घाटन करने का प्रयत्न किया जायेगा।

संसार के सभी देशों में महाकाव्य की परम्परा दो धाराओं में विभक्त होकर प्रवाहित होती आ रही है —1- मौखिक परम्परा वाली धारा 2- लिखित परम्परा वाली धारा। यद्यपि इन दोनों में बहुत अन्तर है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "महाकाव्य शब्द का प्रयोग आजकल दो अर्थों में होने लगा है — अंग्रेजी के एपिक शब्द के अर्थ में और प्राचीन आलंकारिक आचार्यों द्वारा प्रयुक्त सर्गबद्ध काव्य के अर्थ में। साधारणतः यूरोपियन पण्डितों ने भारतीय एपिक कहकर केवल दो ग्रन्थों की चर्चा की है, महाभारत की और रामायण की।"[1] यह कथन सत्य है, क्योंकि पाश्चात्य देशों के एक कवि ने जो महाकाव्य की परिभाषा निर्धारित की, वह दूसरे पर लागू न हो सकी। महाकाव्य के क्षेत्र में हम पाश्चात्य और पौरस्त्य के भेद को कृत्रिम और अवैज्ञानिक मानते हैं और महाकाव्य की ऐसी परिभाषा की आवश्यकता समझते हैं; जो सार्वभौम और वैज्ञानिक हो। भारतीय और पाश्चात्य मान्यताओं में कोई तात्त्विक अन्तर भी नहीं है।

---

1- संस्कृत के महाकाव्यों की परम्परा 'आलोचना अंक'। पृ० 9 दिल्ली। 195।

भारतीय विद्वानों के निष्कर्ष :-

डा० शम्भूनाथ सिंह ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास' में भारतीय विद्वानों के विचार प्रस्तुत कर उनका समीक्षात्मक निष्कर्ष निकाला है। उनके विचार इस प्रकार हैं —

महाकाव्य सम्बन्धी प्राचीन भारतीय मान्यतायें जो जिन्हें विभिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न रूपों में स्वीकार किया और विभिन्न शब्दावली में व्यक्त किया है, एक सूत्र में पिरोकर और एक साथ रखकर देखने और उनके अभिप्राय का पता लगने पर महाकाव्य के निम्नांकित प्रमुख तत्त्व दिखलाई पड़ते हैं।[1]

(1) कथानक :-

1- कथानक बहुत संक्षिप्त होना चाहिए।

2- कथानक में नाटकीय गुणों का निर्वाह होना चाहिए।

(3- उसमें महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख होना चाहिए तथा बाद में अवान्तर कथाओं का भी वर्णन होना चाहिए।

(2) चरित्र चित्रण —

1- नायक के चरित्र का समुचित विकास होना चाहिए। जो धीरोदात्त सद्वंशोत्पन्न अथवा क्षत्रिय या देवता होना चाहिए।

2- प्रतिनायक तथा अन्य पात्रों के चरित्र का भी समुचित विकास होना चाहिए।

(3) वस्तु व्यापार और परिस्थिति वर्णन :-

भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य में वस्तु व्यापार वर्णन पर बहुत अधिक जोर दिया है। अलंकृत महाकाव्य का यही प्रधान लक्षण है। इसमें आचार्यों ने निम्नांकित

1- हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास' डा० शम्भूनाथ सिंह, पृ० 63

[illegible]

वर्णन आवश्यक माने हैं —

(क) प्रकृति चित्रण :— संध्या, प्रभात, मध्याह्न, रात्रि, वन, सूर्य, चन्द्र, नदी, पर्वत, समुद्र, द्वीप, द्वीपान्तर आदि प्राकृतिक वस्तुओं का यथायोग्य सांगोपांग और अलंकृत वर्णन।

(ख) जीवन के विभिन्न व्यापारों और परिस्थितियों का चित्रण। रुद्रट को छोड़कर अन्य आचार्यों ने जीवन के समग्र रूप को महाकाव्य में चित्रित करने पर अधिक बल नहीं दिया है। उन्होंने कुछ प्रधान व्यापार ही गिना दिये हैं, जो अलंकृत महाकाव्यों में पाये जाते हैं।

(4) रस और भाव व्यंजना :—

भारतीय आचार्यों के मतानुसार महाकाव्य में रस की योजना अवश्य होनी चाहिए। उसमें सभी रस होने चाहिए, परन्तु श्रृंगार वीर, शान्त में से कोई प्रधान होना चाहिए। परवर्ती कवियों ने लक्षणग्रन्थों के अत्यधिक प्रभाव के कारण उनका असंतुलित प्रयोग किया है।

(5) अलौकिक और अतिप्राकृत तत्व — मानव मात्र के हृदय तल में गहरे प्रतिष्ठित धार्मिक वृत्तियों, पौराणिक और निजन्धरी विश्वासों और आश्चर्य तथा औत्सुक्य की सहज प्रवृत्ति के कारण सभी देशों के प्राचीन महाकाव्यों में अलौकिक और अतिप्राकृत तत्व पाये जाते हैं। भारतीय महाकाव्यों में भी उनकी कमी नहीं है, पर इसके सम्बन्ध में बहुत कम विचार किया गया है।

(6) शैली — महाकाव्य की शैली के सभी अवयवों पर आलंकारिकों ने पर्याप्त विचार नहीं किया है, कुछ पर पर्याप्त विचार किया है, कुछ को छोड़ दिया है। शैली का मूल तत्व है गम्भीरता, इस पर उन्होंने विचार नहीं किया। जिन बाह्य तत्वों पर विचार किया है, वे ये हैं —

(क) सर्ग न तो बहुत बड़े हों न बहुत छोटे। विश्वनाथ को छोड़कर अन्य आचार्यों ने सर्गों की संख्या नहीं निर्धारित की है।

(ख) विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य का नामकरण कवि अथवा कथावस्तु (वृत्त) ~~के अनु~~ या चरितनायक के नाम पर होना चाहिए। पर यह नियम महाकवियों को मान्य नहीं हुआ। अतः नामकरण के सम्बन्ध में कोई लक्षण निर्धारित नहीं किया जा सका।

(ग) महाकाव्य के आदि अन्त के बारे में कवि को पूरी छूट होनी चाहिए। अन्त के संबंध में रूद्रट ने लिखा है कि नायक का अभ्युदय अन्त में होना चाहिए।

(घ) परवर्ती महाकाव्यों की एक प्रधान रूढ़ि यह हो गयी थी कि उनमें आदि में ही प्रस्तावना के रूप में सज्जन-प्रशंसा, दुर्जन-निन्दा, कवियों की प्रशंसा, नायक के वंश की प्रशंसा, अपना प्रयोजन आदि का विधान रहता था।

(ङ) छन्द – दण्डी ने छन्द का लक्षण किया है कि महाकाव्य में रम्य छन्दों का प्रयोग होना चाहिए। प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग और सर्ग के अन्त में उसे बदलकर भिन्न छन्द का प्रयोग होना चाहिए। (सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरंजनम्)।

(च) अलंकार – रूद्रट और विश्वनाथ के अतिरिक्त अन्य सभी आचार्यों भामह, दण्डी ने महाकाव्य में अलंकारों का होना आवश्यक माना है। बाद के महाकाव्यों में वाग्वैदग्ध्य, पाण्डित्य और आचार्यत्व अधिक दिखलाई पड़ता है, सहज काव्य-प्रतिभा कम। काव्य के अन्य क्षेत्रों की तरह परवर्ती काल में दरबारी प्रभाव के कारण महाकाव्यों में भी अलंकृति बहुत अधिक होने लगी। अतः यह आश्चर्य ही है कि विश्वनाथ ने अलंकृति को महाकाव्य का लक्षण क्यों नहीं माना।

(छ) भाषा :– अलंकार-शास्त्रों में महाकाव्य की भाषा के सम्बन्ध में बहुत कम विचार किया गया है, क्योंकि यह मान लिया गया कि जो महाकवि होगा वह भाषा पर असाधारण अधिकार रखता होगा। केवल भामह ने इतना कहा कि महाकाव्य में ग्राम्य शब्दों और अर्थों का प्रयोग नहीं होना चाहिए। हेमचन्द्र ने महाकाव्य में समस्त लोकरंजक गुणों का

होना आवश्यक माना है— जिसका अर्थ है कि उसकी भाषा सरल और सर्वबोधगम्य अवश्य होनी चाहिए, तभी उससे सबका मनोरंजन हो सकेगा।

(ज) रूपसंघटन — महाकाव्य का रूप अन्य काव्य रूपों से भिन्न है, पर उसकी भिन्नता के सम्बन्ध में आलंकारिकों ने बहुत कम विचार किया है। नाटक की पंच संधियों और सर्ग विभाजन को महाकाव्य के लिए भी आवश्यक माना है, पर नाटक और महाकाव्यों के मूलतत्वों के साम्य और वैषम्य पर विचार नहीं किया गया है। महाकाव्य के संगठन में नाटक गीति, काव्य, कथा, आख्यायिका और इतिहास पुराण सबसे कुछ न कुछ तत्व ग्रहण किये गये हैं।

**(7) उद्देश्य :—**

यद्यपि इस सम्बन्ध में आचार्यों ने स्पष्ट रूप से विचार व्यक्त नहीं किये हैं, किन्तु प्रकारान्तर से उन्होंने जो बातें कही हैं, उनसे स्पष्ट होता है कि महाकाव्य में कोई न कोई महान् लक्ष्य होना चाहिए। महाकाव्य का लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति है।

**(8) प्राचीन बन्ध-वर्णन, पाण्डित्य प्रदर्शन और वस्तु विवरण :—**

संस्कृत के प्राचीन अलंकार शास्त्रों में वस्तुव्यापार वर्णन के सम्बन्ध में जो नियम बनाये गये हैं, अनेक महाकाव्यों में उनका दुरुपयोग भी हुआ है। कुछ में प्रकृति-चित्रण के प्रसंग में प्राकृतिक वस्तुओं की तालिका तक प्रस्तुत कर दी गयी है। पर ऐसा परवर्ती कवियों ने ही किया है, क्योंकि उनमें पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति ही अधिक थी। यह प्रवृत्ति हिन्दी महाकाव्यों में भी दिखाई देती है। रासो, पद्मावत, रामचन्द्रिका और आधुनिक प्रबन्धकाव्य — प्रियप्रवास तक में लम्बी ~~सूचियाँ~~ सूचियाँ प्रस्तुत की गई हैं। यह प्रवृत्ति यूरोपीय महाकाव्यों में भी मिलती है। इस अनपेक्षित पाण्डित्य-प्रदर्शन से महाकाव्य की कलात्मकता में बाधा उपस्थित होती है। सम्भवतः इसीलिए भामह ने कहा

था कि महाकाव्य को व्याख्या या विवरण द्वारा इतिहास-पुराण के समान बढ़ाना नहीं चाहिए। रुद्रट ने स्पष्ट रूप से कहा है कि वस्तु-व्यापार का वर्णन प्रसंगानुसार ही होना चाहिए। पाण्डित्य-प्रदर्शन, ज्ञान और धार्मिक उपदेश की बातें लिखने की अधिक प्रवृत्ति को देखकर ही विश्वनाथ को लिखना पड़ा कि उनका सांगोपांग वर्णन न करना अर्थात् पूर्ण विवरण उपेक्षित करना चाहिए।[1]

डा० शम्भूनाथ सिंह ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास' में विश्व के महाकाव्यों का निम्नांकित रूप से विभाजन किया है[2]:—
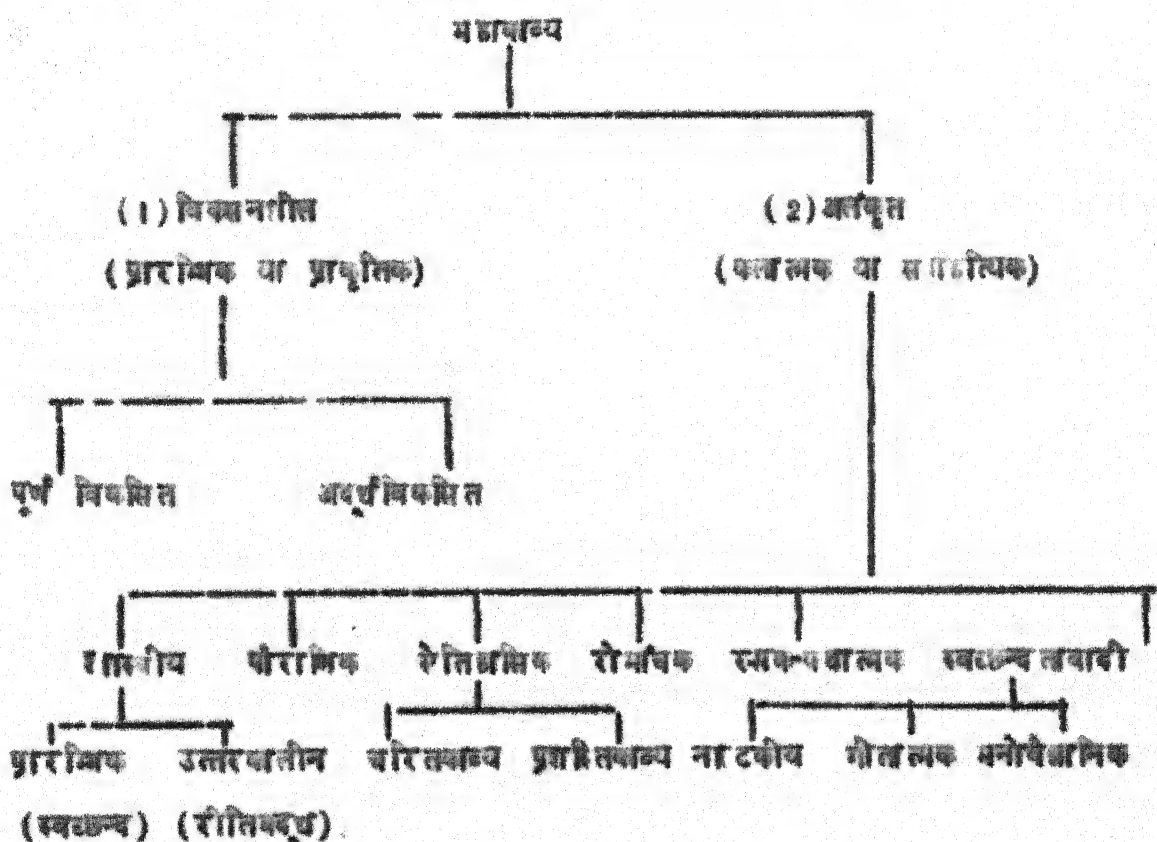
महाकाव्य की उपर्युक्त शैलियों में से कभी दो-दो तीन-तीन शैलियों के सम्मिश्रण से नये प्रकार के महाकाव्य भी दिखाई पड़ते हैं। कुछ में महाकाव्य के गुण

---

1- शृंगारवीर शान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते। अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटक संधयः ॥
(साहित्य द० 6/316)
वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह' (वही, 6-324)

2- हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, डा० शम्भूनाथ सिंह, पृ० 93

होते हुए भी पुराण इतिहास और रोमांचक कथाकाव्य तीनों की शैली अपनाई गई है।

महाकाव्य के स्थिर लक्षण :—

महाकाव्य का स्वरूप निर्धारित करते समय हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि हम उसके जो लक्षण निश्चित कर रहे हैं, वे उसके स्थायी तत्वों से सम्बन्धित हैं या अस्थायी तत्वों से। पाश्चात्य और भारतीय आलोचकों ने जितने लक्षण बताये हैं, उनमें स्थायी तत्वों से सम्बन्ध रखने वाले लक्षणों में अधिक अन्तर नहीं है। भारतीय आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों में जो लक्षण सभी शैलियों के महाकाव्यों में निश्चित और अनिवार्य रूप से पाये जाते हैं, वे निम्नांकित है —[1]

(1) नायक का आदर्श और महान् होना — महाकाव्य का नायक धीरोदात्त होता है। दशरूपक के अनुसार धीरोदात्त नायक महा सात्विक, अति गम्भीर, क्षमावान्, आत्म-श्लाघाहीन, स्थिर तथा अहंकार को छिपाने वाला और दृढ़व्रती होता है।[2] रूद्रट ने महान् नायक के और भी लक्षण दिये हैं।

(2) महान् उद्देश्य — इसे भारतीय आचार्यों ने चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति कहा है।

(3) रस की उपस्थिति

(4) कथानक का यथार्थचित्व या घटना का महान् होना — इसी बात को दूसरे ढंग से इस तरह भी कहा गया है कि कथानक इतिहास कथोद्भूत या ख्यातवृत्त होना चाहिए।

सभी भारतीय महाकाव्यों में अनिवार्य रूप से ये लक्षण मिलते हैं, क्योंकि इनका सम्बन्ध महाकाव्य की आत्मा से है। महाकाव्य के लक्षणों के सम्बन्ध में पाश्चात्य आलोचकों में भी बहुत मतभेद रहा है। पर वहाँ भी महाकाव्य की आत्मा से सम्बन्धित लक्षणों के बारे में सब एक मत रहे हैं। ये अनिवार्य पाश्चात्य लक्षण ये हैं —

---

1- हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, डा० शम्भूनाथ सिंह, पृ० 105

2- महासत्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः॥ (दशरूपक—21)

(1) महाकाव्य में किसी महान् घटना का वर्णन होना चाहिए। उसके कथानक में नाटकीय अन्विति हो तो ठीक है, न हो तो भी उसे रोमांचक कथा की तरह विशृंखलित नहीं होना चाहिए।

(2) उसमें कोई न कोई महान् उद्देश्य अवश्य होना चाहिए, चाहे वह उद्देश्य राष्ट्रीय या नैतिक; धार्मिक हो या दार्शनिक; मानवीय हो या मनोवैज्ञानिक।

(3) उसमें प्रभावान्विति होनी चाहिए, चाहे वह नाटकीय ढंग की प्रभावान्विति हो या रोमांचक कथा के ढंग की या गीति काव्य के ढंग की।

<u>उपर्युक्त लक्षणों की आलोचना</u> —

महाकाव्य की आत्मा से सम्बन्धित भारतीय और पाश्चात्य आचार्यों के उपर्युक्त लक्षणों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि दोनों में अधिक अन्तर नहीं है। महान् उद्देश्य, महती घटना और रस या प्रभावान्विति के सम्बन्ध में दोनों एक मत हैं। अन्तर केवल नायक या चरित्रों से सम्बन्धित लक्षणों के बारे में है। भारतीय आचार्यों और पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों ने समान रूप से इस बात पर जोर दिया है कि महाकाव्य का नायक महान् होना चाहिए, पर रोमांचक महाकाव्यों में प्रेम-भावना की अतिरंजना और अतिप्राकृत तत्वों के आधिक्य के कारण नायक का व्यक्तित्व दब जाता है अथवा कभी-कभी नैतिक दृष्टि से मध्यम कोटि का भी होता है। आधुनिक स्वच्छन्दतावादी महाकाव्यों में तो नायक का स्वरूप और भी बदल गया है। अतः नायक का आदर्श या महान् होना महाकाव्य का सामान्य लक्षण नहीं माना जा सकता। इसी तरह महान् घटना का होना या कथानक का इतिहास कथोद्भुत होना भी सामान्य लक्षण नहीं माना जा सकता। कारण यह है कि कुछ महाकाव्यों में घटना महान् न होकर सामान्य या अति स्वाभाविक होती है, पर उसके मूल में किसी गूढ़ रहस्य का उद्घाटन करके महाकाव्य में प्रभावान्विति और महत्ता उत्पन्न कर दी जाती है। इसी प्रकार अनेक महाकाव्य ऐसे हैं, जिनमें सभी या कुछ पात्र तो

डा0 श्यामनन्दन किशोर के मत से महाकाव्य मर्मस्पर्शी घटनाओं पर आधारित एक महान् कवि की ऐसी छन्दोबद्ध कृति है, जिसमें मानव-जीवन की किसी ज्वलन्त समस्या का व्यापक प्रतिपादन, किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति या जातीय संस्कृति के महत् प्रवाह उद्भावन की उदात्त वर्णन-शैली, व्यंजक भाषा, पूर्ण रसात्मकता और उच्चकोटि के शिल्प विधान के द्वारा किया जाता है और जिसका नायक किसी भी लिंग जाति या वर्ग का होकर भी अपने गुणों से कवि के आदर्शों को मूर्तिमान करने वाला होता है।[1]

महाकाव्य के अनिवार्य लक्षण :—

महाकाव्य के शरीर से सम्बन्धित लक्षण वे हैं; जो उसके विस्तार, संगठन रचना-विधान या शैली, अलंकृति, वस्तु व्यापार वर्णन, अवान्तर कथाएँ, सर्ग, छन्द, आदि के बारे में होते हैं। पाश्चात्य और भारतीय आलंकारिकों के ऐसे अनेक लक्षण परस्पर मिलते जुलते हैं। इनमें कुछ लक्षण तो शाश्वत और स्थिर हैं और कुछ परिवर्तनशील या शैली विशेष और युग विशेष में लागू होने वाले होते हैं। सभी देशों, कालों और शैलियों के महाकाव्यों में वे अनिवार्य रूप से नहीं मिलते। महाकाव्य के शाश्वत या अनिवार्य लक्षण निम्नांकित हैं —

(1) प्रबन्धात्मकता और छन्दोबद्धता।

(2) सर्गबद्धता या खण्ड-विभाजन और कथा का विस्तार।

(3) जीवन के विविध और समग्र रूप का चित्रण।

(4) शैली की गम्भीरता, उदात्तता और मनोहारिता।

(5) महत् उद्देश्य और जीवन-दर्शन।

---

1- आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्पविधान, पृ0 60

अस्थायी लक्षण :—

इनके अतिरिक्त महाकाव्य के अन्य जितने भी लक्षण पाश्चात्य और भारतीय आलोचकों ने दिये हैं; वे अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोष से युक्त रहे हैं। अतः इस तरह के लक्षणों; जैसे महाकाव्य में आठ सर्ग हों, प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द हो जो अन्त में बदल जाये, भिन्न सर्गों में एक भिन्न छन्द हों, आरम्भ में मंगलाचरण, वस्तुनिर्देश, सज्जन-दुर्जन-वर्णन और आत्म निवेदन हो, कुछ निश्चित वस्तुओं और व्यापारों का वर्णन अवश्य हो, आदि के सम्बन्ध में अधिक विचार करना अनावश्यक है, क्योंकि ये महाकाव्य के शाश्वत लक्षण नहीं हैं। विभिन्न महाकाव्यों में इनका विभिन्न रूप होता है और किसी-किसी में इनमें से अनेक बिल्कुल नहीं होते। इनकी उपयोगिता आज यही है कि उनके द्वारा तत्कालीन समाज की मनोवृत्ति और सांस्कृतिक-सामाजिक अवस्था का कुछ परिचय मिल जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्राचीन आचार्यों ने महाकाव्य के सम्बन्ध में गम्भीरता के साथ विचार करके सूक्ष्म बुद्धि से इसका स्वरूप-निर्धारण किया है। पर कुछ ऐसी भी बातें हैं, जिनकी ओर पुराने आलोचकों का ध्यान नहीं गया है। कुछ आलोचकों ने उनकी ओर संकेत अवश्य किया है।

निष्कर्ष :—

अतः प्राचीन आचार्यों और अर्वाचीन आलोचकोंके विचारों का अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाकाव्य मानव की कलात्मक प्रतिभा की वह सर्वोत्तम देन है, जिसमें उसके जातीय गुणों, सर्वोत्कृष्ट उपलब्धियों और परम्परागत अनुभवों का पुंजीभूत रसात्मक रूप दिखलाई पड़ता है; जो उसके समग्र सामाजिक जीवन का प्रतीक होता है और जिसके बाह्य स्वरूप में यद्यपि देश-काल के भेद से

साथ निरन्तर परिवर्तित होता रहता है, पर उसके आन्तरिक मूल्य और स्वाभाविक गुण शाश्वत और नित्य होते हैं। यदि महाकाव्य की परिभाषा देना आवश्यक ही हो तो डा० शम्भूनाथ सिंह के शब्दों में उसकी यह परिभाषा दी जा सकती है —

"महाकाव्य वह छन्दोबद्ध कथात्मक काव्य रूप है, जिसमें क्षिप्र कथा-प्रवाह या अलंकृत वर्णन अथवा मनोवैज्ञानिक चित्रण से युक्त ऐसा सुनियोजित सांगोपांग और जीवन्त कथानक होता है, जो रसात्मकता या प्रभावान्विति उत्पन्न करने में पूर्ण समर्थ होता है; जिसमें यथार्थ कल्पना या सम्भावना पर आधारित ऐसे चरित्र या चरित्रों के महत्त्वपूर्ण-जीवन-वृत्त का पूर्ण या आंशिक चित्रण होता है, जो किसी युग के सामाजिक जीवन का किसी न किसी रूप में प्रतिनिधित्व करते हैं, और जिसमें किसी महत्प्रेरणा से परिचालित होकर किसी महदुद्देश्य की सिद्धि के लिए किसी महत्त्वपूर्ण, गम्भीर अथवा आश्चर्योत्पादक और रहस्यमय घटना या घटनाओं का आश्रय लेकर सांश्लिष्ट और समन्वित रूप से जाति विशेष और युग विशेष के समग्र जीवन के विविध रूपों, पक्षों, मानसिक अवस्थाओं अथवा नाना रूपात्मक कार्यों का वर्णन और उद्घाटन किया गया होता है और जिसकी शैली इतनी उदात्त और गरिमामयी होती है कि युग युगान्तर में उस महाकाव्य को जीवित रखने की शक्ति प्रदान करती है।"[1]

---

1- हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, डा० शम्भूनाथ सिंह, पृ० 108

# द्वितीय अध्याय

## स्वातंत्र्योत्तर प्रमुख हिन्दी महाकाव्यों का स्वरूप - विवेचन

### स्वातंत्र्योत्तर प्रमुख हिन्दी महाकाव्य और उनका कथानक :—

डा० निजाम उद्दीन ने अपने शोध प्रबन्ध 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य' में निम्नांकित 25 महाकाव्यों का उल्लेख किया है :—

| महाकाव्य | महाकवि | प्रकाशन सन् |
|---|---|---|
| (1) जननायक | श्री रघुवीर शरण मित्र | 1949 |
| (2) अंगराज | श्री आनन्द कुमार | 1950 |
| (3) वर्द्धमान | श्री अनूप शर्मा | 1951 |
| (4) देवार्चन | श्री करील | 1952 |
| (5) रावण | श्री हरदयालु सिंह | 1952 |
| (6) जगदालोक | श्री गोपाल शरण सिंह | 1952 |
| (7) जयभारत | श्री मैथिली शरण गुप्त | 1952 |
| (8) तप्त गृह | श्री केदारनाथ मिश्र प्रभात | 1954 |
| (9) श्री गांधी चरितमानस | श्री विद्याधर महाजन | 1954 |
| (10) पार्वती | श्री रामानन्द तिवारी 'भारतीनन्दन' | 1955 |
| (11) झाँसी की रानी | श्री श्यामनारायण प्रसाद | 1956 |
| (12) मीराँ | श्री परमेश्वर द्विरेफ | 1957 |
| (13) उर्मिला | श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' | 1957 |
| (14) एकलव्य | डा० रामकुमार वर्मा | 1958 |

| | | |
|---|---|---|
| (15) सेनापति कर्ण | श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र | 1958 |
| (16) तारक वध | श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' | 1958 |
| (17) उर्वशी | श्री रामधारी सिंह दिनकर | 1961 |
| (18) सारथी | श्री रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' | 1961 |
| (19) बाणाम्बरी | श्री पोद्दार रामावतार अरुण | 1961 |
| (20) चन्द्रगुप्त मौर्य | श्री रामखेलावन वर्मा | 1962 |
| (21) प्रियदर्शी | श्री आनन्द मिश्र | 1964 |
| (22) लोकायतन | श्री सुमित्रानन्दन पंत | 1964 |
| (23) सरदार भगतसिंह | श्री श्रीकृष्ण सरल | 1964 |
| (24) मानवेन्द्र | श्री रघुवीर शरण मित्र | 1965 |
| (25) निराला | श्री तिलक | 1966 |

डा0 देवी प्रसाद गुप्त ने अपनी पुस्तक 'आधुनिक प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्य' में सन् 1947 के पश्चात् लिखे गये निम्नांकित 27 हिन्दी महाकाव्यों का उल्लेख किया है —[1]

| महाकाव्य | महाकवि | प्रकाशन सन् |
|---|---|---|
| (1) जननायक | श्री रघुवीर शरण मित्र | 1949 |
| (2) अंगराज | श्री आनन्द कुमार | 1950 |
| (3) वर्द्धमान | श्री अनूप शर्मा | 1951 |
| (4) रावण | श्री हरदयालु सिंह | 1952 |
| (5) जयभारत | श्री मैथिली शरण गुप्त | 1952 |
| (6) जगदालोक | डा0 गोपाल शरण सिंह | 1952 |
| (7) देवार्चन | श्री करील | 1952 |

१. आधुनिक प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्य - डॉ० देवीप्रसाद गुप्त - पृष्ठ सं० ४३-४४

| महाकाव्य | महाकवि | प्रकाशनसन् |
|---|---|---|
| (8) पार्वती | श्री रामानन्द तिवारी 'भारतीनन्दन' | 1955 |
| (9) रश्मिरथी | श्री रामधारी सिंह दिनकर | 1957 |
| (10) नारी | श्री अतुल कृष्ण गोस्वामी | 1957 |
| (11) मीरा | श्री परमेश्वर द्विरेफ | 1957 |
| (12) दमयन्ती | श्री ताराचन्द हारीत | 1957 |
| (13) उर्मिला | श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन | 1957 |
| (14) एकलव्य | डा0 रामकुमार वर्मा | 1958 |
| (15) तारक वध | श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' | 1958 |
| (16) सेनापति कर्ण | श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र | 1958 |
| (17) युगद्रष्टा प्रेमचन्द | श्री परमेश्वर द्विरेफ | 1959 |
| (18) रामराज्य | डा0 बलदेव प्रसाद मिश्र | 1960 |
| (19) उर्वशी | श्री रामधारी सिंह दिनकर | 1961 |
| (20) सारथी | श्री रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' | 1961 |
| (21) बाणाम्बरी | श्री चौधरी रामावतार अरुण | 1961 |
| (22) अनंग | डा0 मुन्नूलाल शुक्ल | 1961 |
| (23) प्रियमिलन | श्री नन्दकिशोर झा | 1964 |
| (24) झाँसी की रानी | श्री श्यामनारायण प्रसाद | 1964 |
| (25) लोकायतन | श्री सुमित्रानन्दन पंत | 1964 |
| (26) मानवेन्द्र | श्री रघुवीर शरण मित्र' | 1965 |
| (27) देवपुरुष गाँधी | श्री रमेशचन्द्र शर्मा | 1969 |

आधुनिक महाकाव्यों के कथानक के प्रमुख स्रोत पुराण और इतिहास रहे हैं। किन्तु समसामयिक जीवन की घटनाएँ, परिस्थितियाँ एवं व्यक्तित्व भी महाकाव्य-रचना के आधार रहे हैं। उदाहरण के लिए वैदेही वनवास, कृष्णायन, साकेतसन्त, दैत्यवंश, रावण, जयभारत, पार्वती, रश्मिरथी, एकलव्य, रावण, ऊर्मिला, उर्वशी, तारकवध, कुरुक्षेत्र, सारथी, दमयन्ती, रामराज्य, आदि महाकाव्यों की कथावस्तु पुराणों पर आधारित है; तो नूरजहाँ, सिद्धार्थ, वर्द्धमान, मीरा, हल्दीघाटी, आर्यावर्त, झाँसी की रानी, वाणाम्बरी और विक्रमादित्य आदि महाकाव्यों का कथानक इतिहासोद्भूत है। किन्तु महामानव, जननायक, जगदालोक, युगद्रष्टा, प्रेमबन्ध, लोकायतन और मानवेन्द्र आदि महाकाव्यों की रचना समसामयिक युग-जीवन , युग-पुरुषों और युगीन घटनाओं पर आधारित है। आधुनिक महाकाव्यों की कथावस्तु के इतिहास और पुराण पर आधा-रित होने पर भी कथान्वयन की नवीनता, मौलिक प्रयोगोद्भावनाएँ एवं मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि महाकाव्यकारों के असाधारण रचना-सामर्थ्य की परिचायिका हैं।

नायक की परिकल्पना तथा चरित्र-चित्रण की पद्धतियों में भी आधुनिक महाकाव्यकारों ने प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया है। उन्होंने एक ओर दैवी पात्रों (राम, कृष्ण, सीता, राधा आदि) के देवत्व का प्रक्षालन तथा दानवीय पात्रों(रावण हिरण्यकशिपु, दुर्योधन, दुःशासन आदि) के दानवत्व का परिमार्जन कर उन्हें मानवता के धरातल पर खड़ा किया है, तो दूसरी ओर उपेक्षित, तिरस्कृत एवं कलंकित कहे जाने वाले पात्रों( एकलव्य, कर्ण आदि) को महाकाव्यों का नायक बनाकर व्यापक मानवतावादी जीवन-दृष्टि का परिचय दिया है। आधुनिक युग के महाकाव्यों की यह एक ऐसी विशेषता है, जो समग्र हिन्दी काव्य-रचना के स्तर और धरातल को ऊँचा उठाती है। इसके अति-रिक्त वर्तमान युग में अनेक महाकाव्य नायिका-प्रधान हैं, जैसे- वैदेही वनवास, नूरजहाँ,

उर्मिला, दमयन्ती, मीरा, झाँसी की रानी, गान्धारी, कैकेयी, उर्वशी आदि। इन काव्यों के माध्यम से महाकाव्यकारों ने नारी जीवन की समस्याओं और आदर्शों को ही प्रस्तुत नहीं किया, वरन् नारी-जागरण की महान् आन्दोलनकारी चेतना को भी अभिव्यक्ति दी है।

महाकाव्यों की रचना का लक्ष्य-युग सम्भूत समस्याओं का निदान प्रस्तुत करना होता है — इस तथ्य का अन्वेषण इस युग के महाकाव्यों में सम्यक् रूप से किया जा सकता है। इन महाकाव्यों में देश-प्रेम, स्वजातीय गौरव, राष्ट्रीय सम्मान, मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा तथा समसामयिक जीवनादर्शों के अनुरूप युगीन प्रश्नों के समाधान की विराट् चेष्टा की गयी है। समष्टि रूप से मानवतावादी जीवन-दर्शन सांस्कृतिक निष्ठा उत्थानमूलक जीवनादर्श, नारी चेतना के मुखरित स्वर, जन-जागृति का उद्घोष, रचना-शिल्प की नवीनता तथा चरित्रों की युगीन संदर्भों में अवतारणा आधुनिक काल के महाकाव्यों की विशेषताएँ रही हैं, जिनके आधार पर इन काव्य ग्रंथों को भी भारती के भाण्डार की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि कहा जा सकती है।

अब प्रस्तुत अध्याय में अध्येय महाकाव्यों के कथानक का विवेचन किया जायेगा।

## जननायक (सन् 1949 ई0)

जननायक महाकाव्य की रचना श्री रघुवीर शरण मिश्र ने सन् 1949 में की थी। इसमें 31 सर्ग हैं। कथा ऐतिहासिक है।

बीसवीं शताब्दी के सर्वशक्तिमान् अदम्य साहसी, कर्मठ देशसेवक, आत्म-बल सम्पन्न, प्रातः स्मरणीय महापुरुष गाँधी जी कवियों के लिए एक प्रेरक तत्व है। अपने असाधारण व्यक्तित्व से उन्होंने देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक

एवं राजनीतिक परिस्थितियों के नवीन क्षितिजों का उद्घाटन किया।

'जन-नायक' का कथानक स्थूल और यथार्थ भूमि पर आधृत है। सम-सामयिक गाँधी जीवन का यथातथ्य चित्रण करने के कारण इसमें कवि को काल्पनिक अवान्तर प्रसंगों के सन्निवेश का अवकाश न मिला। इस दृष्टि से यहाँ कथानक में घटनाओं, परिस्थितियों के वैविध्य के संकलन पर भी यह चरितकाव्योन्मुख अधिक है। गाँधी जी के जीवन का संघर्ष, नाना संघर्षों, घात प्रतिघातों से युक्त होने पर भी इस काव्य में महाकाव्योचित औदात्य न आ सका, केवल एक ऐतिहासिक विवरण बनकर रह गया। प्रस्तुत काव्य में गाँधी जी की शिक्षा, बैरिस्ट्री, अफ्रीकागमन, रौलट एक्ट, अमृतसर में जलियाँ वाला बाग का हत्याकांड, चरखा-आन्दोलन, चौरी-चौरा-दमन-चक्र, लाजपतराय, भगतसिंह आदि देशभक्तों की मृत्यु, सत्याग्रह, द्वितीय महायुद्ध, बा की मृत्यु, पाकिस्तान की माँग, लंदन में [illegible] सरकार, ब्रिटिश शिष्ट मंडल का भारत आगमन, अस्थायी सरकार, विधान-परिषद् का निर्माण, नोआखाली में दंगे, भारत का विभाजन, साम्प्रदायिक दंगे, गाँधी- हत्या आदि अनेक घटनाओं का विवरणात्मक उल्लेख प्रस्तुत किया गया है। कल्पनाजनित नूतन प्रसंगों के अभाव में यह कथानक अधिक प्रभविष्णु नहीं है। कथानक में आरोह-अवरोह का उद्वहन भी नहीं है। एकरसता की सीधी सरणि पर ही यह अग्रसर होता है। अनेक अनावश्यक से प्रसंग इसकी संश्लिष्टता का हनन करते हैं। उचितानुचित ग्राह्याग्राह्य प्रसंगों के चयन में कवि ने कौशल से काम नहीं लिया। मौलिक उद्भावना का तो प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि समस्त घटनाएँ ज्यों की त्यों बापू की आत्मकथा से ली गयी हैं। जननायक की घटनाओं के विकास में नाटकीयता का लेश नहीं, अप्रासंगिक और सर्वथा उपेक्षणीय प्रसंगों की भरमार सर्वत्र है।[1] विरस, अरोचक घटनाओं

---

1- आधुनिक हिन्दी काव्य में रूपविधाएँ, डा० निर्मला जैन, पृ० 97

की विवृति पाठक की जिज्ञासा का प्रशमन न कर उसे एक प्रकार से क्लान्तमनस्क और उदास ही बनाती है। कथानक असम्बद्ध और अव्यवस्थित भी है। संघटना-शक्ति का शैथिल्य और अवान्तर प्रसंगों की बाहुल्य-विरस विरुदावली इसे महाकाव्य की सीमा से दूर रखते हैं। नाना घटनाओं का विस्तृत विवरण अवश्य उपलब्ध होता है।" इन पंक्तियों में भारत-वर्ष के अतीत, वर्तमान और भविष्य बोल रहे हैं। - - - पिछले वर्षों के संघर्षमय जीवन में जो हलचल, आलोड़न और विस्फोट हुए हैं; उनके भीतर महात्मा जी का व्यक्तित्व निष्कंप दीप शिखा की भाँति जलता हुआ चित्रित हुआ है, जो कभी भयंकर अंधकार को पास फटकने नहीं देता।" डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी की उपर्युक्त 'बधाई' में अंकित पंक्तियाँ गाँधी चरित की महिमा का संकेत अवश्य करती हैं, किन्तु कवि ने उस महिमा-न्वित चरित को महाकाव्योचित कथानक द्वारा प्रस्तुत न किया। अतः 'जननायक' का कथा-नक अत्यंत निर्बल है।

'बा' में नारीसुलभ अलंकार प्रियता भी थी।[1] परन्तु उसका चरित्र भी अधिक सफलता से चित्रित नहीं किया गया। चरित्र-चित्रण में न वक्रता है, न व्यंजना। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की तूलिका ने चरित्र का स्पर्श नहीं किया। अतः 'जननायक' इस दृष्टि से भी महाकाव्योचित नहीं।

जननायक' में कवि कल्पना - सलिल ग्रीष्म की जलधारा की भाँति शुष्क अथवा क्षीण दृष्टिगोचर होती है। कल्पना-तत्त्व काव्य में रमणीयता, नवीनता की रसस्फो-टना छिटकाने वाला होता है। कल्पना भावों के साधारणीकरण की स्थिति में पहुँचाने वाली होती है। यहाँ कल्पना की कारयित्री शक्ति का अभाव है। इसी के अभाव में कथानक में सजीवता और उदात्तता नहीं आ सकी। भारत की दुर्दशा का चित्रण भी मर्मस्पर्शी न हो सका।

---

1- जननायक' पृ० 157

महाकाव्योचित रसात्मकता का इसमें अभाव ही है। अनेक स्थलों पर नीरस उपदेशात्मकता वर्तमान है।[1] इतिवृत्तात्मकता और वर्णनात्मकता की प्रबलता ने और उपदेशात्मकता की विरसता ने 'जननायक' के रस-पक्ष को निर्बल बना दिया है। सम्पूर्ण काव्य में घटनाओं के विवरणों की विवृति है और सिद्धान्तों की पुनरावृत्ति है।[2] काव्य में करुण, शांत, वात्सल्य आदि रसों की हलकी झाँकियाँ मिलती हैं। जलियाँ वाला बाग का दृश्य करुण-प्रसूत है —

'जहाँ गर्भिणी बहन-बेटियाँ पेटों के बल चलवायी हैं।
जहाँ फूल-सी नन्हीं कलियाँ — फेंक आग में जलवायी हैं।
वह इकलौते बेटे का शव—जिसके पास खड़ी बुढ़िया माँ।
बेटे की छाती के ऊपर मुर्दा बनी पड़ी बुढ़िया माँ।"

(जननायक, पृ० 220)

'भारत-छोड़ो प्रसंग मर्मस्पर्शी बनाया जा सकता था; परन्तु उसमें कृत्रिमता ही जान पड़ती है।[3] गांधी जी की मृत्यु का वर्णन भी अधिक प्रकृत और मौलिक नहीं बन पाया है।[4]

कल्पना-शून्यता के कारण यहाँ प्रकृति-चित्रण में भी भव्यता और रम्यता न आ सकी। कथाप्रियता ने कवि को प्रकृति का निरीक्षण करने का अवसर प्रदान नहीं किया। इस काव्य में हृदय को तल्लीन करने वाले, रमाने वाले दृश्यों का अभाव है।

---

1- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, डा० गोविन्दराम शर्मा, पृ० 472

2- आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा तथा प्रयोग, डा० गोपालदत्त सारस्वत, पृ० 367

3- जननायक, पृ० 411

4- चुगना छोड़ा सभी चिड़ियों ने गउओं ने छोड़े तृण खाने,
जल थलचर नभचर रो रो कुछ दुखों से लगे चहकाने। पतझर में सब पत्ते टूटे ऋतु वसन्त में पतझड़ आया, सूरज ने मुँह ढक डाली, जो देखा वह रोता पाया। (जन० पृ० 577)

कथ्य की भाषा में न स्पंदन है और न प्राणवत्ता। अभिधा से ऊपर उठने की कवि ने इच्छा नहीं की। एक पर-छिन्न पक्षी की भाँति भाषा रेंगती चलती है। उसमें सुगमता और सुबोधता अवश्य है, वह प्रवाहशील और चलती है। कवि ने बोलचाल के शब्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग किया है। उर्दू-फारसी, के शब्दों को भी प्रयुक्त किया है, कफन सरदार, कोचवान, पायदान, हाजी, आखिरम बन, गम, वफादारियाँ, जहर, आखिरयात, मज़ा, मंजिल, मातम आदि ऐसे शब्द हैं। फेयरवेल बिल, टिकिट, रायरलेट, फुटपाथ, थेटर, स्मालपाक्स, जैसे अंग्रेजी के शब्द भी परिलक्षित होते हैं। कवि ने भाषा को अलंकृत कर उसे कुछ प्रभावोत्पादक बनाने का प्रयास भी किया है। प्रस्तुत अप्रस्तुत विधान आकर्षक है —

अर्थी ऐसे जाती जैसे भारत माँ की शान जा रही,

अर्थी ऐसे जाती जैसे जाती हो भूखे की रोटी।" (जननाo पृo 581)

और — 'मानो उस वीभत्स काण्ड में आये दौड़ शांत रस गति' में उत्प्रेक्षा अच्छी है। 'आँसू जलने लगे फाग से' आदि पंक्तियाँ भी सजीव प्रतीत होती हैं। मुहावरों का भाषा में स्वाभाविक प्रयोग है। पठान के छद्मवेश में नेता सुभाषचन्द्र बोस के चित्रण में पौराणिक वृत्त की सहायता ली गयी है।[1] शैली में सुदीर्घ हास्य-व्यंग्य वर्णित की झलक में द्रष्टव्य है।[2] जननायक में छन्द-वैविध्य है, मानो कवि ने छंदों की पिटारी ही खोल

---

1- जननायक पृ0 383

2- उनके बल आते माथे में, राजनीति के पढ़े होल थे।

दूर दूर तक देख सकें जो अति बड़ी पेटरी थैली।

बुझी हुई कुछ बाबू की, सिगरेट कहीं न देखी पैली।।

× × × ×

काले थे घुड़क-पुड़क बब, रुई जैसे नरम पेर थे।। (जननायक, पृ0 361)

रही हो। सर्गान्त में भी छन्द-परिवर्तन है। इसमें दोहा, चतुष्पदी, कुण्डली, प्रयाणगीत, पद, गीत, अतुकान्त छंद आदि प्रयुक्त हैं। चतुष्पदी और कुण्डली यहाँ सर्वप्रथम [illegible] में दृष्टिगोचर होती है।

परन्तु 'जननायक' कोई समुन्नत और गम्भीर जीवन-दर्शन देने में असफल रहा है। कवि द्वारा ईश्वर की सर्वव्यापकता स्वीकार की गई है। उसने जीवन में परिश्रम और साहस को सफलता के लिए अनिवार्य माना है। गाँधी चरित के इस आख्यान द्वारा कवि ने भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय भावना को निर्मलता प्रदान की है। स्वदेशानुराग की चेतना उद्बुद्ध कराना इस वृहदाकार रचना का उद्देश्य है। परन्तु जीवन के शाश्वत सत्यों, मूल्यों, व भविष्य के लिए महान् संदेश की व्यंजना का यहाँ अभाव है। अतः विशालाकार होने पर भी, निर्धारित महाकाव्य विषयक तत्त्वों का अनुपालन करने पर भी 'जननायक' तथाकथित महाकाव्य से ऊपर उठने में असमर्थ है।[1]

## अंगराज (सन् 1950)

अंगराज के कथानक का मूलाधार महाभारत है। इसकी कथावस्तु महारथी कर्ण के दीप्त चरित्र को लेकर निर्मित हुई है। कर्ण के चरित्र के साथ इसमें महाभारत की सम्पूर्ण कथा आ गयी है।[2] प्रस्तुत काव्य का नायक कर्ण है। इसके लिए कवि को बड़े कौशल से काम लेना पड़ा है। सूर्य-तेज-वर्णन, द्रौपदी के पाँच पतियों से सम्बन्ध, चीर-हरण और पाण्डवों के (स्वर्गारोहण के स्थान पर) देश-निर्वासन जैसे प्रसंगों में पर्याप्त मौलिकता दिखाई देती है। इसमें कर्ण की जीवन-गाथा अन्य घटनाओं के साथ बड़ी चारुता से

---

1- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, डा० निजाम उद्दीन, पृ० 187

2- आधुनिक हिन्दी महाकाव्य, डा० [illegible] शर्मा, पृ० 91

जुड़ी चली गई है। किन्तु इसमें लोक-प्रतिष्ठित को उलट दिया गया है। युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, द्रौपदी के चरित्र को गिरा देने से चारित्रिक मान्यताओं को बड़ा धक्का पहुँचा है।[1] अतः कर्ण और उसके मित्र के चरित्र को अति उत्कर्ष प्रदान करके कवि ने दुस्साहस का परिचय दिया है।

पच्चीस सर्गों के इस प्रबन्ध काव्य में कर्णचरित्र के साथ समग्र महाभारत की कथावस्तु को समेटने का प्रयास किया गया है। यहाँ 'महाभारत' की कथाओं में कहीं-कहीं स्वच्छन्दता के अनुसार परिवर्तन और परिशोधन किया गया है। कुछ प्रसंगों को बहिष्कृत भी किया गया है। इस प्रकार अंगराज की कथावस्तु में दो प्रकार के परिवर्तन किये गये हैं—(1) प्रसंगगत (2) चरित्रगत। यहाँ पाण्डव-कुन्ती संवाद को त्याग दिया गया है। कुन्ती का विलाप विशद होकर भी न्याय संगत नहीं हो सका। अधिरथ का रंगभूमि में उपस्थित होना और कर्ण द्वारा अधिरथ का सम्मान किया जाना कृत्रिम और यांत्रिक अधिक है। वारणावत-यात्रा मूलतः दुर्योधन का कुचक्र था। लेकिन कवि ने उस कुचक्र को पाण्डवों के मत्थे मढ़ा है। स्वयंवर के प्रसंग में भी स्वतंत्रता से काम लिया गया है। महाभारत में पाण्डव माता की आज्ञा का अनुपालन करते हैं। अंगराज में युधिष्ठिर के विवाह की बात बलपूर्वक उठती है। उसके बाद यहाँ द्रौपदी बिना किसी की आज्ञा के स्वतः पाँचों पाण्डवों की पत्नी बनना स्वीकार करती है। अंगराज में द्यूत-प्रसंग युधिष्ठिर के द्वारा प्रारम्भ करवाकर महाभारत में प्रतिपादित कथानक का विरोध किया गया है। यहाँ वध-नियोजन में भी ऐसा ही विरोध है। इस प्रकार कवि ने अनेकानेक स्थलों को स्वेच्छापूर्वक परिवर्तित किया है।[2] दूसरा परिवर्तन कवि ने चरित्र-चित्रण में किया है। कौरव-पाण्डवों के जीवन और चरित्र के प्रति कवि का अपना मौलिक

---

1. अंगराज, पृ0 6-38

2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, डा0 निजाम उद्दीन, पृ0 104

दृष्टिकोण है। यह विचारधारा परम्परागत विचारधारा के प्रतिकूल है। कवि स्पष्ट शब्दों में कौरवों का पक्ष न्याय-युत और पाण्डवों को अन्यथा घोषित करता है। वह पाण्डवों के मान्य चरित्र पर भी अनेक प्रकार के आरोप लगाता है। भारत का संस्कारी पाठक उन सब तथ्यों को स्वीकार नहीं कर सकता।[1] कवि की दृष्टि में पाण्डव असभ्य हैं, संयमहीन हैं। चारित्रिक दुर्बलता प्रायः प्रत्येक पाण्डव में थी। द्रौपदी को उन्होंने पंचायती पत्नी या काम चलाऊ स्त्री का तौर बना ही रखा था। सभी भाइयों के पास पत्नियों का अलग अलग प्रबल दल था।[2] इसके विपरीत कौरव-पक्ष का उत्कर्ष प्रदर्शित किया गया है। कवि की दृष्टि में युधिष्ठिर अकर्मण्य, कायर और निन्दनीय है। इसी दृष्टि से उसने कृष्ण को भी परखा है।

अंगराज में भावुक स्थलों का चित्रण भी अधिक नहीं। कवि की अनुभूति वहाँ पंगु जान पड़ती है। प्रकृति-चित्रण में कवि को अधिक सफलता मिली है।[3] परन्तु प्रकृति-चित्रण महाकाव्य का शास्त्रीय लक्षण पूर्ण करने के लिए ही किया गया है। वीररस प्रधान 'अंगराज' में युद्ध का अवश्य ही सजीव वर्णन किया गया है —

'युग्म दलों में चले दीपिका दीप आतंकक,
होने लगा निनाद युद्ध तब महाभयानक।
महारथी-प्रतिरथी भिड़ गये सभी परस्पर।
पादक-पादक भिड़े तथा कुंजर-प्रतिकुंजर।'[4]

महाभारत के संवादों में अति रमणीयता और सजीवता है। अंगराज में भी ऐसी सजीव संवाद-योजना कहीं कहीं मिल जाती है। शल्य और कर्ण का संवाद देखिए —

---

1- महाभारत का आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों पर प्रभाव, डा० विनय, पृ० 6।

2- अंगराज, पृ० 23 (प्रथम संस्करण 1950)

3- वही, पृ० 18-19

4- वही, पृ० 206

'बोला मद्रराज सप्रहास अंगराज से
सूतसुत, सावधान हो न प्रलाप करो
बार-बार ध्यान करो पार्थ के प्रताप का।'[1]

कर्ण ऐसा वीरोचित उत्तर देता है —

'स्यंदन बढ़ाओ हम हेरि न डरता कभी
क्रूर भवितव्यता से हीन दैवगति से।'[2]

अंगराज की भाषा शुद्ध और प्रांजल है, लेकिन कहीं कहीं अप्रचलित शब्दों के प्रयोग से स्वाभाविकता भंग हो गयी है। अलंकारों में भी कृत्रिमता अधिक लक्षित होती है। यहाँ काव्य का भावपक्ष जैसा हीन है, कलापक्ष भी वैसा ही है। इसमें महाकाव्य के प्राचीन लक्षणों का निर्वाह तो किया गया है; परन्तु महाकाव्योचित उदात्तता भंग हो गयी है। कथानक की विशृंखलता और उद्देश्य की अनिश्चितता के कारण महाकाव्योचित स्तर का संस्पर्श 'अंगराज' नहीं कर सका।[3] सम्पूर्ण काव्य के कथा-विकास में परिपाटी-परिवर्तन की दृष्टि से मौलिकता दृष्टिगोचर नहीं होती है। केवल चरित्र-चित्रण कौरव-पक्षी वीरों में सात्विकता और पाण्डवों में विकृति दर्शायी गयी है। कवि की दार्शनिक वैचारिक दृष्टि गंभीर है। सम्पूर्ण काव्य में इतिवृत्तात्मकता, वर्णनात्मकता की प्रधानता है। कौरव-पाण्डव संघर्ष में धर्म के जिस सूक्ष्म रूप की विवेचना, महाभारत में उपलब्ध है, कवि उसकी गंभीरता का स्पर्श नहीं कर पाया। एक विशेष प्रकार के पूर्वाग्रह से ग्रस्त यह प्रबन्ध काव्य विशेष उपलब्धिपूर्ण रचना नहीं है।'[4]

---

1- अंगराज, पृ० 220

2- वही, पृ० 221

3- आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा तथा प्रयोग, डा० गोपालदत्त सारस्वत, पृ० 216
4- महाभारत का आधुनिक हिन्दी प्रबन्धकाव्यों पर प्रभाव, डा० विनय, पृ० 61

## वर्द्धमान (सन् 1951)

'वर्द्धमान' का कथानक 17 सर्गों में विभक्त है। कथावस्तु की दृष्टि से इसके दो भाग किये जा सकते हैं—(1) पूर्वार्द्ध — सिद्धार्थ-त्रिशला से सम्बद्ध और सातवें सर्ग तक है। इसका प्रधान कथानक से पूर्व-पीठिका जैसा सम्बन्ध है। अतः इस कारण काव्य का अनुपातिरिक्त विस्तार हुआ है। (2) उत्तरार्द्ध — आठवें सर्ग से आरम्भ ~~सर्ग से आरम्भ~~ होता है। इसी में वर्द्धमान का अवतार भी होता है। पूर्वार्द्ध जितना मनोहर और आह्लादकारी है, उत्तरार्द्ध उतना ही गुरु और पावन है। पूर्वार्द्ध में वैशाली के परिचय में स्थित क्षत्रियकुण्ड के वर्णन के साथ सिद्धार्थ का यौवन और त्रिशला का नख-शिख वर्णन है। इसके पश्चात् राजा का प्रेमालाप, त्रिशला का स्वप्न, गर्भ धारण और प्रकृति सुषमा की अभिव्यंजना है। उत्तरार्द्ध (आठवें सर्ग से) में वर्द्धमान का जन्म बाललीला नृत्य, शिक्षा, प्रणय-प्रसंग, गृह-परित्याग, दीक्षा, काम-परीक्षा, सिद्ध-शिलारोहण एवं धर्म-विवेचन आदि प्रसंग दृष्टिगोचर होते हैं। यद्यपि महावीर का ऐतिहासिक जीवन-वृत्त सर्वथा अप्राप्य एवं अपूर्ण है [1] तथापि कवि ने प्रमुख जीवन-प्रसंगों की अवहेलना नहीं की है। कुछ ऐतिहासिक तथ्यों के अतिरिक्त काव्य का समग्र कथानक कल्पनाश्रित है। कहीं-कहीं कल्पना असंयमित भी हो गयी है यथा वर्द्धमान का राक्षसों द्वारा कंदुकवत् उछालकर पटका जाना और त्रिशला की उँगली के वर्णन द्वारा महाभारत की कथा का चमत्कार दिखलाना।'[2] 'वर्द्धमान' एक उपदेशात्मक ग्रंथ प्रतीत होता है, इसलिए इसका कथानक अधिक व्यवस्थापरायण और सुगठित नहीं है। 'कथा के सूत्र' उपलब्ध मात्र हैं, जैन धर्म के सिद्धान्तों का वर्णन प्रधान है।

---

1- वर्द्धमान, पृ० 28 (आमुख)

2- नखोपमा, बडवती, ऊ-ऊर्मिका
मनोहरा, सुन्दर-पर्व-संकुला। (शेष अगले पृष्ठ पर)

अन्तिम सर्ग में कथा बिल्कुल रुकी सी जान पड़ती है। आरम्भ में भी घटनाओं में तीव्र घात-प्रतिघात अथवा किसी प्रकार का संघर्ष अप्राप्य है। लेखक ने अनेक स्थलों पर घटना के अभाव में अवान्तर प्रसंगों की उद्भावना और वर्णन-विस्तार का परिचय दिया है। यह, प्रयत्न कुछ स्थलों पर अस्वाभाविक है। राजा सिद्धार्थ की रतिक्रीड़ा वर्णन में इसी प्रकार का अनपेक्षित विस्तार है। इसके अतिरिक्त विराग-भाव, स्वप्न-दर्शन, धर्म-चर्चा तथा अलौकिक घटनाओं के प्रसंग में धार्मिक रंग अधिक गहरा हो गया है और ये प्रसंग सर्वथा नीरस और शिथिल जान पड़ते हैं।[1] कथानक में नाट्य संधियों का निर्वाह भले ही किया गया हो, परन्तु उसमें महाकाव्योचित संघटना और जीवितत्व, समर्थ घटनाओं की योजना, अन्तःप्रेरणा और उदात्त प्राणवत्ता के अभाव में स्पृहणीय रोचकता का अभाव है।[2]

## देवार्चन (सन् 1952)

श्री करील ने सन् 1952 में सप्त सर्गात्मक 'देवार्चन' नामक काव्य का प्रणयन किया। प्रस्तुत काव्य के नायक 'गोस्वामी तुलसीदास हैं।

हिन्दी में यह प्रथम कृति है, जो भारतरत्न तुलसी के जीवन वृत्त पर विस्तार से प्रकाश डालती है। कथानक के लिए जनश्रुतियों तथा 'तुलसी के काव्यों से सामग्री का संचयन किया गया है। यत्र तत्र कुछ मौलिक उद्भावनाएँ भी अवलोकनीय

---

(पिछले पृष्ठ का शेषांश)
नरेन्द्र-काव्य - कर अंगुली लखी,

कथा महाभारत के समान ही। (वर्द्धमान, पृ० 60

| महाभारत के पक्ष में | त्रिशला के पक्ष में |
|---|---|
| नलोपमा (राजा नल) | कुन्तलाल के समान |
| अरुन्धती (पतिव्रता) | बिन्दु वाली |
| ऊर्मिला (तरंग) | रेखा वाली |
| सुन्दर वर्ण (अक्षर) | गौर |

1- आधुनिक हिन्दी काव्य में रस-विधाएँ, डा० निर्मला जैन, 95

2- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य डा० निजामुद्दीन, पृ० 266

है। पात्रों एवं कथावस्तु को सजीव बनाने के लिए कल्पनाशक्ति का उपयोग सराहनीय है। देवार्चन का बाह्य रूप तो महाकाव्य के प्राचीन लक्षणों पर ही आधारित है, परन्तु उसमें लोकात्म-तल्लीनता है और आन्तरिक रूप में भी जीवंतता, गहनता तथा उत्कृष्टता की अभिव्यक्ति प्रतिष्ठा कवि नहीं कर सका। महाकाव्य का सृजन महान् प्रतिभा द्वारा संभव होता है और वह महान् प्रतिभा करील में नहीं है।[1]

कथानक में चिन्तामणि और कमला कल्पित हैं। इनके साथ भारती, विद्युल्लेखा आदि पात्र भी कल्पना-प्रसूत हैं। रहीम और रत्ना का अवश्य ही ऐतिहासिक महत्त्व है। बटु द्वारा तुलसी को अनाथ बनाना, पिता-पुत्र का पुनर्मिलन, रहीम का रत्ना को पत्र प्रेषित करना आदि प्रसंग कथानक को गम्भीरता प्रदान करते हैं। रत्ना सौंदर्य के परिसंवादों में देवर-भाभी का हास-परिहास चित्रित है। यहाँ पारिवारिक झाँकी मिल जाती है, इसमें भारतीय पर्वों — नागपंचमी, विजयादशमी, होली आदि का वर्णन है, जिनके अन्त उल्लेख में 'भारतीयता की पुनः प्रतिष्ठा' मानी गयी है। देवार्चन में महाकाव्य का ढाँचा तो अवश्य प्रस्तुत किया गया है, किन्तु उसमें महाकाव्योचित प्राण-प्रतिष्ठा करने में कवि सफल नहीं हुआ है। महाकाव्य में जो रसात्मकता अपेक्षित है, उसका देवार्चन में अभाव है। उसके अधिकांश प्रसंग नीरस और कवित्वहीन प्रतीत होते हैं। ---- रत्ना और तुलसी के गार्हस्थ्य जीवन का चित्रण तुलसी का गृह-त्याग और संन्यासी के वेश में उनकी रत्ना से अंतिम भेंट जैसे मर्मस्पर्शी प्रसंगों में भी महाकाव्योचित सरसता लाने में कवि सफल नहीं हुआ है। 'देवार्चन' के कथानक में भी महाकाव्योचित धारावाहिकता नहीं दिखाई देती।'[2]

---

1- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, डा0 निजामउद्दीन, पृ0 191

2- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, डा0 गोविन्दराम शर्मा, पृ0 476

कवि ने तुलसीदास के चरित्र को आँकने का प्रयास तो अवश्य किया है; परन्तु अभी कवि को सफलता नहीं मिली। गोस्वामी तुलसीदास को भावुक एवं पत्नी द्वारा प्रताड़ित चित्रांकित करके कवि ने सहानुभूति की रक्षा अवश्य की है, किन्तु सफल नायक की भूमिका में तुलसीदास प्रस्तुत न किये जा सके। और रत्ना के चरित्र में भी नायिका की गुण-गरिमा न आ सकी। उसका एक रूप अवश्य ही नितान्त नैसर्गिक, मनोवैज्ञानिक और प्रकृत है; वह है उसका वियोग-वात्सल्य। यहाँ वह अपने पतिदेव से चार पग आगे हैं। रत्ना की ममता में एक सच्ची माता के हृदय की धड़कनें श्रवणगोचर होती हैं ——

"मैं किसको नित्य दूध-भात अब खिलाऊँगी,
सिर गूँथ अब किसका मैं यह कौन मन रिझाऊँगी।
नयनों में किसके फूल से काजल लगाऊँगी।
किसके ललाट पर मैं डिठौना सजाऊँगी।"[1]

वियोग-वात्सल्य में कवि को स्पृहणीय साफल्य प्राप्त हुआ है। होली[2], रक्षाबंधन[3] आदि पर्वों के चित्रण में शाब्दिक संकुलता अवश्य है; रसात्मकता का बोध कम है। प्रकृति के चित्रण में कुछ सजीवता है।[4] लेकिन कवि बाढ़ का दुर्धर्ष चित्र प्रस्तुत न कर सका। इस पर आश्चर्य होता है। बाढ़ की विकरालता और प्रचण्डता का चित्र पाठक के नेत्रों के सामने उपस्थित नहीं होता। यह प्रसंग नीरस ही है।'[5]

1- दीपार्चन, पृ0 18।
2- वही, पृ0 60
3- वही, पृ0 27-28
4- वही, पृ0 1
5- वही, पृ0 86

देवार्चन में कवित्व का उत्कर्ष नहीं दिखलाई पड़ता। भाषा अभिधात्मक है, उसमें अंकित आकर्षण और सजीवपन है। संस्कृत शब्दावली के प्रयोग में कवि ने तुलसी के पाण्डित्य को ही अधिक प्रदर्शित किया है। यहाँ संस्कृत की पंक्तियाँ और छंद तक प्रयुक्त हैं।[1]

देवार्चन में विस्तार है, गहनता नहीं; वर्णनात्मकता है कवित्वात्मकता नहीं। कथानक है परन्तु सम्यक् सम्बन्ध-निर्वाह नहीं। यहाँ प्राचीन-संस्कृति, नारी जागरण की झाँकियाँ तो हैं; परन्तु रमणीयता नहीं। महाकवि तुलसी के जीवन-वृत्त पर प्रणीत यह प्रबन्धात्मक रचना भारतीय संस्कृति का बिम्ब प्रस्तुत करती है।[2]

कवि ने लिखा है कि तुलसीदास का बचपन का नाम रामबचन था तथा पारिवारिक उपनाम श्री पंडित था। इनका जन्म मुगलों के शासनकाल में एक विद्वान् के घर में हुआ था। इनके जन्म के कुछ समय बाद इनकी माता का स्वर्गवास हो गया तथा कुछ ~~और~~ दिनों के बाद इनके पिता भी इन्हें अकेला छोड़कर चल बसे। इस प्रकार इनका लालन-पालन इनके पिता के मित्र श्री चिन्तामणि द्वारा हुआ।[3]

रामबचन की शिक्षा-दीक्षा काशी के प्रसिद्ध विद्वान् श्री शेष सनातन जी के आचार्यत्व में पूरी हुई। इनका विवाह रत्ना नामक स्त्री से हुआ, जिससे तारक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ[4]; जो शीघ्र ही शीतला से पीड़ित होकर संसार से चल बसा।[5] पुत्र-मृत्यु से व्यथित रत्ना पितृगृह चली गयी। जब रामबचन काशी की पंडित परिषद् से लौटकर घर आये, तब घर में पत्नी को न पाकर गंगा पार कर अपनी पत्नी से मिलने ससुराल

---

1-देवार्चन, पृ0 337

2-स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, डा0 निजामउद्दीन, पृ0 192

3-छायावादोत्तर हिन्दी प्रबन्ध काव्यों का सांस्कृतिक अनुशीलन, डा0 शिवआधार दयाल अवस्थी, पृ0 52

4-5— देवार्चन, प्रथम पृ0सं0 5/6, 8/14

जा पहुँचे। पति की कामासक्ति[1] पर रत्ना ने उनकी भर्त्सना की, जिससे विक्षुब्ध होकर वे गृह त्याग कर साधु हो गये। गुरु सनातन ने रामबोला को दीक्षा दी और उनका नाम तुलसीदास हो गया।[2] तुलसीदास ने तीर्थाटन कर अपने ज्ञान की वृद्धि की और रामचरित मानस ऐसे उदात्त महाकाव्य की रचना की।

जीवन के अंतिम समय में तुलसीदास जी अपनी पत्नी से मिलने अपने गाँव पहुँचे।[3] रत्ना अपने पति को देखकर अत्यन्त करुण हो गयी। उसकी यह दशा देखकर महाकवि तुलसीदास 'रघुपति राघव राजाराम। पतित पावन सीता राम' कहते हुए बाहर चले गये।'[4]

काव्य का प्रारम्भ चित्रकूट के एक मंदिर में देवार्चन के लिए आये हुए श्री पंडित और रत्ना के देवपूजन के प्रसंग से हुआ है,[5] इसके पूर्व की घटनाओं का स्मृति रूप में वर्णन हुआ है।

डा0 शिवकुमार दयाल अवस्थी ने अपनी पुस्तक 'छायावादोत्तर हिन्दी प्रबन्धकाव्यों का सांस्कृतिक अनुशीलन ' में प्रस्तुत काव्य की कथावस्तु का विवेचन करते हुए उसमें निम्नांकित दोषों का उल्लेख किया है[6]—

(1) प्रस्तुत काव्य में कवि की जन्मभूमि का नामोल्लेख नहीं किया गया है।

(2) तुलसी-पुत्र तारक का उल्लेख अप्रामाणिक है।

(3) तुलसीदास रामानन्दी वैष्णव थे, संन्यासी नहीं, जबकि प्रस्तुत काव्य में उन्हें संन्यासी बतलाया गया है।

(4) काव्य में अनेक कल्पित नामों का उल्लेख किया गया है।

---

1- देवार्चन, 11/111

2- वही, 12/111

3- राम को पाकर कृपा की ओर, रत्ना रही वह साधु घर की ओर। (वही, 17/33)

4- कुलपद्म निष्प्राण हो सन्यास—सीताराम। 17/38

5- देवार्चन, पृ0 1/40

6- छायावादोत्तर हिन्दी प्रबन्धकाव्यों का सांस्कृतिक अनुशीलन, डा0 शिवकुमार दयाल अवस्थी, पृ0 92

(5) 'देवार्चन' काव्य तुलसीदास के काव्यगुणों को उपस्थित करने में असमर्थ सिद्ध होता है।

## रावण (सन् 1952)

श्री हरदयालु सिंह ने माइकेल मधुसूदन दत्त के मेघनाद वध से प्रेरणा-प्राप्त कर सन् 1952 में रावण महाकाव्य की रचना की। रावण चरित्र प्रधान महाकाव्य है। कथा का आधार पौराणिक होते हुए भी नवीन प्रसंगोद्भावनाओं द्वारा कवि ने कथाचयन में मौलिकता का परिचय दिया है। प्रस्तुत काव्य में सत्रह सर्ग हैं।

रावण महाकाव्य को देखें, तो ज्ञात होगा कि रावण का देवों से विरोध जन्मजात न था। एक दिन पुलस्त्य ने रावण से बतलाया कि देवताओं के अनुरोध से विष्णु ने तुम्हारे नाना सुमाली को मार डाला था। यहीं से रावण देव-विरोधी हो गया। उसने देवकुल के संहार का निश्चय किया। अपने शौर्य और पराक्रम से रावण ने त्रैलोक्य में विजय का झण्डा फहरा दिया। राम से रावण के द्वेष का कारण यह था कि राम राक्षस-कुल के अनिष्ट के लिए तप कर रहे मुनियों के सहायक हुए। राम ने ताड़का का वध किया। जनस्थान की व्यवस्थापिका शूर्पणखा ने जब यज्ञों पर प्रतिबन्ध लगा दिया तो मुनियों ने उसका विरोध किया। फलस्वरूप खरदूषण को ससैन्य भेजा गया। उनका भी राम ने वध कर दिया। लक्ष्मण ने शूर्पणखा के नाक कान भी काट लिये। प्रतिशोध की भावना से रावण ने सीता का हरण किया, जो अन्ततः राम-रावण युद्ध का कारण बना।

इस प्रकार इस महाकाव्य में हम देखते हैं कि देव-दानव संघर्ष के मूल में देवों का ईर्ष्या-भाव और छल-छद्मपूर्ण व्यवहार अति प्रमुख रहे हैं।[1] इसके विपरीत

---

1- हिन्दी महाकाव्य: सिद्धान्त और मूल्यांकन, डा0 देवीप्रसाद गुप्त, पृ0 55।

दैत्यों और राक्षसों के चरित्र में दानशीलता, शौर्य, साहस, पराक्रम, तपश्चर्या, तेजस्विता शिवाराधन, निष्ठा, प्रशासनिक योग्यता जैसे गुण निहित हैं; जिनकी पूर्वाग्रही दृष्टिकोण के कारण उपेक्षा की गयी है।

हरदयालु सिंह की प्रबन्धात्मक कृति 'रावण' महाकाव्य है। दैत्यवंश की भाँति यहाँ भी कवि ने नायक सम्बन्धी परम्परानुमोदित धारणा का खण्डन कर सर्वथा त्याज्य और बहिष्कृत दैत्यराज रावण को नायकत्व प्रदान किया है। रामायण का प्रतिनायक दुष्ट रावण कवि-कल्पना से प्राणान्वित हो नायक की भूमिका में चित्रित किया गया है। आधुनिक युग के मानवतावादी दृष्टिकोण के उन्मेष ने कवि को यह कार्य सम्पादित करने की प्रेरणा प्रदान की। इस दृष्टि से यह चरित्रप्रधान काव्य है।[1]

'रावण' में उन्हीं घटनाओं को संग्रथित किया गया है, जिनका रावण से अधिक सम्बन्ध है। कथानक वाल्मीकि रामायण' पर आश्रित है। उत्तरार्द्ध पूर्वार्द्ध की अपेक्षा अधिक कल्पनाश्रित है। काव्य का रूप आद्यंत वर्णनात्मक है। कथावस्तु में सहज-अपेक्षित चमत्कार, नाटकीयता और वैचित्र्य है। कथारम्भ विंध्याचल की सुषमा से होता है। कैकसी अद्भुत सुन्दरी है, जो तप द्वारा विश्रवा को वर रूप में प्राप्त कर रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद और शूर्पणखा को जन्म देती है। कुबेर लंकाराज्य का परित्याग करता है। रावण मालिनी और मन्दोदरी से विवाह कर लंकाधिपति बन जाता है। मेघनाद ने नागकन्या सुलोचना से गान्धर्व-विवाह किया। यहाँ कवि ने चन्द्रदूत का प्रसंग (सर्ग7) आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया है। रावण पुलस्त्य मुनि द्वारा अपना वंश-वृत्तान्त सुनकर दैत्य-कुल का संहार कर त्रैलोक्यजयी बनता है। देव-दानव का यह युद्ध ही राम-रावण के महायुद्ध का सूत्रपात करता है। फिर शूर्पणखा का अपमान, सीताहरण, महायुद्ध और

---

१- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, डा०निजामउद्दीन, पृ० ८४-८५

राम की विजय, विभीषण का लंकाधिपति बनकर मंदोदरी को रानी बनाने का प्रयास, रावण-पुत्र अरिमर्दन का विभीषण से युद्ध और लंका पर अरिमर्दन के अधिकार का वर्णन किया गया है।

कथानक में पर्याप्त मौलिकता है। कैकयी का वर-अन्वेषण, मेघनाद का सुलोचना के विरह में पीड़ित और चन्द्रदूत द्वारा प्रिया को संदेश भेजना, विभीषण का चारित्रिक उत्कर्षापकर्ष, राक्षस-पुत्र अरिमर्दन द्वारा लंका राज्य में स्वतंत्र राज्य की स्थापना आदि प्रसंग पूर्णतः नवीन और मौलिक हैं। सीता का अपहरण कवि ने राजनीतिक दृष्टि से समीचीन उद्घोषित किया है और उसके साथ विभीषण को जयचन्द सदृश राजद्रोही के रूप में चित्रित किया है। कथानक में कवि ने आधुनिक युग की सामाजिक, राजनीतिक दशा से प्रभावित हो नवीन घटनाओं की योजना की है। यथा शूर्पणखा को जनस्थान की व्यवस्थापिका नियुक्त करना आधुनिक नारी जागरण का प्रभाव है। विभीषण की कूटनीति भी आधुनिक युग की कूटनीति का प्रतिरूप है। गाँधी जी के सत्याग्रह का प्रभाव मुनियों के विद्रोहाभियान में दृष्टिगत होता है। यह पृथक् विषय है कि कवि के इस नूतन प्रयास से पौराणिक भक्त नाक भौं चढ़ा सकते हैं, परन्तु साहित्यिक दृष्टि से यह प्रयास महत्त्वहीन नहीं है।

'रावण' में भावात्मक स्थलों की सहृदयापेक्षित अभिव्यंजना नहीं है। सीतापहरण के उपरान्त वियोगी राम का मर्मस्पर्शी चित्रण नहीं किया गया है। शूर्पणखा के रक्तरंजित होने की दशा भी प्रभावोत्पादक नहीं कही जा सकती। मंदोदरी की अनाथावस्था को मार्मिक बनाया जा सकता था, परन्तु ऐसा नहीं हो सका है। यहाँ चन्द्रदूत जैसा प्रसंग भी साधारण ही बनकर रह गया है। दूत-काव्य की सुदीर्घ परम्परा है। कालिदास का 'मेघदूत', सत्यनारायण 'कविरत्न' का भ्रमरगीत, हरिऔध का 'पवनदूत', अनूप शर्मा का 'वरालदूत' और जैनकाव्य में वर्णित 'इन्दुदूत' के दृष्टान्त सम्मुख रहने पर भी हरदयालु सिंह का चन्द्रदूत-प्रसंग वर्णनात्मकता तक ही सीमित रहा है।[1]

1-स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, डॉ० निजामुद्दीन, पृ० 89

'रावण' महाकाव्य की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। कवित्त घनाक्षरी, सवैया, रोला आदि प्राचीन छन्दों का प्रयोग रसानुकूल है। अन्य रसों के साथ शृंगार तथा वीर रस का परिपाक सराहनीय है।

इस काव्य में यह विशेषता है कि अपने पूर्ववर्ती अन्य कवियों का अनुकरण करते हुए भी कवि अंधानुकरण के दोष से मुक्त रहा है। कहीं-कहीं तो वह अपने पूर्ववर्ती कवियों से भी आगे बढ़ गया है। इसकी गणना रीतिबद्ध काव्यों में की जा सकती है।

परन्तु 'रावण' से किसी महदुद्देश्य का संपादन नहीं हो सका। रावण का उत्कर्ष, विभीषण का अपकर्ष प्रदर्शित करकवि ने नवीन दृष्टि का परिचय तो अवश्य दिया है, परन्तु इसमें जीवन की व्यापकता, चारित्रिक महनता, भावात्मक प्रसंगों की मार्मिकता अनुपलब्ध है। भाषा और भावानुभूति में महाकाव्योचित औदात्य नहीं है। अतः इसे महाकाव्य की श्रेणी में प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता।[1]

## जयभारत(सन् 1952)

श्री मैथिली शरण गुप्त द्वारा प्रणीत 'जयभारत' महाभारत पर आधारित महाकाव्य है। इसकी रचना सन् 1952 में हुई थी। सम्पूर्ण काव्य 47 सर्गों में विभक्त है। प्रत्येक सर्ग का नामकरण प्रतिपाद्य विषय अथवा पात्रों के आधार पर किया गया है। जैसे नहुष, यदु और पुरु, योजनगंधा, जतु-विद्वेष, एकलव्य, परीक्षा, लाक्षागृह लक्ष्यवेध, चन्द्रग्रह, वनवास आदि। राजा नहुष के इतिवृत्त से काव्य का प्रारम्भ तथा पाण्डवों के स्वर्गारोहण से काव्य की समाप्ति होती है। काव्य के नायक युधिष्ठिर हैं।

---

1- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, डा० निजाम उद्दीन, पृ० 89

इस काव्य में शान्त, वीर, शृंगार तथा करुण रस की बड़ी सुन्दर व्यंजना हुई है।

यदु के वंश में अनेक पीढ़ियों के बाद श्रीकृष्ण का जन्म हुआ, और पुरुवंश में उत्पन्न भरत के नाम पर इस भूखण्ड का नाम भारत पड़ा। इसी वंश में कुछ समय बाद महाप्रतापी राजा शन्तनु उत्पन्न हुए, जिनकी पत्नी गंगा से भीष्म पितामह का जन्म हुआ। गंगा के अन्तर्लीन होने पर शन्तनु ने योजनगंधा (सत्यवती) नाम की एक मल्लाह कन्या से विवाह किया, जिससे चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र हुए। चित्रांगद को इसी नाम के गंधर्व ने मार डाला।

प्रतापी भीष्म ने काशिराज के स्वयंवर में उसकी तीनों पुत्रियों — अम्बा, अम्बालिका और अम्बिका का अपहरण कर लिया। अम्बिका, अम्बालिका ने स्वेच्छा से विचित्रवीर्य को अपना वर मान लिया, किन्तु अम्बा ने अपना हृदय पहले ही शाल्व नरेश को दे दिया था। अस्तु, जब अपहृता कुमारी अम्बा शाल्व नरेश द्वारा गृहीत न हुई, तो उसने भीष्म को दण्ड देने के इरादे से कठोर तप किया। शंकर जी के वरदान स्वरूप अम्बा ने भीष्म के संहार के लिए अगले जन्म में शिखण्डी के नाम से जन्म लिया।[1] अतिशय भोगी होने के कारण विचित्रवीर्य के अल्पवय में ही कालकवलित हो जाने पर व्यास के संयोग से नियोग द्वारा अम्बिका-अम्बालिका तथा दासी के गर्भ से क्रमशः धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर का जन्म हुआ। यथा समय धृतराष्ट्र का विवाह गंधार नरेश सुबल की पुत्री गांधारी के साथ हुआ। जिससे दुर्योधन आदि सौ पुत्र उत्पन्न हुए और पाण्डु का विवाह शूरसेन की आत्मजा तथा कुन्तिभोज की पालिता कन्या कुन्ती तथा मद्रेश की भगिनी माद्री के साथ हुआ, जिनसे अर्जुन आदि पाँच पुत्रों का जन्म हुआ।[2]

धृतराष्ट्र के अंधे होने के कारण राज्य पाण्डु को मिला, किन्तु पाण्डु की अकाल-मृत्यु होने के कारण धृतराष्ट्र ने मोहासक्त होकर राज्यभार दुर्योधन को दे दिया। दुर्योधन ने पाण्डवों को मारने के अनेक उपाय किये। उसने लाक्षागृह में पाण्डवों को जलाने

---

1- छायावादोत्तर हिन्दी प्रबन्धकाव्यों का सांस्कृतिक अनुशीलन, डा0 [illegible] दयाल अवस्थी, 53-54

2- जयभारत, कौरव पाण्डव, पृ0 42

का षड्यन्त्र किया, किन्तु वह इसमें सफल न हो सका। भीष्म तथा विदुर के कहने पर दुर्योधन ने पाण्डवों को आधा राज्य दे दिया, किन्तु द्यूत-क्रीड़ा में हराकर उनका राज्य छीन लिया और उन्हें बारह वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष का अज्ञातवास देकर वन भेज दिया। अपनी अज्ञातवास की अवधि पूर्ण कर जब पाण्डव वापस लौटे, तब उन्होंने दुर्योधन से आधा राज्य और अन्त में पाँच गाँव माँगे; किन्तु दुर्योधन युद्ध के बिना सुई की नोक के बराबर भूमि भी देने को तैयार न हुआ। इस प्रकार दोनों के बीच युद्ध होना अनिवार्य हो गया और 18 दिन के महाभारत युद्ध में दोनों पक्षों के वीरों तथा यहाँ के सम्पूर्ण कला-कौशल का विनाश हो गया। दुःखी मन से युधिष्ठिर ने राज्य भार ग्रहण किया।

काल के वशीभूत होने पर यदुवंशी भी आपस में लड़कर नष्ट हो गये। श्रीकृष्ण के परमधाम गमन के पश्चात् युधिष्ठिरादि ने भी हिमालय पर आरोहण किया। अर्जुन आदि चार पाण्डव द्रौपदी सहित बीच रास्ते में ही अतिशीत के कारण संज्ञाशून्य हो गये; किन्तु युधिष्ठिर धर्म रूपी[1] कुत्ते को साथ लेकर सदेह स्वर्ग गये।[2]

महाभारत के कथा-प्रसंगों की अलौकिकता का प्रक्षालन कर कवि ने उन्हें युग की भावना और प्रवृत्ति के अनुरूप प्रस्तुत किया है। अपने पौराणिक आख्यानों को अपनी काव्य कला और कल्पना-शक्ति के उपयोग से बुद्धिजीवी पाठक के लिए सहज ग्राह्य बनाया है। महाभारत के विशाल कथानक को जयभारत के रूप में प्रस्तुत कर उसे महाकाव्योचित गरिमा प्रदान कराने में गुप्त जी कृतकार्य हुए हैं। डा0 निजामुद्दीन का मत है कि 'जयभारत का कथानक सुनियोजित नहीं है और न ही उसमें पूर्ण अन्विति, पारस्परिक कार्य-कारण का निर्वाह है। दुर्वासा, नहुष आदि के प्रसंग सुसम्बद्ध नहीं है। कथानक के इस शैथिल्य का कारण कवि

---

1- जयभारत स्वर्गारोहण, पृ0 447

2- वही, पृ0 447

की विकृत मनःस्थितियों का परिणाम है। अपने समग्र रूप में जयभारत महाकाव्योचित गुण-गरिमा से विरहित एक वृहदाकार रचना है। इसमें उदात्त काव्य-शिल्प का अभाव है। 'जयभारत' एक उच्च काव्य-कृति न होकर महाभारत का पद्यात्मक रूपान्तर है।[1] कथा-संगठन होने पर भी प्रबन्ध-कौशल का अभाव है, श्रृंखलाबद्धता और एकसूत्रता से रहित वह एक वृहद् प्रबन्ध काव्य ही माना जायेगा, महाकाव्य की सम्पूर्ण गरिमा उसमें नहीं है।[2]

## पार्वती (सन् 1955)

श्री रामानन्द तिवारी 'भारती नंदन' विरचित पार्वती महाकाव्य समृद्ध साहित्यिक परम्परा की रचना है। 27 सर्गों में रचित पार्वती महाकाव्य में भारतीय संस्कृति के आदर्श स्वरूप का व्यापक चित्रण हुआ है। इसमें भगवती पार्वती के सम्पूर्ण जीवन-वृत्त का वर्णन है। कथा का मूल आधार शिव पुराण है।

सती के आत्मदाह कर लेने पर शंकर जी सदैव समाधिस्थ रहा करते थे, किन्तु इसी बीच तारकासुर नामक प्रचण्ड दैत्य का उदय हुआ, जिसके पराक्रम से सभी देव भय-भीत हो गये। उसकी मृत्यु शंकर जी के पुत्र स्वामि कार्तिकेय के द्वारा होनी थी। अतः सभी देवताओं ने मिलकर कामदेव की सहायता से शंकर जी की समाधि भंग करनी चाही। किन्तु शंकर जी ने कामदेव को भस्म कर दिया।

तदनन्तर पार्वती जी ने शंकर जी को पति बनाने की इच्छा से तपस्या प्रारम्भ कर दी। शंकर जी ने छिपे वेश में पार्वती जी की परीक्षा ली और सन्तुष्ट हो जाने पर उन्हें पत्नी रूप में स्वीकार कर लिया। कुछ समय के पश्चात् कार्तिकेय का जन्म हुआ और उसने तारकासुर का वध किया।

---

1- विवेचन (वर्ष 1, अंक 1) पृष्ठ 22

2- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, डा० निजामुद्दीन, पृ० 112

कवि ने काव्य के अन्तिम तीन सर्गों में शिवधर्म, शिवनीति और शिव संस्कृति का उल्लेख किया है। त्रिपुर वध की प्रतीकात्मक व्याख्या करते हुए कवि ने लिखा है कि तपःशक्ति से युक्त तेजस्वी योगी शंकर प्रकृति में व्याप्त दुष्ट तत्वरूपी त्रिपुर का विनाश करते हैं।[1] ज्ञान, भक्ति और कर्म का समन्वयही त्रिशूल है जिससे त्रिपुर का वध होता है। शुद्धाचरण युक्त पवित्र नारी उमा अपने स्नेह से नर को शंकर बना देती है। इस प्रकार का योग धरती पर में कैलाश और स्वर्ग की छटा अवतरित कर देता है। मानव का कल्याण तभी होगा, जब उसमें सत्य, शील और विनय का प्रादुर्भाव होगा। प्रस्तुत काव्य में जीवन के इन्हीं सारगत नियमों की व्याख्या की गयी है।

'पार्वती' काव्य का कालिदासकृत 'कुमारसम्भव' से अत्यधिक अनुप्राणित है। 'पार्वती' का उत्तरार्ध काव्य-सौष्ठव, मानवतावादी जीवन-मूल्यों और शिवसंस्कृति सहित की सुरम्य सरिता प्रवाहित करता है।[2]

'पार्वती' में 'कुमारसम्भव' के अनुकरण के साथ कुछ नवीनता भी है। पार्वती के पिता हिमवान देश के तेजस्वी अधिपति हैं। काव्य में रति-विलाप का वर्णन विशद न होकर कथा औचित्य की दृष्टि से अति संक्षिप्त है। कवि ने रतिक्रीड़ा का वर्णन न कर लोक-मर्यादा का अनुपालन किया है। यहाँ कुमार को पार्वती का औरस पुत्र ही माना गया है और उनकी शिक्षा-दीक्षा परशुराम-आश्रम में करायी गयी है। ये प्रसंग कुमार-सम्भव में अनुपलब्ध हैं।

---

1- पार्वती, पृ0 524

2- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, डॉ0 निजामुद्दीन, पृ0 129

कथा-विकास में जो सुचारुता और घटना-चक्र में जो नियोजितता और सहज संगति आरम्भ के 22 सर्गों में है, वह अंतिम तीन सर्गों में शिथिल हो गया है।[1] नीति-चिंतन और उपदेशात्मक रुख के कारण ऐसा अवरोध आ गया है। फिर भी कथानक में महाकाव्योचित सम्बन्ध-निर्वाह है, प्रबन्ध-वक्रता है, रसान्विति है। पार्वती-जन्म, देवताओं का आकुल क्रंदन, पार्वती की वर-कामना-गर्भित समाधि, शिव-पार्वती विवाह, कुमार-जन्म, देवताओं के उद्बोधन पर कुमार द्वारा तारक वध, नर्तकविनोद, शोणित-पुर का वर्णन, रजत-आयस-कंचन त्रिपुरों का आविर्भाव और तिरोभाव, शिवत्व-नीति एवं संस्कृति की जीवनोपयोगी व्याख्या आदि प्रसंग प्रस्तुत महाकाव्य में संयोजित हैं। काव्य में त्रिपुर का उपचार शक्ति से अन्वित शिव के शाश्वत बोध द्वारा ही सम्भव हो सकता है। त्रिपुर के रूपक से धर्म, शक्ति और माया का संघर्ष परिलक्षित होता है। ज्ञान-इच्छा-कर्म, इन तीनों लोकों की समरसता जिस प्रकार कामायनी में आनन्द की सृष्टि करती है, उसी प्रकार यहाँ इन तीनों पुरों के विनाश से मानवतावादी संस्कृति और शिवत्वबोध का निरूपण किया गया है। इस प्रकार कवि के शब्दों में पार्वती' महाकाव्य में सम्पूर्ण शिवकथा को एक सांस्कृतिक प्रतीक मानकर उसके प्रत्येक अंग की विस्तृत और सांग व्याख्या की गयी है, इस व्याख्या के सूत्र रूपक के प्रतीक-विधान में अनुस्यूत हैं।'[2]

'पार्वती' में यथावश्यक भावुक स्थलों की योजना भी की गयी है। 'पार्वती-परिणय' में औत्सुक्य वश शिव-दर्शन के अभिलाषी नर-नारी बेसुध हो गये हैं।[3] पार्वती का अंगी रस वीररस है। युद्ध वर्णन में वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है।[4] वात्सल्य, करुण और शृंगार के दृश्य भी सुन्दर हैं।

---

1- आधुनिक हिन्दी काव्य में रूपविधाएँ, डा० निर्मला जैन, पृ० 96
2- सत्यं शिवं सुन्दरम् – रामानंद तिवारी (भाग 1) पृ० 45।
3- पार्वती, पृ० 305
4- वही, पृ० 234

पार्वती में प्रकृति का विशद् चित्रण है, और हिमालय का वर्णन भव्य है।[1] प्रकृति के आलम्बन रूप, उद्दीपन रूप, मानवीकरण रूप आदि प्रस्तुत किये गये हैं।

पार्वती में विभिन्न घटनाओं और परिस्थितियों का चित्रण भी किया गया है। हिमालय के विस्तृत वर्णन के अतिरिक्त, आश्रम, नंदनवन, त्रिपुर आदि के वर्णन भी विस्तीर्ण हैं।

पार्वती का कलापक्ष भी सुन्दर है। भाषा सजीव और प्रवाहपूर्ण है। उसमें ओजगुण का प्राधान्य है। भाषा अलंकारों से अलंकृत है। उपमा,[2] रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप आदि की छटा आकर्षक है। सुन्दर सूक्तियाँ भाषा को प्रभावशाली बनाती हैं। शैली में हास्य-व्यंग्य का पुट है।
अपने समग्र रूप में यह भारतीय संस्कृति की ज्योति विकीर्ण करते हुए शिवकाव्य की महत्वपूर्ण कृति है।

## मीरा (सन् 1957)

'मीरा' महाकाव्य में तेरह सर्ग हैं। काव्य का नामकरण नायिका के आधार पर किया गया है। कथानक में मीरा के जीवन-तंतुओं का एकत्रीकरण है। यहाँ मीरा का भक्त-रूप ही नहीं, अपितु उसके बालिका, किशोरी, तरुणी-रूप पर भी प्रकाश डाला गया है। कवि ने उसके जीवन से संबद्ध तिथि-संवतों आदि के चौराहे पर खड़े होकर नहीं, वरन् उसके घर-आँगन में जाकर, करील-कुंजों में भटक कर मंदिरों, रंगमहलों में प्रवेश कर सन्निकटता से उसके जीवन-पहलुओं का अवलोकन किया है। उसकी बाल-क्रीड़ा, भाई-जयमल का साहचर्य, बाल्यकाल में कृष्णानुरक्ति, युवावस्था में सौन्दर्य-वर्णन, विवाह, वय-सुलभ मनोविनोद, दंपति-जीवन और मन-मुटाव, पतिदेव का परलोक प्रयाण, विरह-विधुरा-रूप, देवर-शूल, विषपान, आदि प्रसंगों, घटनाओं का अभिनिवेश मीराँ में हुआ है।

---

1- दे० पार्वती, पृ० 35-38

2- सकल इष्ट परम्पराओं की समष्टि समान,
पार्वती करती निरन्तर सुदृढ़ शिव का ध्यान।, 'पार्वती, पृ० 142

3- वही, पृ० 199, 416

राजस्थान की तत्कालीन समाज-व्यवस्था का चित्रण भी किया गया है। परन्तु इसके कथानक में महाकाव्योचित कल्पना और गहनता का सम्यक् समावेश नहीं हो सका। अनेक सर्ग नितान्त हल्के और कथा-प्रवाह की तीव्रता से शून्य हैं। चौथे सर्ग में सखियों का हास-परिहास हृदय-हारी नहीं है। पाँचवाँ सर्ग अनावश्यक रूप में विस्तृत है। छठें सर्ग में दार्शनिकता का गाम्भीर्य नहीं है। सातवें सर्ग में कथा-प्रवाह एकदम शिथिल पड़ गया है। कल्पनाएँ भी सजीव नहीं हैं। कपोत का प्रसंग साधारण बन कर रह गया है। अतः मीराँ का कथानक दुर्बल और अविकसित है।

मीराँ के शृंगार-प्रधान रचना होने पर भी उसमें शृंगार का पूर्ण परिपाक नहीं हो सका है। वियोग-वर्णन भी मर्मस्पर्शी नहीं है। शान्त, करुण और वात्सल्य का संस्पर्श भी किया गया है। जहाँ कहीं मनःस्तत्व को रूपायित करने का प्रयास है वहाँ कवि को सफलता अवश्य मिली है और चित्रण भी मार्मिक हो गया है।[1] गीत-योजना में अनुभूति की गहराई है।[2] प्रकृति के आलम्बनरूप[3], उद्दीपन रूप[4] और संवेदनशील रूप का चित्रण अवश्य है; परन्तु उसमें सूक्ष्मता और गहनता नहीं है। प्रकृति-सुषमा का सच्चा, जीवन्त बिम्ब प्रस्तुत करने में कवि का प्रयास सराहनीय नहीं है। इस प्रकार मीराँ का अंतरंग पक्ष अनुदात्त है।

भाषा सरल और सुबोध है। वह प्रवाहमान है, अलंकृत और मुहावरेदार है। लेकिन महाकाव्य के लिए जिस सशक्त, उदात्त, उत्कृष्ट और प्राणवान भाषा की अपेक्षा होती है, उसके दर्शन विवेच्य कृति में नहीं होते। काव्य की भाषा में किसी वस्तुस्थिति को बिम्बीकृत करने की विलक्षण क्षमता नहीं है। मुहावरों आदि के प्रयोग

---

1- मीरा, पृ० 153
2- वही, पृ० 180
3- वही, पृ० 82
4- वही, पृ० 180

में कवि कौशल अधिक है, गाम्भीर्य और वाग्वैदग्ध्य कम है। उसका संस्कृत-गर्भित और समास-बहुल रूप चमत्कृत है, पर हृदय में स्पंदन और स्फुरण उत्पन्न करने वाला नहीं है। वैविध्य विलास है, कल्प-वैभव नहीं। मीरा में प्रियप्रवास का भद्दा और नीरस अनुकरण किया गया है। कहीं-कहीं उपदेश-बाहुल्य ने भी जड़ता उत्पन्न कर दी है।

अपने समग्र रूप में मीराँ महाकाव्य एक सफल महाकाव्य नहीं है। महाकाव्य की श्रेणी में उसे स्थान देना न्यायोचित और युक्तियुक्त नहीं है।[1] 'मीराँ' का कथानक ही शिथिल और आबद्ध नहीं है, अपितु उसमें काव्य-सौष्ठव भी समुत्कृष्ट नहीं है। मीराँ के चरित्र-चित्रण में भी अभीष्ट विदग्धता एवं मार्मिकता नहीं है। तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन विशद् नहीं है। आधुनिक युगादर्शों व प्रश्नों की उद्भावना भी यहाँ नहीं है। 'मीरा' चरितकाव्य की भूमि से ऊर्ध्वगमन नहीं कर सका। मीरा के भक्त-हृदय, उसकी अविरल प्रेम तल्लीनता, नारी-जागरण आदि के सांस्कृतिक रूपों से मण्डित यह कृति अवश्य ही एक उल्लेखनीय रचना है।[2]

## एकलव्य (सन् 1958)

सन् 1958 ई० में प्रणीत चतुर्दश सर्गात्मक 'एकलव्य' डा०रामकुमार वर्मा का अन्यतम महाकाव्य है। इसकी कथा महाभारत से ग्रहण की गयी है। महाकाव्य का प्रारम्भ नाटकीय प्रणाली से हुआ है। प्रथम सर्ग में नागदत्त और एकलव्य के वार्तालाप द्वारा द्रोण से पाण्डव कुमारों की अप्रत्याशित भेंट, उनके चमत्कारपूर्ण कार्मुक-कौशल और उसके अमोघ प्रभाव का व्यापक वर्णन है। एकलव्य ने स्वयं इस घटना को देखा है।

---

1- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, डा०गोविन्दराम शर्मा, पृ० 428

2- आधुनिक हिन्दी काव्यों का शिल्प-विधान, डा०श्यामनंदन किशोर, पृ० 160

द्वितीय सर्ग में द्रोण अपना परिचय भीष्म और हस्तिनापुर के सभासदों के सामने देते हैं। तृतीय सर्ग की रचना का उद्देश्य महाभारत के उन दो प्रसंगों का वर्णन करना है, जिनमें अर्जुन की विशिष्टता परिलक्षित है।—(1) (पक्षी का) शिरच्छेदन (2) अंधकार में भोजन-ग्रहण।[1]

अर्जुन ने लक्ष्य के अतिरिक्त कुछ नहीं देखा, इसीलिए वह पक्षी का शिर बेध सका।[2] इसी तरह अर्जुन अंधकार में भी भोजन अपने मुख में पहुँचाता रहा।[3] चतुर्थ सर्ग में एकलव्य पर द्रोण के व्यक्तित्व के अमोघ प्रभाव का विस्तृत वर्णन है। माता, पिता और नागदत्त के वार्तालाप के द्वारा एकलव्य की दृढ़ गुरु-भक्ति का परिचय मिलता है। प्रेरणा का उत्स पाण्डव कुमार की वीटिका निकालने वाला प्रसंग है।[4] पंचम सर्ग (प्रदर्शन) में पाण्डव कुमारों की अस्त्र-शस्त्र शिक्षा के सामाजिक प्रदर्शन और प्रकारान्तर से उनकी दक्षता का वर्णन है। अन्त में आगामी कथा का संकेत है।[5]
षष्ठ सर्ग (आत्मनिवेदन) में महाभारत के एकलव्य की मूलकथा का प्रारम्भ है।[6] महाभारत के अत्यन्त संक्षिप्त प्रसंग में द्रोण से एकलव्य के निवेदन की विस्तृत चर्चा है। नैराश्य से नहीं, आशावाद से सर्ग समाप्त होता है।[7] सर्ग का अन्त कबीर के 'रामानन्द' चेताये' की भाँति धनुर्वेद के आत्मिक गुरु-मंत्र से किया गया है।[8] सप्तम सर्ग का प्रारम्भ गुरु द्वारा उपेक्षित और अस्वीकृत एकलव्य के प्रति मित्रों के किये गये व्यंग्य से होता है। इस सर्ग में

---

1- आधुनिक हिन्दी काव्यों का शिल्पविधान, डा० श्यामनंदन किशोर, पृ० 160
2- दृष्टि और लक्ष्य में न कोई व्यवधान हो, एकलव्य, पृ०58 अभ्यास सर्ग।
3- तब मैं तुम्हारा हाथ कैसे मुख में गया' वही, पृ० 63
4- वीटिका नहीं थी वह मेरा ही हृदय था' 'वही, पृ० 74
5- उन्हीं दिव्य चरणों में दृष्टि एकलव्य की।' वही, पृ०114, प्रेरणा।
6- जयगुरुदेव जय, एकलव्य, अध्याय 123, 10
7- चन्द्र की कलाएँ पूर्ण नभ के हृदय में। वही, पृ०127
8- नाम धनुर्वेद सुना श्रीगुरु से आपके, वही, पृ० 140

नागदत्त से अपनी माता को प्रबोधने की प्रार्थना कर एकलव्य घोर वन में धनुर्वेद की साधना के लिए जाता है।[1] अष्टम सर्ग दुःखों से पूर्ण है, जिसमें माता के वात्सल्य पूर्ण वियोग की अन्तर्वेदनाओं का वर्णन है।

नवम सर्ग है संकल्प, इसमें एकलव्य की साधना की भूमिका है। इसमें दलितों, उपेक्षितों की शक्ति की कल्पना है। द्रोण के चरित्र पर नहीं, सामाजिक व्यवस्था पर एकलव्य का आक्रोश है। इसमें गुरु के प्रति अटूट आस्था का वर्णन है। दशम सर्ग-साधना में एकान्तिक साधना का चित्रण है। इसमें अछूतोद्धार के सपने को साकार करने का प्रयत्न भी है। एकादश सर्ग में एकलव्य द्वारा स्वप्न की कल्पना की गई है। द्वादश सर्ग (लाघव) में श्वान के मुख में एकलव्य के द्वारा बाण-संधान की कथा का विस्तार है। पाण्डु-पुत्रों के लाघव के चमत्कार पूर्ण वर्णन के बाद एकलव्य के चमत्कार का वर्णन और पाण्डव-पुत्रों के आश्चर्य का चित्रण है। इसमें पार्थ-एकलव्य मिलन और ईर्ष्या से पूर्ण पार्थ का घर लौटना वर्णित है। त्रयोदश सर्ग में पार्थ की ईर्ष्याजनित चिन्ता के कारण है, द्रोण तथा पार्थ दोनों के मन में द्वन्द्व की सृष्टि है। द्रोण को उठाने का प्रयत्न किया गया है; क्योंकि अर्जुन को फटकारने में उनका आचार्य रूप प्रत्यक्ष उभरता है। अंतिम चतुर्दश सर्ग में एकलव्य के महादान की कथा वर्णित है।

---

1- मेरे गुरु है विप्र और शूद्र मैं निषाद हूँ।' एकलव्य, पृ० 140

2- गुरुदेव ने कहा था अहह, किस कष्ट से।' वही, पृ० 177

3- वाजिब तो यह था कि आततायियों को ही, वही, पृ० 198

4- गुरु अग्निवेश की तपस्या सब व्यर्थ की। वही, पृ० 233

5- प्रभु की जो बात कही वह बात मेरी है। वही, पृ० 271

एकलव्य महाभारत की अति संक्षिप्त प्रासंगिक कथा पर आधारित है, जो महाभारत में केवल 30 श्लोकों में वर्णित है। परन्तु यहाँ उस कथा को कुछ विशद् भूमि पर, नयी विचार-सरणियों द्वारा चित्रित किया गया है। यह लघु प्रसंग भी काल्पनिक मौलिक उद्भावनाओं द्वारा अधिक व्यापक प्रभावोत्पादक और सजीव बनाया गया है। कथानक में महाकाव्योचित जीवन-व्यापी घात-प्रतिघात, घटना वैविध्य का अभाव है, परन्तु कथा विस्तृत और रचना यथेष्ट है। आरम्भ में स्तवन महाकाव्योचित ही है।[2] उसमें किरातराज और अम्बिका की स्तुति कथानुकूल है। फिर द्रोणाचार्य का राजगुरु के रूप में प्रवेश, द्रुपदराज पंचाल के यहाँ द्रोण की अवमानना का प्रसंग, पाण्डवों की अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा, एकलव्य की द्रोण का शिष्य बनने की दृढ़ इच्छा, माता-पिता की व्याकुलता, द्रोण का उसे शिष्य रूप में अस्वीकार करना, साधनार्थ एकलव्य के वन-गमन पर माता का विलाप, वन में एकलव्य का शर-संधान, द्रोण का स्वप्न, एकलव्य का श्वान मुख को शर-संकुलित करना, ऐसे अप्रतिम धनुर्धर का परिचय देख पार्थ का चिन्तामग्न होना और अन्त में द्रोण का एकलव्य से भेंट करना, गुरुदक्षिणा में दायें हाथ का अँगूठा काटना — ये प्रसंग एकलव्य में नवीन रूप में व्यंजित हैं।

'एकलव्य' की संक्षिप्त आनुषंगिक कथा को कवि ने नयी उद्भावना, परिवर्तन और परिशोधन के द्वारा रोचक बना दिया है।

'एकलव्य' के अंगुष्ठ-दान को देखकर द्रोण और पार्थ दोनों हतप्रभ और लज्जित हो जाते हैं।[3] इस प्रकार एकलव्य में गुरु-भक्ति की ऊष्मा पायी जाती है। उसमें मातृभक्ति भी कम नहीं। वह भली-भाँति अभिज्ञ है कि उसकी अनुपस्थिति में माता कितनी व्याकुल और चिन्तित होगी, अतः वह नागदन्त द्वारा अपनी कुशल-क्षेम प्रेषित

---

1- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य — डा० निजामुद्दीन, पृ० 113

2- जागो हे नीलकण्ठ, हे किरात धार्मिक, गूँज उठे व्योम, वन, प्रान्त, गिरि गह्वर।
रुद्र-मेघ की अलभ्य मन्द्र ध्वनि में नृत्य करे ताण्डव।। 'एकलव्य, पृ० 6

3- वही, पृ० 298

कर माता को सान्त्वना और धैर्य प्रदान करना चाहता है। उसे माता का शनैः शनैः स्मरण हो आता है।[1] माता की उदारता, सहजता और पुत्र के लिए योगक्षेम भावना के समक्ष वह विनत है।

इसी प्रकार वह गुरु- निन्दा सुनने का तनिक भी अभ्यासी नहीं है। वह चाहे से गुरु की महत्ता और शिष्य की हीनता प्रकट करता है।[2]

प्रस्तुत प्रबन्ध में मार्मिक प्रसंगों की अवतारणा भी सराहनीय है। ममता, स्वप्न और दक्षिणा सर्ग इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ममता सर्ग में ममत्व की छाया पुलकित करने वाली है। एकलव्य की प्रस्थान माता को विह्वल बना देता है। अब तो उसका आँचल सूना हो गया। काश, वह भी उसके साथ चली जाती। भला उसका बेटा ग्रीष्म के ताप, शीत के प्रकोप किस प्रकार सहन कर सकेगा। अपने प्यारे सुत के लिए वह मंगलकामना करती है —

"हे तीव्र रश्मियों, वहाँ न जाना,
जहाँ कि मेरा गया लाल।
वह चन्द्र किरण-सा हँसमुख,
छोटे वय वाला एक बाल। (पृ0 156)
'मेघ भिगोना मत अपनी,
बूँदों से सुत का गात।' (पृ0 157)

कवि ने माँ के हृदय को सहजता से समझा-परखा है। उसने वात्सल्य के अन्तर्गत वियोग-दशाओं का वर्णन गीतों (22 से 27 ) के अन्तर्गत किया है। प्रकृति-चित्रण स्वाभाविक है। प्रकृति का मानवीकरण और आलंकृत रूप द्रष्टव्य है।[3]

---

1- एकलव्य, पृ0 183
2- सावधान आर्य, गुरु-निन्दा एक अक्षर भी। सुन न सकूँगा आपके वाचाल मुख से।
गुरु सम्मान निष्पक्ष करते हैं सदा, शिष्य है जो प्राप्त करने में असफल है। पृ0255
3- कोकिल की तान जैसी चाप धनु तान के, एकलव्य उर सदृश करता प्रहार है। पृ020।

एकलव्य का वाक्य-सौष्ठव भी सुन्दर है। भाषा में प्रवाह और मार्दव है। वह सुघड़ और सुबोध है। कहीं-कहीं पारिभाषिक शब्दावली से दुरूहता आ गई है। 'एकलव्य' की अलंकृत शैली भावों का अनुसरण करने वाली है। उपमा, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण आदि अलंकारों की छटा दर्शनीय है।

यहाँ कथा के साथ नाट्य संवादों का समन्वय सुष्ठु है। ऐसे संवादों में सजीव अभिनय का गुण भी आ गया है। इससे काव्य की भाषा और शैली का हेतु आकर्षण भी उत्पन्न हो गया है।

इतना होने पर भी एकलव्य में महाकाव्य का पूर्ण औदात्य नहीं। जीवन की परिव्यापकता, समुचित कथ्य-शैली- नानाविध घटना - संकुलता के अभाव में इसे उत्तम महाकाव्य नहीं कहा जा सकता है।

## तारकवध(सन् 1958)

'तारकवध' पौराणिक आख्यान पर आधृत श्रेष्ठ शिवकाव्य है। यहाँ देव-दनुज-मानव से सम्बद्ध शाश्वत प्रश्नों को मुखरित किया गया है। कविवर श्री गिरिजा दत्त शुक्ल गिरीश ने इस महाकाव्य को एक प्रयोग माना है।[1] यह एक प्रतीकात्मक रचना मानी गयी है।[2] तारकवध और पार्वती का आख्यान समान है। फिर भी दोनों में कुछ अन्तर है। 'पार्वती' में कार्तिकेय द्वारा विकराल युद्धोपरान्त तारक का संहार किया जाता है, परन्तु प्रस्तुत कृति में न युद्ध होता है और न तारक वध। यहाँ तारकासुर की आसुरी वृत्तियों — पाशविक मनोवृत्तियों — का विवेचन हुआ है, प्रकारान्तर से मानवत्व ने दानवत्व पर विजय प्राप्त की है। यही इसका नवीन एवं मौलिक रूप है।

---

1- तारकवध, लेखक के दो शब्द(प्रथम संस्करण) पृ0 2।

2- वही, प्राक्कथन, पृ0 4, 2

"कवि ने मानव जीवन की मौलिक चिरन्तन समस्याओं को अपने कथापट के ताने-बाने में नवीन रूप में उपस्थित कर देव-दानव और मनुष्य को एक ही धरातल के त्रिगुणात्मक रूपों में अंकित कर उनके समन्वय द्वारा मानव जीवन की पूर्णता का लक्ष्य सिद्ध किया है।"[1] कवि की इस नवीन आदर्शवादी-मानवतावादी भावना पर गांधीदर्शन की प्रेम और अहिंसा समन्वित विचारधारा का विशेष प्रभाव है। यहाँ भृंगी नाम और शान्ता जैसे उपेक्षित पात्रों का भी नवोद्भावन किया गया है। इन पात्रों को न तो किसी पौराणिक काव्य में और न किसी राम-काव्य में प्रोद्भासित किया गया है।

'तारकवध' महाकाव्य के प्रवेश में शिव-शक्ति-निरूपण, वसन्तोत्सव का निर्णय, भृंगी-शान्ता का जन्म, शान्ता का भृंगी को वर रूप में प्राप्त करना, शोणित द्वीप का वर्णन, तारक के अत्याचार, शान्ता का अपहरण, भृंगी-वियोग-वर्णन, शान्ता का अन्वेषण, नारद आदि की व्याकुलता, शिव-पार्वती विवाह, कार्तिकेय का अवतरण, रणनीति, तारक की व्याकुलता-ग्लानि और व्याख्यान, तारकवध का अभिषेक, शान्ता-भृंगी का पुनर्मिलन, प्रस्थान और राजधर्मोपदेश का वर्णन किया गया है। इसमें राम-जन्म आदि का भी उल्लेख हुआ है। कथानक सर्वथा मौलिक रूप में अभिव्यंजित है। कथानक की घटनाओं में कार्य-कारण सम्बन्ध का निर्वाह समीचीनता से हुआ है। राम-रावण आदि के अनपेक्षित प्रसंगों का उल्लेख मात्र है। कथानक में युगदर्शी एवं युगभावनाओं — साम्यवाद, पूँजीवाद, गांधीवाद, समन्वयवाद — का प्रसंगानुसार वर्णन है। 'तारकवध' की कथा में एक वैज्ञानिक संगति है। उसका प्रारम्भ रुद्र के विस्फोट से होता है। कथानक को जीवन-दर्शन का ठोस आधार मिला है, जिसमें तार्किकता के स्थान पर हार्दिकता की प्रधानता है। भौतिक आध्यात्मिक द्वैत-अद्वैत के बीच कथा के माध्यम से सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया

---

1- तारक वध, प्राक्कथन, पृ० 2

गया है।[1] कवि ने दानव को सर्वथा त्याज्य, पोषित नहीं किया, वरन् मानव जीवन के उत्कर्ष एवं उन्नता के निमित्त दानव की स्थिति भी स्वीकार की है। आगे दानव तत्वों की ग्राह्यता का और अन्य अनुभूतिक प्रश्नों, समस्याओं का नवीन उत्तर और समाधान खोजकर 'तारकवध' की स्वतंत्र सत्ता मानी है।[2]

विरह विदग्धावस्था में श्रृंगी का शान्ता के प्रति उच्च, अटल और अरूप प्रेम प्रकट हुआ है। उनकी विकलता की अनुभूत्यात्मक व्यंजना की गयी है। 'शान्ता-शान्ता' की रट लगाते उनका तालु सूख जाता है, मुंह में लाटी लग जाती है, स्वर भी धीमा पड़ जाता है, वे चिल्लाते हुए मूर्छित हो, बेदम हो गिर पड़ते हैं। निम्नांकित पंक्तियों में उनकी विकलता व्यक्त होती है —

रहे भुजाएँ फैलाये वे किन्तु प्रिया न आयी।
ज्यों ज्यों वे धाये आगे को वह पीछे को धायी।
प्रति पुकार में अधिकाधिक थी आती प्यास औ तड़पन।
प्रतिध्वनि में होता था उत्तर शान्ता। शान्ता।। क्षण क्षण।[3]

इसी प्रकार शान्ता के प्रसंग में कुछ प्रसंग अत्यन्त मार्मिक हैं। श्रृंगी शाप के अवसर की ओर तपोन्मुखी गमनशीला शान्ता की अनुपस्थिति से सूने भवन-दीपक का स्मरण कर दशरथ की दशा करुणाप्लावित हो जाती है, प्रभावपूर्ण प्रसंग है —

किस दिया पर सोती थी वह सूनी पड़ी रहेगी।
अब फूलों की ओर अंगारों से ही पड़ी रहेगी।
एक बार आ घर फिर अपनी देहलता लहरा ले।
जाने के पहले उसको फिर अपने गले लगा ले।'[4]

---

1- आधुनिक हिन्दी काव्यों का शिल्पविधान, डा० श्यामनंदन किशोर, पृ० 188
2- तारकवध, कवि के दो शब्द, पृ० 23
3- तारकवध, पृ० 319
4- वही, पृ० 133

कैकेयी का ममतामय विलाप भी प्रभावपूर्ण है। इस समय तो वातावरण भी शोकसिक्त हो जाता है। मुनाल आदि भी शोकाकुल हैं। शान्ता और शृंगी की विरह-दशा भी नगण्य नहीं है। प्रकृति चित्रण अधिक मनोयोग द्वारा नहीं किया गया, उसमें पिष्टपेषण अधिक है। महाकाव्य के लक्षण तथा प्राचीन तत्वों का निर्वाह करने की दृष्टि से प्रकृति का षट्ऋतु वर्णन भी किया गया है। परिगणनात्मक शैली ने रसात्मकता पर भारी कुठाराघात किया है। बसन्तश्री का वर्णन प्रशंसनीय है।[1] 'तारकवध' में शृंगार, वीर और शान्त रस का चित्रण तो अवश्य है पर वह उत्कृष्ट नहीं। शृंगार में अनुभाव तथा भाव और संचारी विवेचन में उन्माद, मूर्छा आदि का चित्रण रीतिबद्धता मात्र प्रकट करता है।[2] कवि को अभिलषित साफल्य तारकवध द्वारा प्राप्त न हो सका। इस प्रकार 'तारकवध' का अन्तरंग पक्ष अनुदात्त है, उसमें महाकाव्योचित पूर्ण औदात्य नहीं, गरिमा नहीं, मार्मिकता और प्रभविष्णुता नहीं।

'तारकवध' का काव्य-शिल्प भी दुर्बल है। कवि का उद्देश्य उसे लोकप्रिय महाकाव्य बनाना था; परन्तु भाषा में अपेक्षित सुकुमारता, स्वाभाविक अलंकृत शैली, कोमलता, मृदुता, सौन्दर्य और प्रभावता के अभाव में वह एक अनुत्कृष्ट और आहत रचना है। वह पाठक प्रतीकों की दुरूहता और जटिलता से भी आक्रान्त है। नये प्रयोग और रहस्य गर्भित जटिलता के लोभ ने इसमें कृत्रिमता और जड़ता भर दी है। नवोन्मेष-शाली कल्पना द्वारा जैसे आकर्षक बिम्ब-बिम्ब वस्तुओं के समक्ष उतारे जा सकते हैं, वे यहाँ दुर्लभ हैं। कहीं-कहीं नवीनता का दुराग्रह है,[3] लेकिन उसमें प्रभावता और सजीवता नहीं। मुहावरों का प्रयोग भी है। संस्कृत शब्दों को भी पद तथा ग्रहण किया गया है।

---

1- तारकवध, पृ0 520

2- वही, पृ0 215

3- वही, पृ0 170—, 283

पगली के स्थान पर पागलिनी, चातकी के स्थान पर 'चातकिनी' जैसे अस्वाभाविक प्रयोग भी किये गये हैं।

अपने समग्ररूप में 'तारकवध' एक बृहदाकार कृति है। शिवकाव्य-परम्परा में वह एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। लेकिन महाकाव्य की दृष्टि से वह पूर्ण सफल नहीं है। इसमें रीतिबद्ध महाकाव्य का रूप अधिक स्पष्ट है, इसके कारण उसमें अभीष्ट उत्कर्ष नहीं है। देवोपम नायक, सन्ध्या-पावस आदि के वर्णन और नगर वर्णन के प्रसंग में महाकाव्य के प्राचीन लक्षणों के पालन की प्रवृत्ति दिखलायी पड़ती है।[1] 'तारकवध' का महत्त्व उसके उदात्त कथानक में समाविष्ट है, जिसमें मौलिकता भी है और उत्कृष्टता भी। बीच-बीच में गीतों की मुक्त छन्द की योजना भी है। परन्तु काव्य पक्ष उदात्त नहीं है। उसमें मार्मिकता और प्रभावयुक्त नहीं है।

'तारक वध' का कथानक केवल नाम मात्र को प्राचीन परिचित पौराणिक कथानक है। कवि ने उसे अपनी कल्पना की संजीवनी पिलाकर उसे वर्तमान युग की जीवन समस्याओं का व्यापक रंगमंच बनाने के अभिप्राय से उसका आमूल कायाकल्प कर दिया है। कथा का जीर्ण शीर्ण पंजर नवीन प्राणों का शक्तिशाली स्पर्श पाकर मूर्तिमान होकर जाग उठा है। 'तारक वध' जैसा कि लेखक ने स्वयं कहा है, मुख्यतः समस्यावादी महाकाव्य है। कवि के शब्दों में "प्रियप्रवास, कामायनी, साकेत आदि महाकाव्य भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से प्रेरित रचनाएँ हैं, किन्तु दानवत्व का नाश होना चाहिए इस बात से सभी सहमत हैं। वह दानवत्व सर्वथा तिरस्करणीय है, अथवा जीवन के विधान में कहीं उसकी उपयोगिता भी है? इसी प्रकार के अनेक आनुषंगिक प्रश्नों का उत्तर खोजने

---

1- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, डा0 निजाम उद्दीन, पृ0 135,36,39

की दिशा में 'तारकवध' एक प्रयोग है। इस दृष्टि से 'तारक वध' पिछले आधुनिक महाकाव्यों से एक पृथक् सत्ता रखता है।"

कवित्व तथा शिल्प-सौन्दर्य की दृष्टि से 'तारकवध' एक महत् दर्शनीय पर्वत फलक के समान है, जिसमें कवि ने अपनी प्रखर कल्पना की छैनी से मानव-मानस की अनुभूतियों का सूक्ष्मतम सौन्दर्य अंकित कर काल के गर्भ में प्रविष्ट विलीन निष्क्रिय पौराणिक आख्यान को नवीन मानव जीवन का स्पन्दन-कंपन प्रदान कर उसे कला, पारखियों के मनश्चक्षुओं के सम्मुख साकार एवं मूर्तिमान कर दिया है। 'तारक वध' में 'छायावाद', प्रगतिवाद' तथा 'प्रयोगवाद' के सभी आकर्षक कलातत्व महाकाव्य के व्यापक पट में अवतरित होकर अधिक पुष्ट-पुष्ट, अर्थावयुक्त, मूर्त [हो गये हैं।] काव्य में माधुर्य, पद-लालित्य, भाव व्यंजना, अलंकरण तथा ध्वन्यात्मकता के साथ सारल्य तथा प्रसादगुण को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। तारक वध की शैली सहज, सरल तथा स्वाभाविक है। वस्तु वर्णन को कवि ने विशेष रूप से संवारा है। अष्टम सर्ग में पावस-वर्णन अनेक मौलिक उपमा, रूपकों में उपमा प्रधान भारत के प्रावृट् के वैभव को उद्घाटित करता है। यत्र तत्र विशेष स्थलों पर मधुर गीतों के पद छंदों के अंचल पट में गुम्फित कल-कल बहते हुए झरनों की तरह हृदय में माधुर्य की वर्षा करते रहते हैं। शंकर आदि के स्तवन अत्यन्त तन्मयता के साथ लिखे गये हैं।

इस महाकाव्य में अनेक ऐसे मधुर, मनोरम मर्मस्पर्शी स्थल मिलते हैं, जो अपने कवित्व, भाव-गाम्भीर्य, विचार-उत्कर्ष, नैसर्गिक सौन्दर्य तथा कला-शिल्प की अभिव्यंजना की दृष्टि से अद्वितीय बन पड़े हैं।

---

## बाणाम्बरी (1961)

बाणाम्बरी का कथानक महाकवि बाणभट्ट के उदात्त एवं गौरवान्वित जीवन पर आधारित है, अतः उसमें सहज ही महाकाव्योचित गरिमा अभिव्यक्त है। "बाण का जीवन भी एक महाकाव्य था। उनके सर्वांगपूर्ण अभियान में चपलता और गम्भीरता के वरदान छिपे हुए थे। उनकी आँखों में मधुरता, उत्सुकता, नैसर्गिकता और वाक्प्रखरता के साथ-साथ मनीषत्व की दिव्यता भी दृष्टिगोचर होती थी।"[1] ऐसे प्रतिभा-सम्पन्न सरस्वती के वरद पुत्र बाण को नायकत्व प्रदान कर श्री रामावतार पोद्दार अरुण ने बाणाम्बरी' की रचना की है।

'बाणाम्बरी' का 400 पृष्ठों में अनुस्यूत कथानक बाण के जीवन का ही उद्घाटन करता है। सर्गों में आबद्ध इस महाकाव्य की कथावस्तु संक्षिप्ततः, इस प्रकार है —— शोण तट पर प्रीतिकूट ग्राम में चित्रभानु-राजदेवी के दम्पत्ति के यहाँ बाण का जन्म हुआ। पिता वैदिक धर्म के पालक और कर्मकाण्ड में निष्ठावान् थे। बाण को अपने [illegible] वात्स्यायन वंश पर गर्व था। विद्या के साथ विलासिता ने भी अपना आसन जमाना आरम्भ कर दिया। पुत्र के चापल्य को निरख कर पिता ने उसका विवाह वेणी से कर दिया। [illegible] वेणी को देख चित्रभानु शोकार्णव में डूब गये — स्वर्गवासी हो गये। तत्पश्चात् बाण का नालंदा में ज्ञानार्जन करना, मेघुरेखा का स्नेहिल सम्पर्क, बाण का नाट्य-विनय के लिए दल-बल भ्रमण कर यश-आदर प्राप्त करना, वेणी की मृत्यु, बाण द्वारा काशी में कथावाचन, मल्लिका नामक युवती की रक्षा, मल्लिका के साथ कवि का विवाह, आभूषण नामक पुत्र की उत्पत्ति, हर्षवर्धन के यहाँ बाण का सम्मान, दरबारी कवि के

---

1- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, डा० निजामउद्दीन, पृ० 196

रूप में नियुक्ति, 'हर्षचरित' व 'कादम्बरी' की रचना, और परलोक - गमन आदि घटनाओं और प्रसंगों का कथानक में समावेश हुआ है। इनके साथ हर्षकालीन ऐतिहासिक विवरण भी प्रस्तुत हुआ है। द्वादश सर्ग में हूणों के आक्रमण का उल्लेख हुआ है तथा हर्ष के पिता की मृत्यु, राज्यश्री के पति ग्रहवर्मन की हत्या, राज्यश्री की अनाथ दशा का चित्रण है। मरणासन्न राज्यश्री का अन्वेषण किया जाता है। पंचदश सर्ग में ह्वेनसांग द्वारा बौद्ध भिक्षु सुबन्धु के पत्र द्वारा हर्षकालीन प्रचलित शिक्षा-पद्धति का विस्तृत वृत्तान्त प्रेषित किया जाता है। अनागत नालंदा में सहस्रों छात्र शिक्षा ग्रहण करते हैं। यहाँ निःशुल्क और सुनियोजित शिक्षा दी जाती है। यहाँ इतिहास का शुष्क मरुस्थल नहीं है, वरन् कल्पना कल्लोलिनी ने उसे कलित ललित हरित भूखण्ड में परिवर्तित कर दिया है। "कल्पना इतिहास की गरुड़ शालिका पर चढ़ी होकर अपने अतृप्त युग में चन्द्र प्रवेश का स्वर्गीय स्वप्न देखती है।" इसमें कवि की सांस्कृतिक आस्था सोमकला लेकर अवतरित हुई है। बाणकालीन भारत की कला-संस्कृति और प्रगतिशीलता का आभास प्रस्तुत करने का सफल प्रयास है। बाण शंकाकुल सम्राट की शंका का विमोचन करने के लिए प्रस्थान करने से पूर्व नैचिकी धेनु की प्रदक्षिणा कर उडुम्बर-रज का स्पर्श करते हैं। वे गुरु जन-परिजन का शुभाशीष लेकर नक्षत्र एवं देवताओं का स्मरण करते हैं। गोबर से अंकित आंगन में मंगलकलश रखे हैं, विजय शंख से अंगन निनादित हो रहा है।[2] बाण मार्ग में देवी-मंदिर के दर्शन कर वंदन करते हैं।[3] शस्त्र-पूजन और नाट्य अभिनय का पुनीत अनुष्ठान सांस्कृतिक अभ्युत्थान का द्योतक है। कृषक जीवन का भारत की ग्रामीण दशा का चित्रण संस्कृति का नवीन पृष्ठ है।[4] भारत की

---

1- कादम्बरी, पृ0 310

2- वही, पृ0 201

3- वही, पृ0 202

4- वही, पृ0 262

की महिमा का चित्रण राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक भावना उद्वेलित करने वाला है। कथानक को रोचक बनाने के लिए, औत्सुक्य की रक्षा के लिए रेवा, मल्लिका आदि के प्रसंग सुन्दर हैं। दूर्वेन्द्रमणि का प्रसंग एक पृथक् रुचिकर महत्त्व रखता है। राज्यश्री की दीनता और हर्ष का स्वप्न तथा ऐसे ही सुन्दर अवान्तर प्रसंग कथानक को सघनता एवं व्यापकता प्रदान करते हैं। कथानक सुविन्यस्त है। कथाओं, घटनाओं में एकान्विति है। सम्बन्ध-निर्वाह महाकाव्योचित है। उत्तर सर्गों में अल्प समय के लिए कथा में गत्यवरोध आ जाता है। 18 वें सर्ग में काव्य-मीमांसा, 20 वें सर्ग में शास्त्रार्थ के प्रसंग कथानक में थोड़ा अव-रोध उत्पन्न करते हैं। परन्तु अपने समग्र रूप में कथानक औचित्यावलम्बित है। लगभग सभी कथाएँ परोक्ष-अपरोक्ष रूप में बाण से संपृक्त है।

प्रस्तुत महाकाव्य में काव्य के आंतरिक और बाह्य दोनों ही पक्षों की उत्कृष्टता है। भावुक स्थलों की अवतारणा महाकाव्योचित है। द्वितीय सर्ग अत्यन्त प्रभ-विष्णु है। यहाँ नयन-ज्योति विहीन वेणी के उत्स्पंदन में मार्मिकता है —

'मैं द्वन्द्वमयी दो सरितों की सिहरन हूँ,
मैं प्राण-पद्म में बंद करुण क्रंदन हूँ,
मैं अश्रु-वधू चन्द्रिका दीन सुकुमारी,
यौवन मधुवन की मुरझायी मैं नारी।" (कादम्बरी, पृ० 35)

'भगवान, नेत्रहीना न करो नारी को,
ऐसा न दण्ड दो दृष्टि की फुलवारी को। (वही, पृ० 36)

'कादम्बरी में प्रकृति का ऐसा रमणीय वर्णन नहीं मिलता; जिसे भावुकता में प्रवीण हुआ हो। वैसे एक - दो चित्र अच्छे उभरे हैं। रात्रि की भयानकता, का वर्णन पृष्ठ-भूमि के रूप में सजीव है।[1] 'कादम्बरी' शृंगार प्रधान-रचना है। प्रेम का एक निगूढ़

---

1- कादम्बरी, पृ० 163

(काम, वेणी और रेखा) पैदा हो गया है, जो स्वभावतः कलान्वरेण्य होता है। यह साधारण सत्य है कि 'त्रिभुज प्रेम' आन्दोलनकारी नहीं हुआ करता, क्योंकि वह बेकार होता है। किन्तु त्रिभुज प्रेम में ऐन्द्रिय दृष्टि से परकीया रति की रवानी रहती है और इन्द्रियातीत दृष्टि से प्रेम की तड़पन भरी अडिग अनावृत्त निष्ठा भी रहती है। इस तरह रेखा की दृष्टि से इस काव्य पर प्रेम के मकड़जाल का वितान छा गया है।[1] प्रेम का लौकिक और अलौकिक निरूपण 'कादम्बरी' की सफलता का परिचायक है। संयोग में संयम और श्लीलता है।[3] वियोग में स्वाभाविकता है। काम की रूपान्तरता में निर्वेद का भाव दर्शाया गया है।

'कादम्बरी' में भावना का तारल्य और कला का विलास भी मिलता है। संभवतया इसकी मणिकुट्टिम कला पर मुग्ध हो डा० माधव ने अपना अभिमत देते हुए कहा है कि आज तक के लिखे गये समस्त खड़ी बोली के काव्यों में कादम्बरी का स्थान श्रेष्ठ है।' वस्तुतः यह धारणा सत्य पर अवलम्बित है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। भावों की उदात्तता के साथ रचना शैली की उत्कृष्टता अनुपम है। कवि के ध्वनि-बिंब, श्रावण-बिम्ब आपात रमणीयता से आपूर्ण है।[4] दृश्य-बिम्ब भी सुंदर है।[5] यह महाकाव्य वस्तुतः अपूर्व और शब्द-शिल्प का निर्मल दर्पण है। 'कादम्बरी' में अलंकारों

---

1- आधुनिक हिन्दी काव्य, प्रो० विमलकुमार, पृ० 122

2- उर न अभी डोल चाँदनी चमक रही है।
हे स्नेह की सुरा अभी तक छलक रही है।
मधु वसंत शय्या पर जीवित स्वप्न स्वर्ग है
प्रात अभी यह महाकाव्य का प्रथम-पर्व है। (कादम्बरी, पृ० 190)

3- रुनझुन-रुनझुन रुनझुन नूपुर।
डोलित डोलित-डोलित नव उर। (वही, पृ० 238)

4- मरकतमणियों पर बैठ छैल छेड़ते तान।
अन्तीनिका पर किसके बालम्बन बैन-बाण    पृ०262
पंचम-स्वर से राग छोड़ते डालों पर। उड़ जाती वह पूर्ण चिड़िया शिशु नट से डर।

की छटा ऐसी आकर्षक है, जैसे निर्झर के पीछे दीपकों की आभा झिलमिलाती हुई आकर्षक लगती है।

गीत-योजना में भी आकर्षण और सजीवता है। यहाँ मुक्त छन्द का प्रयोग अत्यधिक है। इस महाकाव्य में प्रथम बार पत्रात्मक शैली का नया प्रयोग भी अभिनन्दनीय है।

'बाणाम्बरी' का उद्देश्य महत् और उन्नत है। यहाँ भारतवर्ष का राष्ट्रीय और सांस्कृतिक अतीत कालीन चित्र प्रस्तुत किया गया है।[1] अपने भव्य रूप में 'बाणाम्बरी' कतिपय त्रुटियों के होने पर भी सुष्ठु महाकाव्य है। महाकाव्योचित रजताभ स्वर्णाभ मणिसोपानों की रचना करने में कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

## लोकायतन (सन् 1964)

श्री सुमित्रानन्दन पंत द्वारा सन् 1964 ई0 में प्रणीत महाकाव्य 'लोकायतन' महात्मा गांधी के जीवनदर्शन से प्रभावित लोकजीवन का महाकाव्य है। यह काव्य भारतीय जनजीवन का सुन्दर चित्र उपस्थित करता है।

कथानक कल्पना प्रसूत है। काव्य का नायक गांधी है। कवि ने काव्य को दो खण्डों तथा 15 उपशीर्षकों में विभक्त किया है। मुख्य लौकिक कथा आरम्भ करने के पूर्व कवि ने पृष्ठ भूमि के रूप में 'पूर्वस्मृति' का शीर्षक के अन्तर्गत भगवती सीता और राम की कथा का स्मरण किया है। कवि अपने अन्तर्मन के ध्यान-लोक में सीता को अब भी जनमानस के बीच उसी रूप में देखता है।

कवि पन्त सम्पूर्ण रामायणी कथा का आध्यात्मिक रूपक उपस्थित करते हैं। हनुमान अमेय पौरुष, दशरथ सत्यनिष्ठा, जनक मानसिक स्थिति और निशिचर युगीन क्रूरता के प्रतीक हैं। भरत कृषिप्रधान युग के आदर्श और कैकेयी पत्नीजनित ईर्ष्या का

---

1-वैदिक ब्राह्मण बौद्ध जैन [illegible] संस्कृति रस प्लावित धरणी।
1-किरण काव्यमय कमल पत्र सम्मित सुनील पुष्करिणी।
व्याप्त विविधता किन्तु एकता की केन्द्रित अभिलाषा।
[illegible] —(बाणाम्बरी पृ0 308)

प्रतिनिधित्व करती है। रावण अहंवृत्ति, लंका दुर्बुद्धि, सीता चेतना और अकिंचन इन्द्रियासक्ति है। जन-पौरुष हनुमान ने अहंवृत्ति रावण की कारा से इन्द्रियासक्त मानवीय चेतना को मुक्त कराया। हेममृग के प्रति सीता की आसक्ति नारी के हृदय में शारीरिक आकर्षण की भावना को व्यक्त करती है तथा लक्ष्मण-रेखा घर और समाज की वह मर्यादा है, जिसका उल्लंघन करने पर नारी कलंकित हो जाती है। धनुष-भंग उत्तर और दक्षिण, शिव और विष्णु के मिलन की कथा है। अहिल्या-शिलाओं से युक्त कृषि-कार्य के अयोग्य भूमि की और राम जनबल के प्रतीक हैं। लक्ष्मण प्रीतियुक्त पौरुष और ऊर्मिला शीलमूर्ति हैं।[1]

काव्य के मूल कथानक का प्रारम्भ करते हुए कवि ने लिखा है कि सुन्दर ग्राम में वंशी नामक एक युवा कवि रहता था, जो समय के विरोध को सहकर भी जनमन को परिष्कृत बनाने में प्रयत्नशील था। वह भारत की प्राचीन संस्कृति का स्मरण करता हुआ सोच रहा था कि मानवीय सभ्यता का विकास सर्वप्रथम भारत में ही हुआ। श्री राम और कृष्ण भारतीय संस्कृति के मूर्तिमान नव रूप थे। उन्होंने अपनी दिव्य लीलाओं द्वारा भारतीय जनमानस को अनुप्राणित किया।[2] भारतीय संस्कृति के आरम्भिक युग में बल तथा पुरुषार्थ का बोलबाला था, किन्तु मध्यकाल में संन्यासवाद का प्रचलन हुआ तथा लौकिकता की उपेक्षा की गयी।[3] अत्यधिक पाप-पुण्य, स्वर्ग-नर्क की भावना ने मनुष्य को रूग्ण कर [illegible] दिया।[4] आधुनिक भारत अनेक महापुरुषों के सत्प्रयत्नों से रूढ़ियों से मुक्त होकर मानवतावाद के युग में प्रविष्ट हुआ है।[5] हरि

---

1- छायावादोत्तर हिन्दी प्रबन्धकाव्यों का सांस्कृतिक अनुशीलन डा० विश्वम्भर दयाल अवस्थी, पृ० 78-81

2- लोकायतन, पृ० 148

3 से 5 तक लोकायतन, क्रमशः-पृष्ठ० 151, 152, 154

से अपने विचार व्यक्त करते हुए कोठी कहता है कि जब हम अतिभौतिकता का परित्याग कर आत्मोन्नति की ओर ध्यान देंगे, तभी मनुष्यता का सर्वांगीण विकास होगा।[1] शून्य गगन में कल्पना की उड़ान भरना जीवन का ध्येय नहीं है।[2] अपितु नर-नारी मिलकर प्रकृति का मुक्त उपभोग करें, यही जीवन का लक्ष्य है। जीवन में सत्य, शिव, सुन्दर का सुन्दर समन्वय हो, तभी हमारा जीवन आनन्दमय होगा।[3] अन्य कोई दूसरा लोक नहीं है, यहाँ के सुखपूर्ण जीवन का नाम ही स्वर्ग है।[4] ईश्वर सबका विधाता है। अतः सुख-दुःख ईश्वर की इच्छा पर निर्भर हैं/ इसलिए हमें जीवन का सर्वोत्तम रूप प्रस्तुत कर ईश्वर की लीला में सहायक बनना चाहिए तथा इसी पृथ्वी में ईश्वर के दर्शन करना चाहिए।[5] यम-नियम आदि विधियों का लक्ष्य केवल शारीरिक शुद्धि ही नहीं, अपितु मानसिक और बौद्धिक क्षेत्र की भी शुद्धि होनी चाहिए।[6]

हरि ने कोठी के विचारों से प्रेरित होकर गंगा के किनारे एकान्त स्थान में संस्कृति कलाकेन्द्र की स्थापना की। इस केन्द्र में "छात्र-छात्राएँ लौकिक एवं पारलौकिक समस्याओं पर विचार किया करते थे। गुरु जी उन्हें समझाया करते कि भौतिकता तथा आध्यात्मिकता दोनों के समन्वय से ही हमारा जीवन मंगलमय हो सकता है। आत्मा के सहयोग से ही प्रकृति सृष्टि का विकास करने में सक्षम है। जड़ और चेतन, आत्म और अनात्म के संयोग से ही समरसता जन्य आनन्द प्राप्त हो सकेगा।[7]

हरि द्वारा स्थापित संस्कृति संस्थान में कलाओं की शिक्षा के साथ ही व्याकरण और षड्दर्शनों का भी अध्यापन होता था।[8]

विद्वान् गुरु छात्रों को बताते थे कि महर्षि कणाद प्रतिपादित वैशेषिक दर्शन में परमाणुवाद का प्रतिपादन किया गया है। तत्त्वों का ज्ञान सांख्य कहलाता है।

---

1 से 8 तक — लोकायतन, पृष्ठक्रमशः — 179, 208, 280, 226, 31, 230, 274, तथा 323

सांख्य दर्शन द्वैतमूलक है। इसमें 25 तत्व माने गये हैं, जिनमें प्रकृति और पुरुष मुख्य हैं। अन्धपंगु न्याय से जड़ (प्रकृति) और चेतन पुरुष के संयोग से सृष्टि होती है।[1]

पतंजलि मुनि ने योगसूत्रों की रचना की है जिसमें आत्मा के परमात्मा से (योग) युक्त होने के हेतुओं पर विचार किया गया है। साधक अपनी चित्तवृत्तियों का निरोध कर पंच क्लेशों से मुक्त होकर समाधि की अवस्था में परमात्मा से एकीभूतता का अनुभव करते हैं।[2]

उत्तर मीमांसा या वेदान्त के रूप में ब्रह्मर्षि व्यास ने जीव, जगत् और परमात्मा के सम्बन्ध में अपने महनीय विचार प्रस्तुत किये हैं।[3] उनके द्वारा रचित ब्रह्मसूत्रों के भाष्य रूप में शंकराचार्य और रामानुजाचार्य आदि विद्वानों ने अद्वैत और विशिष्टाद्वैत आदि सिद्धान्तों का निर्वचन किया है। इन आचार्यों ने कहीं कहीं ब्रह्मसूत्रों के प्रतिपाद्य को न स्वीकार कर स्वयं अपने मत का उपस्थापन किया है। शंकराचार्य का विवर्तवाद[4] ब्रह्मवाद से प्रमाणित नहीं है। ब्रह्मसूत्र में स्पष्ट कहा गया है कि जगत उसी प्रकार ब्रह्म का परिणाम है[5] जिस प्रकार दही दूध का परिणाम होता है। किन्तु शंकराचार्य ने जगत् को ब्रह्म का विवर्त माना है, रस्सी में सर्प का भ्रम विवर्त कहलाता है।

प्रस्तुत काव्य में कवि ने विश्व को यह सन्देश दिया है कि विश्व का कल्याण न तो केवल आध्यात्मिकता से हो सकता है और न केवल भौतिकता से। दोनों के समन्वय[6] से ही मानव का कल्याण सम्भव है।

---

1 से 3 तक लोकायतन, क्रमशः पृष्ठ 325, 326-327, 328

4-ब्रह्म ही जगत प्रपंच निमित्त,
ब्रह्म ही उपादान आधार।
जागतिक जीवन ब्रह्म विवर्त,
ब्रह्म ही स्थूल सूक्ष्म का सार। (वही, पृ0 328)

5-परिणामात्। वेदान्त दर्शन 1/4/27

6-(अ) आध्यात्मिक सत्यों के बल पर
सम्भव न धरा का रूपान्तर।
जब तक न [illegible]

(ब) संयुक्त कर्मरत रहकर जन, मिलकर करते
मिलकर करते मंगल चिन्तन। वही, 65।

लोकायतन की भाषा छायावादी नहीं, छायावादी लक्षणों से आई और कहीं अनुभूति से तरलित अवश्य है। अनेक शब्द कवि-निर्मित हैं तथा ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया गया है। अलंकार-योजना में कवि ने अपनी पारदर्शी कलात्मकता का परिचय दिया है। लोकायतन में प्रयुक्त उपमान सर्वथा अछूते हैं।

अपने उदात्त काव्य-शिल्प के कारण भी यह एक महत्वपूर्ण कृति है। दरअसल यह रचना छायावादोत्तर काल की 'उर्वशी' के समान एक अमर कृति है और स्वातंत्र्योत्तर काल के सर्वोत्कृष्ट महाकाव्यों में इसका स्मरण किया जायेगा।[1]

## 'झाँसी की रानी' (सन् 1964)

आलोच्य कृति में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का सर्वांग जीवन चरित्र ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में चित्रित किया गया है। इसमें तेईस खण्ड हैं, जिन्हें 'प्रकार' से अभिहित किया गया है। लेकिन अंतिम सर्ग को महाप्रस्थान का अभिधान दिया गया है, जो घटना-विशेष की दृष्टि से न्यायोचित ही है। प्रस्तुत काव्य में लक्ष्मीबाई (मनूबाई) की बाल्यावस्था, नाना-शौर्य वर्णन, झाँसी नरेश गंगाधर से विवाह, भारत की पराधीनता को देखकर रानी की उदासी, पुत्रोत्पत्ति और मरण, दामोदर को गोद लेना, अँग्रेजों का प्रकोप, बीबीगढ़ में अफसरों से अँग्रेज बालकों का खून चटवाना, 66 कवों का दुर्ग में तड़पकर प्राण-त्यागना, बहादुरशाह के पुत्रों की निर्मम हत्या, रानी द्वारा सागर जेल की गिरफ्तारी, झाँसी पर अँग्रेजों का आक्रमण, रानी की वीरता और रण-कौशल, रोज से कालपी में युद्ध और रानी का महाप्रयाण आदि प्रसंग संग्रहित हैं। कथानक ऐतिहासिक रानी की जीवन गाथा से सम्बद्ध है, अतः इसमें जीवन की अनेकरूपता और

---

1. वातायन, जून, 65 पृ0 83-85

विविध परिस्थितियों की अभिव्यक्ति महाकाव्योचित नहीं है।[1] इतना अवश्य है कि घटनाओं के चित्रण में कवि ने इतिहास की रेखाओं का उल्लंघन नहीं किया है। किन्तु घटनाओं में जो गहनता और गम्भीरता महाकाव्य के लिए वांछनीय होती है, उसका यहाँ अभाव है।

'झाँसी की रानी' में भावुक स्थलों की उत्कृष्टता भी नहीं है, एकाध प्रसंग अवश्य हृदय को कुछ प्रभावित करते हैं। रसोद्रेक पर कवि ने सम्यक् ध्यान दिया है। वीररस की अभिव्यंजना तो सर्वाधिक है। इसके अतिरिक्त वात्सल्य, शृंगार और करुण रस की निष्पत्ति भी हुई है। वात्सल्य में संयोग और वियोग दोनों का वर्णन है।

काव्य की भाषा सरल और प्रवाहमान है। उर्दू शब्दों का निःसंकोच प्रयोग हुआ है। भाषा में कतिपय शब्दों की पुनरावृत्ति अवश्य खटकती है। भाषा में ओज है और भावों के अनुरूप शब्द-व्यंजना है। मुहावरों और अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक है।

यहाँ सर्गों के स्थान पर 'हुंकार' का प्रयोग नवीन और मौलिक है। छन्दों में प्रवाह और भावोत्तेजना है। इसमें घटनाएँ अवश्य ही तथ्यात्मक एवं ऐतिहासिक हैं एवं काव्य की दृष्टि से समीचीन एवं नवीन हैं। परन्तु अपने समग्र रूप में काव्य में न तो उदात्त प्रभावक भाषा है और न ही किसी गंभीर जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति है। यह एक चरित्र प्रधान काव्य है और एक श्रेष्ठ रचना है। इसमें वीर-भावना और देश-प्रेम का एक आदर्श रूप प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से भी यह महाकाव्य महत्वपूर्ण है।

---

1- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, डा० निजामउद्दीन, पृ० 28।

## महाभारती (सन् 1968)

पोद्दार श्री रामावतार अरुण ने सन् 1968 में महाभारती नामक महाकाव्य की रचना की। इसमें 15 सर्ग हैं। इसका नामकरण विशाल भारत की सम्पूर्णता को लेकर किया गया है। इसके नायक विश्वामित्र हैं। कवि ने महाभारती में विशाल भारत की वैदिक एवं पौराणिक संस्कृति का समावेश करने के उद्देश्य से अनेक अवांतर कथानकों का संयोजन किया है, जिससे कथानक विशृंखलित हो गया है। फिर भी इस काव्य में हमें नवीनता मिलती है।[1]

प्रस्तुत काव्य में विश्वामित्र, वशिष्ठ और अगस्त्य के क्रमशः कर्म-सिद्धान्त, ज्ञानवाद एवं विज्ञानवाद का निरूपण किया गया है।

वशिष्ठ अपनी साध्वी पत्नी अरुन्धती के साथ वैदिक साधना में निमग्न रहते थे। एक दिन अपने शिष्ट-यज्ञ को समाप्त कर वशिष्ठ ने अपने शिष्यों से कहा कि हमें अपने पूर्वजों के मार्ग का अनुसरण करते हुए सदैव आर्यत्व की रक्षा करनी चाहिए। इससे वैदिक परम्पराएं हमारे सामने होंगी, उत्तम कर्म सम्पन्न होंगे, आत्मोत्कर्ष होगा, सत्-बुद्धि में अनुशासन रहेगा और हमारा जीवन संयम पूर्ण बनेगा।[2] ज्ञान से विधि-विधान सम्पन्न होते हैं, साधनाएं करने से दैवाश्रित अर्जित होती है, भक्ति से ईश्वर की कृपा प्राप्त होती है और त्याग से सांसारिक भोगों में अनासक्ति आ जाती है।[3]

सरस्वती नदी के किनारे गाधि-पुत्र विश्वामित्र कुलपति ऋचीक के आश्रम में शिक्षा प्राप्त करते हैं। विश्वामित्र की बहन सत्यवती ऋचीक को विवाहित थी।[4]

---

1- स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी प्रबन्धकाव्यों का सांस्कृतिक अनुशीलन, डा0 विश्वम्भरदयाल अवस्थी, पृ0 88-89

2- महाभारती, पृ0 100

3- वही, पृ0 102

4- वही, पृ0 135

विश्वामित्र शास्त्र-विद्या के साथ शस्त्र-विद्या का भी अभ्यास करते थे। इस प्रकार वे शक्तिशाली बनकर जीवन में कृतकार्य होने की वैदिक आज्ञा का पालन करते थे।[1] विश्वामित्र गायत्री-सिद्धि के कारण अत्यन्त तेजस्वी थे। वे भारतीय संस्कृति का प्रचार दक्षिण भारत तक करना चाहते थे, किन्तु वशिष्ठ इसके विरुद्ध थे। इस कारण दोनों में वैचारिक संग्राम चल रहा था। विश्वामित्र इस सांस्कृतिक क्रान्ति के नेता थे। अन्त में विश्वामित्र को सफलता प्राप्त हुई।

अगस्त्य ने जन-कल्याण के लिए अपने वैज्ञानिक साधनों के द्वारा उत्तुंग विन्ध्यपर्वत की चोटियों को ध्वंस कर दिया और उत्तर-दक्षिण के आवागमन को सुलभ कर दिया।

प्रस्तुत काव्य में कवि के मौलिक विचारों के दर्शन होते हैं। किन्तु कुछ स्थलों पर इतिहास विरुद्ध तथ्यों को अन्यथा प्रसंगों के साथ जोड़ा गया है, जो अनुचित है। इस प्रकार के प्रसंगों की उद्भावना पाठकों की विचारधारा को विकृत कर देती है।

महाभारती की रचना भारतीय शक्ति, सौन्दर्य और साधना के आधार पर हुई है। कल्पना-विलासी कविदृष्टि को भारत के भौगोलिक परिवेश ही नहीं, शैली-शास्त्र सांस्कृतिक आवरण के चेतना-बिन्दु भी सत्य-आरोप प्रेरणा प्रदान करते रहे हैं। इस काव्य का मूल उद्देश्य वैदिक चिन्तन-वाङ्मय का रसमय उद्घाटन करना ही अभीष्ट था, परन्तु इसमें प्राचीन सभ्यता और संस्कृति की उपेक्षा भी नहीं की गई। वृ कथा-शृंखला के लिए प्रस्तुत प्रबन्ध में कहीं-कहीं पौराणिक शैली का भी अनुसरण करना पड़ा और कहीं कहीं [illegible]कारों के समान उपयुक्त स्थान पर औपनिषदिक तत्व के सार-ग्राही मधु संकलन करने का भी मौलिक प्रयास किया गया।

---

1- महाभारती, पृ० 138

सृष्टि-संरचना की प्राकृतिक भूमिका से इस कलासृष्टि का प्रसंगयोगी प्रारम्भ इसलिए अनिवार्य प्रतीत हुआ कि कल्पना और विज्ञान एक साथ मिलकर उस उत्तुंग हिमालय पर सूक्ष्मदर्शी दृष्टि को केन्द्रित करें, जिसकी स्वर्णोज्ज्वल छाया में भारत ने प्रथम देवोत्थान का अविस्मरणीय साक्षात्कार देखा था। एक ओर जहाँ कभी मन को इन्द्रिय माना गया, वहाँ मेधावी को इन्द्र मानकर प्राचीन ऋषियों ने स्वानुभूत चेतना का मानसिक वरण किया। इन्द्रिय और अतीन्द्रिय ज्ञान-शक्ति के प्रातिभ योग से निश्चय ही प्रारम्भिक मनुज-मस्तिष्क को प्राणदायी लाभ हुआ। शिव-पार्वती , पुरूरवा - उर्वशी और विश्वामित्र-मेनका के आध्यात्मिक मनोयोग के वैदिक तथा पौराणिक प्रमाण आज भी उत्प्रेरक हैं। अतीतकालीन सरस शब्द-विद्युत के आधार पर मन की कल्पना कलित पुराण पद्मिनी शक्ति(मेनका) के सारस्वत सुदृढ़ीकरण से भारतीय साहित्य में एक नवीन अध्याय को जोड़ने का अभ्यासात्मक प्रयास किया गया,जो कवि की मनःस्थिति रमणीयता के सद्यः अपूर्व बिम्ब-बिम्बित है।

यों तो सभी विख्यात वैदिक ऋषि अपनी-अपनी न्यूनाधिक महिमा से तप-स्या सम्पन्न हैं; किन्तु ज्ञान, विज्ञान, और कर्म के दीप्त प्रतीक रूप में वशिष्ठ, अगस्त्य और विश्वामित्र की कालजयी साधना आज भी भारतीय वाङ्मय में आलोक स्तम्भ की भाँति आज्वल्यमान है। इन तीनों पुराण-सम्मानित -- महर्षियों के आत्मानुसन्धान से मानवता को अपार लाभ हुआ। वेदकालीन ऋषियों में कदाचित् विश्वामित्र ही इसके प्रथम क्रान्तिकारी थे,जो मनुष्यों के भौतिक और आध्यात्मिक विभेद को मिटाने में आजीवन सचेष्ट रहे। वे समाज के प्रथम दिक्-नायक और सर्वप्राण-उन्नायक थे। उनकी उदात्त प्रेरणा से ही अगस्त्य ने अगम्य पौराणिक विन्ध्याचल का आरोहण किया। कौशिक के अनुरोध पर ही कपीक ऋषि ने अपने गुरुकुल में अनार्य-प्रवेश की प्रथम अनुमति प्रदान की, किन्तु विशुद्ध आर्यत्व के संश्लिष्ट संरक्षक मुनि वशिष्ठ ने उस नवीन निर्णय का वैचारिक विरोध किया। वास्तव में वशिष्ठ और विश्वामित्र का विचार-संग्राम साधारण कोटि का नहीं था। दोनों की सारस्वत चेतनाएँ भिन्न रूप में कार्यरत थीं। एक समय ऐसा भी आया कि

दोनों की क्रियाशील अतिमानस-ज्योति एक ही ध्यानावस्था में दीप्त पड़ी, परन्तु विश्वामित्र को मनुष्यता की नव-चैतन्य कर्मोपासना के लिए ठोस धरातल पर उतर आना पड़ा।

इस काव्य कृति में सामान्य सुख-दुःख , उल्लास-हास काम-वासना और मानवोचित स्नेह-प्रेम का स्तरीय अभाव नहीं, किन्तु आन्तरिक और मानसिक असाधारणता की भी कमी नहीं, जिसके लिए भारतीय शब्द-विद्या विश्व-प्रसिद्ध है। प्रज्ञावान चिन्तकों ने प्रातिभ कल्पना को परा-कोटि में स्थान दिया है। योग के माध्यम से ऊर्ध्व दृष्टि जिस चैतन्य-सत्य से साक्षात्कार करती है, किरण जैसी कल्पना शक्ति ने उस आलोकित तथ्य का भी आत्म-रमणीय निरूपण किया है। इसमें किंचित् भी अतिशयोक्ति नहीं है कि विज्ञान-साधना को मनः प्रसूत कल्पना ही आदि चिन्तन गति की क्रियात्मक प्रेरणा देती है। त्रिशंकु के बिम्ब-विधान के द्वारा गायत्री-द्रष्टा विश्वामित्र की उन्मीलित दृष्टि ने जो मानसिक स्वर्ग का अतिक्रमण किया, उसमें ज्योतिर्मयी कल्पना का ही रश्मि रंजित सह-योग था। कल्पना की कल्याणदायिनी कामधेनु आज भी विश्वमानस को दैव्य चेतना का अमृत देती है।

प्रसंगानुसार शकुन्तला-कथा में किंचित् परिवर्तन किया गया है। युग-युग से मानसिक मेनका की मायावी तनया अपने जन्मदाता से नहीं मिल सकी थी। शाश्वत स्वर्ग की वह सुन्दरी नारी प्रस्तुत काव्य में सदा-सदा के लिए प्रासाद-वन्दिनी नहीं बन सकी। वैदिक चेतना ने कण्व-कन्या को बाध्य किया कि वह भविष्य के विवेकमय वैचारिक सत्य के लिए अपने कृत्रिम कनक ऐश्वर्य का त्याग करे। वाल्मीकि की सीता उत्सर्ग के कारण ही उदात्त मातृ बनी। सौन्दर्यमयी शकुन्तला जनकनन्दिनी की सात्विकता का अतिशय आदर्श स्पर्श तो नहीं कर सकी; किन्तु इस काव्यलोक की रहस्यमयी रश्मि रमणी लोपामुद्रा ने भारतीय जीवन और जगत् के लिए निरन्तर कुछ ऐसे कल्पित-संकल्पित मानवीय कार्य सम्पादित किये; जो अपने आप में करुणा-सम्पन्न हैं। प्रधान-अप्रधान प्रायः सभी स्त्री-पात्र अपनी स्तरीय अनेकता में आत्म एकता की मंगल कामना करते हैं। मुनि अगस्त्य

रमणीयता का त्याग नहीं कर सका है, किन्तु सम्पूर्ण रचना का अभिप्राय दैहिक बन्धन तक ही सीमित नहीं रहा। मानवीय दृष्टि-चेतना के कारण जीवन की त्रिमुखी साधना प्रदान धारा यहाँ तक आ गई जहाँ काल के मस्तिष्क में भगवान की संभावित ध्वनि सुनाई पड़ी। ऐतिहासिक कथा के कारण आगे आगे बढ़ने में मानवता वादी राष्ट्रीय काव्यकला की शान्ति मलिन हो सकती थी। अतः 'महाभारती' की परिपूर्ति-स्थापना के उपरान्त ग्रंथ की शारदीय समाप्ति हो गई। इस प्रबन्ध-पद्म में मनस्विनी वाणी का स्वरस अवतरण भी हो गया है। परन्तु विशाल भारत की सम्पूर्णताओं को ही महाभारती समझना अधिक साहित्यसंगत होगा क्योंकि चारों ओर की संगृहीत शक्ति ही भारत की विवेकशालिनी विभूति है।'[1]

## भगवान्राम (सन् 1970)

श्री मनमोहन लाल श्रीवास्तव ने वाल्मीकि रामायण का अनुसरण करते हुए भगवान् राम के सम्पूर्ण चरित्र को आधार बनाकर सन् 1970 में 'भगवान्राम' नामक महाकाव्य का प्रणयन किया है। काव्य के नायक भगवान् राम हैं। उन्होंने प्रस्तुत काव्य को तीन भागों में भिन्न भिन्न समय में लिखा है —

(1) भगवान् राम पूर्वचरित- बाललीला, सन् 1960

(2) भगवान्राम— मध्यचरित — तपोवन विहार, सन् 1969

(3) भगवान्राम — उत्तरचरित — विजयपर्व सन् 1970

सम्पूर्णकाव्य 53 सर्गों तथा 8 उपखण्डों में विभक्त है।

---

1- महाभारती, पृष्ठभूमि, पृ० 10-14

## पूर्वचरित — बाललीला :—

श्रीराम ने ताड़का एवं सुबाहु आदिक राक्षसों का विनाश कर विश्वामित्र का यज्ञ पूरा करवाया। प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने श्रीराम को दिव्यास्त्र प्रदान किये। जनकपुर जाते हुए विश्वामित्र ने श्रीराम से अहिल्या के पूर्ववृत्त का उल्लेख करते हुए कहा कि एक समय इन्द्र गौतम ऋषि की उग्र तपस्या से भयभीत हो गया। ऋषि की तपस्या को नष्ट करने के विचार से इन्द्र ऋषि की अनुपस्थिति में अहिल्या के पास गया।[1] किन्तु अहिल्या ने इन्द्र की भर्त्सना की।[3] असन्तुष्ट इन्द्र ने गौतम से अपने द्वारा अहिल्या के सतीत्व नष्ट करने की कथा कही। क्रुद्ध ऋषि दोनों को शाप देकर उग्र तप हेतु हिमालय पर चले गये। पति-परित्यक्ता अहिल्या अहर्निश तप करती हुई अपने आश्रम में अदृश्य रूप में रहने लगी।[4] अहिल्या के उदात्त चरित्र से अवगत होकर श्रीराम ने अहिल्या का अभिनन्दन किया।[5] कवि ने प्रस्तुत प्रसंग में लोक प्रसिद्ध इतिवृत्त को परिवर्तित कर अहिल्या के निन्दित चरित्र को निष्कलंक बनाने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। ऐसा ही प्रयास प्रसिद्ध विद्वान् कुमारिल भट्ट ने भी किया है।[6]

---

1- छायावादोत्तर हिन्दी प्रबन्धकाव्यों का सांस्कृतिक अनुशीलन, डा0 विश्वम्भरदयाल अवस्थी, पृ0 90-93

2- भगवानराम, पू0च0, पृ0 386

3- वही, पृ0 382  4- वही, पू0च0 398  5- वही, 484

6- भगवानराम-आत्मनिवेदन पृ0 9 पर उद्धृत —

अहल्या की कथा का सबसे प्रथम उल्लेख ब्राह्मण ग्रंथों में आता है। शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर इन्द्र 'अहिल्यायै जार' कहा गया है। कुमारिल भट्ट ने तंत्र वार्तिक के शिष्टाचार प्रकरण में एक व्याख्या दी है, जिसका भाव यह है कि इन्द्र का अर्थ है-परमैश्वर्य वाला और यह शब्द सूर्य के लिए प्रयुक्त हुआ है। दिन(अह) में छिपने(ल्या) के कारण रात्रि को अहल्या कहते हैं; क्योंकि सूर्य(इन्द्र) रात्रि(अहिल्या) को जीर्ण करता है। इसलिए इन्द्र को अहल्या का जार कहा गया है, परन्तु व्यभिचार के कारण जार नहीं कहा गया है। — डा0धीरेन्द्र वर्मा

जनकपुर पहुँचने पर रामादि का हार्दिक स्वागत हुआ। विश्वामित्र की आज्ञा से श्रीराम ने शंकर के धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाने के लिए जैसे ही उसे झुकाया, धनुष बीच से दो खण्ड हो गया। इसके पश्चात् भगवान् श्री राम का विवाह सीता से हो गया।

मध्यचरित – तपोवन विहार :–

कवि ने प्रस्तुत खण्ड में भगवान राम के अयोध्या से निर्वासित होने से लेकर सीता-हरण तक की घटनाओं का आंशिक चित्रण किया है।

कैकेयी ने दो वरदान माँगकर अनर्थ और विनाश के बीज बो दिये। उसने दशरथ के प्रेम एवं आस्था के साथ विश्वासघात तो किया ही, साथ ही लोकमत की भी अवहेलना की। ऐसे समय वनवास स्वीकार कर राम ने पिता को धर्मसंकट से मुक्त कर मर्यादा की प्रतिष्ठा की। राम का राज्याभिषेक सभी चाहते थे, किन्तु कैकेयी ने राम को चौदह वर्ष का वनवास देकर अयो ध्यावासियों के हर्ष को विषाद में बदल दिया। ननिहाल से वापस लौटने पर भरत ने राम से वापस चलने की प्रार्थना की, किन्तु राम ने कहा – जिस सत्य की रक्षा पिता ने अपने प्राण देकर की, क्या मैं उन वचनों का उल्लंघन करूँ ? तुम तब तक अयोध्या में रहकर प्रजा का पालन करो। अन्त में भरत राम की चरण पादुकायें लेकर उन्हें राज सिंहासन पर अधिष्ठित कर सेवक के रूप में प्रजा का पालन करने लगे।

एक दिन दण्डक वन में कुटी के पास स्वर्ण मृग (मारीच) को देखकर सीता ने उसे पाने की इच्छा प्रकट की। राम मृग को मारने चल पड़े। मारीच की छलयुक्त कपट वाणी से आकृष्ट होकर लक्ष्मण के चले जाने पर एकान्त पाकर साधुवेश धारी रावण ने सीता का अपहरण कर लिया।[1] रावण को रोकने के प्रयास में जटायु

---

1- भगवानराम – पंचवटी, खण्ड, पृ0 612

भी घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

**उत्तरचरित — विजयपर्व :—**

श्रीराम को जटायु से रावण द्वारा सीता-अपहरण का समाचार मिला। आगे सुग्रीव से भेंट हुई। वह बालि से त्रस्त था। राम ने उसे अभयदान दिया। बालि अपने गले में इन्द्र-प्रदत्त स्वर्णमाला पहन कर युद्ध किया करता था। उस माला की यह विशेषता थी कि उसको पहन कर युद्ध करने से विपक्षी का बल नष्ट हो जाता था तथा बालि की बल-वृद्धि होती थी। इस प्रकार बालि अपने विपक्षी को मार डालता था।[1] ऐसे बली बालि को राम ने एक ही बाण से धराशायी कर दिया। दिव्य माला के प्रभाव से भूपतित होने पर भी बालि श्रीहीन नहीं हुआ।[2] बालि के मरने पर सुग्रीव किष्किन्धा का राजा बना तथा वानरों की सहायता से राम ने रावण पर चढ़ाई की। आरम्भ में मेघनाद के बाणों से राम तथा लक्ष्मण मूर्छित हो गए। गरूड़ ने आकर दोनों भाइयों को नागपाश के बन्धन से स्वतंत्र किया।[3] मेघनाद की शक्ति से मूर्छित लक्ष्मण के प्राण हनुमान ने संजीवनी बूटी से बचाये।[4]

अन्त में राम और लक्ष्मण द्वारा कुम्भकर्ण, मेघनाद और रावण का वध हुआ। विजयोपरान्त भगवती सीता जब श्रीराम के समक्ष लायी गयीं, तब श्रीराम ने सीता के प्रति कुत्सित वचन कहे और उनके चरित्र पर आक्षेप किये।[5] भगवती सीता श्रीराम के कटु वचनों से आहत होकर अपने पातिव्रत तेज को प्रज्वलित कर जलने लगीं।[6] तभी ब्रह्मादिक देव वहाँ उपस्थित हो गये और अग्निदेव ने सीता के पूर्ण शुद्ध होने की साक्षी दी।[7] श्रीराम ने सीता को सोल्लास ग्रहण किया और वे पुष्पक विमान द्वारा

---

1- भगवानराम, किष्किन्धाकाण्ड, पृ0 367
2- वही, युद्धकाण्ड, 292 3- वही, युद्धकाण्ड, पृ0 516,
4- वही, 617 5- वही, 628 6- वही, 633
7- वही, राज्याभिषेककाण्ड, 129

अयोध्या आये।[1] श्रीराम का राज्याभिषेक हुआ[2] और भरत को युवराज पद मिला।[3] श्रीराम के राज्य में प्रजा दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से विमुक्त होकर सुख-शान्ति का अनुभव करती थी।[4] श्रीराम ग्यारह सहस्र वर्ष तक प्रजा को सुखी बनाकर परम धाम चले गये।[5]

कवि ने काव्य के तृतीय खण्ड के विजय पर्व के आरम्भ में प्राक्कथन शीर्षक के अन्तर्गत कथावस्तु के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि 'भगवान् राम नामक प्रस्तुत काव्य वाल्मीकि के महाकाव्य के आधार पर लिखा है, अतः तुलसीदास रचित रामचरित मानस पर अवलम्बित कुछ हृदय स्पर्शी दृश्य इसमें नहीं पाये जा सकते हैं। रावण-वध के पश्चात् राम की उदासीनता से क्षुब्ध होकर सीता का सतीत्व-तेज-प्रदर्शन तो बुद्धिसंगत है, किन्तु लक्ष्मण द्वारा चिता-निर्माण असंभव एवं प्रक्षिप्त जान पड़ता है। महर्षि ने रामकथा का अन्त युद्धकाण्ड ही में कर दिया था। अतः उत्तरकाण्ड पर-कालीन क्षेपक है। मेरे इस विचार की पुष्टि युद्धकाण्ड के 128वें सर्ग के 107 वें श्लोक से होती है —

धर्म्यम् यशस्यमायुष्यं राज्ञां च विजयावहम्।
आदि काव्यमिदं त्वार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम्।"

अर्थात् इसका पाठ कृतकृत्यता, यश और आयु देने वाला है, यह आदिकाव्य आर्ष काव्य है और प्राचीन काल में वाल्मीकि मुनि द्वारा रचा गया है।

श्रीवास्तव जी ने लिखा है कि भगवती सीता चिता में नहीं प्रविष्ट हुईं, बल्कि वे योगाग्नि द्वारा शुद्ध हुईं। श्रीवास्तव जी के इस विचार की समीक्षा करते हुए डा० विश्वम्भर दयाल अवस्थी ने लिखा है[6] कि वा०रामायण में नारद ने वाल्मीकि से जिस रामायण का उल्लेख किया है, उसके अनुसार श्रीराम के दस हजार वर्षों

1- भगवान राम, राज्यखण्ड, पृ० 129    2- वही, पृ० 129
3- वही, पृ० 141    4- वही, पृ० 147
5- सहस्र ग्यारह वर्ष देश में आनन्द का शासन चला राम का,
तदनन्तर भौतिकता विमुक्त हो, पवित्रता की प्रतिमूर्ति हो गये। (वही, )
6- [illegible] हिन्दी प्रबन्धकाव्यों का सांस्कृतिक अनुशीलन, पृ० 92

कर सुनकर सीता ने चिता में प्रवेश किया[1], न कि वे योगाग्नि द्वारा जलीं। योगाग्नि तो अपने आप प्रज्वलित हो जाती है, उसमें प्रवेश होने की बात कैसे सार्थक हो सकती है। युद्ध काण्ड में लक्ष्मण द्वारा रचित चिता में सीता जी का प्रविष्ट होना लिखा है।[2] अतः उपर्युक्त कथनों के आधार पर सीता जी का चिता में प्रविष्ट होना प्रक्षिप्त नहीं माना जा सकता।[3]

## जानकी-जीवन (सन् 1971)

'जानकी जीवन' नामक काव्य का कथानक लंका-विजय के उपरान्त अयोध्या में लौटे हुए श्रीराम के राज्याभिषेक, जानकी के परित्याग एवं वाल्मीकि आश्रम में उत्पन्न लव और कुश की कथा से सम्बद्ध है। महाकवि भवभूति ने 'उत्तर रामचरित' में इसी कथा को काव्यबद्ध किया है। रामकथा के परवर्ती अंश से सम्बद्ध होने के कारण जानकी जीवन भी पुरुषोत्तम राम के सम्पूर्ण जीवन को काव्यबद्ध नहीं कर सका है। फिर भी कवि ने काव्य के कलेवर में अपने कौशल द्वारा ऐसा अवसर प्रस्तुत कर दिया है कि पाठक राम के पूर्ववर्ती जीवन से भी परिचित हो जाता है। तृतीय सर्ग में राम स्वयं अनुजों को अपने वनवास की कथा के वे प्रसंग सुनाते हैं, जो चित्रकूट की मन्दाकिनी का परित्याग करके उनके दण्डकारण्य में पहुँचने और वहाँ शूर्पणखा और खरदूषण आदि के साथ युद्ध की घटना से सम्बन्धित हैं। मारीचवध और सीता हरण की कथा भी इसी सर्ग में आ गई है। शबरी द्वारा प्रदत्त मधुर फलों का भोजन, ऋष्यमूक पर्वत पर ब्राह्मण वेशधारी हनुमान से मिलन, जामवन्त, सुग्रीव आदि से सीता-समाचार-प्राप्ति, बालिवध, हनुमान का समुद्र लांघकर लंका पहुँचना, सेतुबन्ध-निर्माण, अंगद का

1- तमुवाच ततो रामः परुषं जनसंसदि।
अनुज्ञाता त्वया सीता विवेश ज्वलनं सती। (वा0रा0 1/1/82)

2- एवमुक्त्वा तु वैदेही परिक्रम्य हुताशनम्।
विवेश ज्वलनं दीप्तं निःशंकेनान्तरात्मना। (वही, 5/116/30)

3- छायावादोत्तर हिन्दी प्रबन्धकाव्यों का सांस्कृतिक अनुशीलन, डा0 विनयकरणलाल अवस्थी, पृ 92

दूतकर्म, रावण का पतन और लंका से मैथिली का उद्धार आदि सभी बातें, इस सर्ग में अतीत कालिन स्मृतियों के रूप में आ गयी हैं।

चतुर्थ सर्ग में कैकेयी की ग्लानि जिस रूप में अभिव्यक्त हुई है, वह कवि की भाव भावित दशा का द्योतक है। कौशल्या कैकेयी को आश्वासन देती है।[1] पाँचवें सर्ग में सूर्योदय के वर्णन के साथ कवि ने राम-सीता के माध्यम से कतिपय नीति-वचनों का उद्घाटन किया है। छठें सर्ग में प्रकृति का विस्तृत वर्णन किया गया है।

नवम सर्ग के अन्त में राम-राज्य के विमल वैभव की अभिवृद्धि में कवि भावी ह्रास की सूचना दे रहा है, जिसमें सीता का निष्कासन दिन में ही अंधकार मयी रात्रि का सूचक है।[2] इस प्रकार प्राकृतिक दृश्य जानकी जीवन में कई स्थलों पर हैं, जहाँ कवि ने उनके द्वारा भविष्य की घटनाओं के संकेतपूर्ण पाठकों को प्रदान किये हैं।

कवि ने बारहवें सर्ग में वाल्मीकि-आश्रम में सीता-वनवास का वर्णन किया है। कवि ने उसका आरम्भ अत्यन्त करुण परिस्थिति में किया है। इसी प्रकार के वातावरण की सृष्टि कवि ने जानकी के सम्बन्ध में दूत द्वारा कही गयी कुत्सा-कल्पना के उपरान्त की है। रजक ने सीता पर परगृह-निवास का लांछन लगाया था। राम ने धैर्य के साथ दूत के मुख से लांछन की इस बातों को सुना। राम शान्त थे, किन्तु प्रकृति मानों क्रोध में भरी हुई आक्रोश करने लगी थी।[3]

तेरहवें सर्ग में सीता-निष्कासन के कारण वातावरण अत्यन्त करुण हो गया है। कवि ने इस करुण दृश्य से प्रकृति को भी रुला दिया है।[4]

---

1- जानकीजीवन, पृ0 77-78
2- वही, पृ0 174-207
3- वही, पृ0 217-23
4- वही, पृ0 242-59

चौदहवें सर्ग में सीता-वनवास का वृत्तान्त फैल गया है। सभी अयोध्या-वासी अपने को लुटा हुआ सा अनुभव करते हैं और पागल के समान हो जाते हैं। इसी सर्ग में ही कवि ने राम के हृदय का भी वर्णन किया है। सोलहवें सर्ग में सभी राजमाताएँ ऋषि श्रृंग के यज्ञ में पूर्णाहुति देकर लौटती हैं। वशिष्ठ-पत्नी अरुन्धती सब कुछ जानकर फूट-फूट कर रोने लगीं। यहाँ पर दृश्य अत्यन्त करुण हो जाता है।[1]

चित्रकूट में कार्तिकी पूर्णिमा को विशाल मेला लगता है। इसी मेले में सम्पूर्ण राजपरिवार उपस्थित होता है। वाल्मीकि सबकी उपस्थिति में राम की जीवन गाथा सुनाते हैं। वाल्मीकि आश्रम में लव-कुश का जन्म होता है। सारा आश्रम नन्दनवन में परिणत हो जाता है।

राम अश्वमेध यज्ञ करते हैं। श्यामकर्ण घोड़ा छोड़ा जाता है; जिसे लव-कुश बाँध लेते हैं। राम-सेना तथा लव-कुश से युद्ध होता है। राम सेना पराजित होती है। अन्त में सब भेद खुलता है और राम लव-कुश को लेकर अयोध्या आ जाते हैं।

'जानकी जीवन' काव्य की कथावस्तु का 'वाल्मीकि रामायण' की कथा-वस्तु से तुलना करने पर दो मुख्य अन्तर ज्ञात होते हैं —

(1) वाल्मीकि रामायण में लवकुश का लक्ष्मणादिक से युद्ध करना नहीं वर्णित है, अपितु वाल्मीकि की आज्ञा से लवकुश श्रीराम के यहाँ जाकर रामायण का गान करते हैं। प्रस्तुत काव्य में लक्ष्मणादिक से युद्ध करना दिखाया गया है।[2] कवि के इस परिवर्तन का आधार जनश्रुति है।

(2) वाल्मीकि रामायण के अनुसार भगवती सीता शुद्धि की परीक्षा देती हुई पृथ्वी में अन्तर्हित हो गयी थीं,[3] जबकि प्रस्तुत काव्य में वे भगवान् राम के साथ यज्ञ में सम्मिलित

---

1- जानकीजीवन, पृ० 297-56    2- जानकीजीवन, पृ० 21/18

3- ता रसन्ती प्रभावयां स्नाती हुतहुताशनी।
यदीयत मूहिणा पूर्व वर्ष तसोपगच्छताम्। वाल्मीकि रा० उ०का०

हुई। इस परिवर्तन द्वारा कवि ने काव्य को सुखान्त बना दिया है, जो भारतीय प्रकृति के अनुकूल है।

प्रस्तुत काव्य में कवि की मौलिक उद्भावना के दर्शन होते हैं। जिस समय सीता को राम ने निर्वासित किया था, उस समय माताओं को अयोध्या में न दिखाकर शृंगी ऋषि के आश्रम में दिखाया गया है।[1] जब वे आश्रम से लौटकर आयीं, तो तब उन्हें बहुत दुख हुआ और उन्होंने राम के इस कार्य की निन्दा की।[2] कवि ने माताओं को सीता-निर्वासन के समय अयोध्या से बाहर दिखाकर मानवीयता की रक्षा की है और माताओं के चरित्र को ऊपर उठाया है।[3]

## अरुण रामायण' (सन् 1973)

पोद्दार श्री रामावतार अरुण ने सन् 1973 में सप्तकाण्डात्मक अरुण रामायण का प्रणयन किया। कवि ने इस वृहत्काव्य में राम से सम्बन्धित सम्पूर्ण घटनावृत्त का उल्लेख किया है। काव्य के प्रारम्भ में कवि ने सज्जन-प्रशंसा तथा खल-निन्दा आदि प्रसंगों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि जब कोई शत्रु मित्र हैं, तो उनका उल्लेख करने से क्या लाभ? तथा जब सब जन मित्र हैं, तो फिर उनका कृत्रिम अभिनन्दन करने का औचित्य ही क्या है?[5] कवि के अनुसार भारतीय जनजीवन में रामायणी कथा एक रूपक के रूप में प्रचलित है। इसमें असत्य का पतन तथा सत्य का शुचि विकास अन्तर्हित है। इसके कुछ पात्र तम के तथा कुछ ज्योति के प्रतीक हैं। राम-रावण युद्ध

---

1- जानकीजीवन, पृ0 10/3   2- तजे प्राणेश ने जब प्राण प्यारे,
न छूटे प्राण पामर हमारे,
दिखायेगी हमें दुखिया अयोध्या। (जानकीजीवन, 16/56

3- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी प्रबन्धकाव्यों का सांस्कृतिक अनुशीलन, डा0 विश्वम्भर दयाल अवस्थी, 94
4- वही, पृ0 96
5- अरुणरामायण, बालकाण्ड, पृ0 3

सत्य और असत्य प्रवृत्तियों का संघर्ष है। मानव इस संघर्ष में आत्मविश्वास और प्रभु कृपा से ही विजयी होता है।[1]

अरुणरामायण' की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें पुत्रविहीन दशरथ की चिन्ता, विश्वामित्र के निर्देशानुसार वशिष्ठ जी की अध्यक्षता में पुत्रेष्टि यज्ञ का सम्पादन,[2] चैत्रशुक्ल नवमी को राम आदि का प्राकट्य, बाललीला, ताड़कावध, धनुर्भंग, विवाह, वनयात्रा, सीता-हरण, बालि-वध, सेतुबंध, रावणादिक का विनाश, राम का अयोध्यागमन, राज्याभिषेक तथा रामराज्य का वर्णन है। कवि ने सीता-निर्वासन का प्रसंग भी जोड़ा है। वाल्मीकि मुनि के आश्रम में भगवती सीता लवकुश नामक दो पुत्रों की जननी बनती हैं। वाल्मीकि इन बालकों को रामायण की कथा सुनाते हैं, जिसे वे अनेक स्थानों पर जा जाकर सुनाते हैं। इन्हीं बालकों के माध्यम से भगवती सीता तथा वाल्मीकि मुनि का अयोध्या-आगमन होता है। श्रीराम की इच्छा जानकर भगवती सीता पृथ्वी में प्रवेश कर जाती हैं और करुणा के इस प्रसंग के साथ ही अरुणरामायण की कथा का पर्यवसान हो जाता है।[3]

अरुणरामायण में कवि ने कतिपय परिवर्तन किये हैं।[4] पुत्रविहीन राजा का हरिद्वार में तप करना, विश्वामित्र का राजा से गुप्त गृहनीति पर विचार करते हुए वशिष्ठ जी के निर्देशन में पुत्रेष्टि यज्ञ करना — यह कथानक प्रसिद्ध इतिवृत्त से (शृंगी ऋषि द्वारा वाचित[5] पुत्रेष्टि यज्ञ से श्रीरामादिक का जन्म होना) सर्वथा भिन्न है।

---

1- अरुणरामायण, पृ0 4 बालकाण्ड

2- वही, पृ0 8

3- वही, उत्तरकाण्ड, पृ0 642

4- छायावादोत्तर हिन्दी प्रबन्धकाव्यों का सांस्कृतिक अनुशीलन, डा0 विश्वम्भर दयाल अवस्थी, पृ0 97

5- अरुणरामायण, बालकाण्ड, पृ0 7-8

कवि ने बालक्रीड़ा का वर्णन करते हुए श्रीराम की मर्यादापुरुषोत्तमता का ध्यान नहीं रखा। कवि ने लिखा है कि एक बार खेलते खेलते राम ने राजा दशरथ का मुकुट उतार लिया[1], जो सर्वथा असम्भव है। कवि ने लिखा है कि एक बार बाल्यावस्था में श्रीराम के मन में अतिशय वैराग्य उत्पन्न हुआ। वे दिन रात आत्मलीन रहने लगे। उन्होंने तपस्वियों का सा जीवन अपना लिया। कवि के इस प्रसंग का आधार हमें योग वशिष्ठ में प्राप्त होता है।[3] धनुष भंग करने पर सीता का विवाह होगा, यह प्रतिज्ञा रखी जाये या समाप्त कर दी जाये, इस प्रश्न पर कवि ने जनक, याज्ञवल्क्य, विश्वामित्र और रावण के मतों का उल्लेख किया है।[4]

अधिकतर रामकथाओं में वर्णित है कि राज्याभिषेक की सूचना कैकेयी को सर्वप्रथम मंथरा द्वारा मिलती है। इससे स्वभावतः यह शंका उठती है कि इस प्रसंग को कैकेयी से जानबूझ कर छिपाया जा रहा था। आनन्दरामायण में इस दोष के परिहार का प्रयास किया गया है। श्रीराम जो कैकेयी को अत्यन्त प्रिय है, स्वयं कैकेयी माता को सूचना देने उनके प्रकोष्ठ की ओर जाते हैं; किन्तु उसी समय गुरु वशिष्ठ को अपने द्वार पर आया हुआ जानकर तुरन्त वापस हो जाते हैं।[5] फिर वे नाना आयोजनों में आबद्ध होकर कैकेयी के समीप नहीं जा पाते।

कवि ने मंथरा के कुबड़ी होने में श्रीराम के चापल्य को कारण माना है,[6] जो किसी भी दृष्टि से बुद्धिगम्य नहीं है। प्रस्तुत काव्य में कैकेयी-विवाह के पूर्व ही राजा दशरथ की इस प्रतिज्ञा का उल्लेख किया गया है कि कैकेयी के गर्भ से जन्म लेने वाला बालक ही राजगद्दी का अधिकारी होगा।[7] मंथरा अपने को रावण का गुप्तचर

---

1व 2—आनन्दरामायण, बालकाण्ड, पृष्ठक्रमांक—12, 15

3—चल प्राकृतमाश्चर्य निष्प्रकारमनिष्टकम्। लोपमाग्लानवदनः करोति न करोति वा॥
योगवशिष्ठ/वैराग्यप्रकरण, 1/10/46

किं धनेन किमम्बाभिः किं राज्येन किमीहया। इतिनिश्चयवानन्तः प्राणत्यागपरः स्थितः॥ (वही
1/10/46

4,5,6,7—आनन्दरामायण, बालकाण्ड, पृष्ठक्रमांक— 53, 115, 118, 122

बतलाती है।[1] इस काव्य में कवि ने ऊर्मिला की विरहवेदना और करुणा की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। कवि ने चित्रकूट की आध्यात्मिक सभा में कैकेयी द्वारा पश्चात्ताप की अभिव्यक्ति करवा कर उसके दोषों का परिहार करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। इस प्रसंग में कवि पर साकेत का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

कवि ने आसुरी प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि क्रूर व्यक्ति ही आसुरी प्रवृत्तियों से युक्त होने के कारण रावण की संज्ञा धारण करता है। जो शोषण करता है, कर्महीन है, मानवता से रहित और परदाररत है, वही असुर है।[2]

आलोच्य महाकाव्यों के कथानक की समीक्षा करने के पश्चात् अब अगले अध्यायों में इन महाकाव्यों का काव्यशास्त्रीय अध्ययन किया जायेगा। काव्यशास्त्रीय अध्ययन के अन्तर्गत प्रतिपाद्य काव्य की रस, अलंकार, वक्रोक्ति, रीति, ध्वनि, औचित्य, शब्दशक्ति, काव्य-गुण और भाषा-शैली की दृष्टि से समीक्षा की जाती है। अतः प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के तृतीय अध्याय से प्रारम्भ कर एकादश अध्याय तक प्रतिपाद्य काव्यों की उपर्युक्त काव्यशास्त्रीय तत्वों के आधार पर समीक्षा की जायेगी।

---

1- अरुणरामायण, बालकाण्ड, पृ0 162

2- अरुणरामायण, अरण्यकाण्ड, पृ0 327

# तृतीय अध्याय

## रस- निष्पत्ति

रस की परिभाषा :-

रस शब्द 'रस आस्वादन स्नेहनयोः' धातु से निष्पन्न होता है। ऋग्वेद में रस शब्द का उल्लेख हुआ है।[1] तैत्तिरीय उपनिषद् में ब्रह्म को रस कहा गया है —

'रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति।'

— तैत्तिरीय उपनिषद् —2/7

काव्यशास्त्र में आनन्दप्रदायक काव्यतत्त्व को रस कहा गया है — रस्यते असौ रसः। अर्थात् जो आस्वाद्य है, वह रस है। रसनात् रसः। सरते इति रसः। अर्थात् जो प्रवाहित हो, वह रस है। कामसूत्र में इस शब्द का काव्यशास्त्रीय रस के अर्थ में प्रयोग हुआ है — 'रसभावलीलानुवर्तिनम्।' (कामसूत्र 6/2/35)

नायकस्य शृंगारादिषु च दृष्टो रसो भावः स्थायिव्यभिचारिलक्षणस्तेषु, लीलाचेष्टितानि तेषामनुवर्तिनम्।' (कामसूत्र 6/2/35 जयमंगलाटीका)

आचार्य विश्वनाथ ने रस के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि जब सहृदयों के हृदय में वासनारूप से विराजमान रत्यादि रस स्थायीभाव विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के द्वारा अभिव्यक्त हो जाते हैं तथा आनन्दरूप हो जाते हैं, तब उन्हें रस कहते हैं —

'विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।

रसतामेति रत्यादिः स्थायीभावः सचेतसाम्॥ (सा०द० 3/1)

---

1- वयांसि अस्मै रसं। ऋग्वेद।

## रस के सहायक अंग

**स्थायीभाव :—**

सहृदयों के हृदय में वासना रूप में स्थित शाश्वत मनोविकार साहित्य में स्थायीभाव कहलाते हैं —

'संचारिणः प्रधानानि देवादि विषया रतिः।
उद्‌बुद्धमात्रः स्थायी च भाव इत्यभिधीयते॥' (सा०द० 3/260)

**संचारीभाव** — ये अस्थायी होते हैं और स्थायिभावों के उद्‌बुद्ध होने में सहायक होते हैं। संचारी भाव तैंतीस होते हैं —

विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नास्त्रयस्त्रिंशच्च तद्‌भिदाः। (सा०द० 3/140)
निर्वेदावेग दैन्यश्रममदजडता औग्र्यमोहौ विबोधः
स्वप्नापस्मारगर्वा मरणमलसतामर्षनिद्रावहित्था॥
औत्सुक्योन्मादशङ्काः स्मृतिमतिसहिता व्याधिसन्त्रासलज्जा।
हर्षासूया विषादाः सधृति चपलता ग्लानि चिन्तावितर्काः॥ (सा०द० 3/141)

**विभाव :—**

सहृदयों के हृदय में संस्कार रूप में स्थित रति आदि स्थायीभावों के उद्दीपक कारण को विभाव कहते हैं —

रत्याद्युद्‌बोधका लोके विभावाः काव्यनाट्ययोः। (सा०द० 3/29)

वे वाणी और अंगों के आश्रित अनेक अर्थों का अनुभव कराते हैं, अतः उन्हें विभाव कहते हैं —

बहवोऽर्था विभाव्यन्ते वागङ्गाभिनयाश्रयाः।
अनेन यस्मात्तेनायं विभावसंज्ञितः कथ्यते। (नाट्यशास्त्र, 7/6)

विभाव दो प्रकार के होते हैं —(1) आलम्बन (2) उद्दीपन।—

आलम्बनोद्दीपनाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ।(सा0द0 3/29)

आलम्बन — आलम्बन विभाव वे हैं, जिनका आधार लेकर आश्रय के हृदय में रति आदि स्थायीभाव जाग्रत् होते हैं।

उद्दीपन — आलम्बन की चेष्टाओं और प्राकृतिक पर्यावरण को उद्दीपन कहते हैं। इसके द्वारा स्थायीभाव उद्दीप्त होते हैं।

अनुभाव — स्थायीभावों के उदय होने के पश्चात् जो शारीरिक विकार दिखलायी पड़ते हैं, वे अनुभाव कहलाते हैं।[1] जो स्थायीभाव का अनुभव कराते हैं, वे अनुभाव हैं —

अनुभावयन्तीति अनुभावाः'

अनुभाव चार प्रकार के होते हैं —

(1) कायिक अनुभाव — कटाक्ष आदि आंगिक चेष्टाएँ।

(2) मानसिक अनुभाव —(वाचिक) कथोपकथन आदि।

(3) आहार्य अनुभाव — अलंकार आदि को धारण करना।

(4) सात्त्विक अनुभाव — सत्त्व से उत्पन्न होने वाले विकारों को सात्त्विक अनुभाव कहते हैं। सत्त्व का अर्थ है — भावक के चित्त को सुख-दुःख आदि की भावनाओं से भावित करना। सात्त्विक अनुभाव आठ होते हैं —

स्तम्भ, वेपथु, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, विवर्णत्व, अश्रुपात और चेतनाराहित्य।

---

1- उद्बुद्धं कारणैः स्वैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन्।
लोके यः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः।।(साहित्यदर्पण, 3/134)

2- आंगिको वाचिकश्चैव ह्याहार्यः सात्त्विकस्तथा।
चत्वारो ह्यभिनया ह्येते विज्ञेया नाट्यसंश्रयाः।।(नाट्यशास्त्र, 6/23)

## रस-निष्पत्ति

आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में लिखा है कि विभाव, अनुभाव और संचारीभावों के संयोग से रस निष्पत्ति होती है।[1]

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः ।

(नाट्यशास्त्रम्। षष्ठोऽध्यायः पृ0 620)

आचार्य भरत की उपर्युक्त कारिका में प्रयुक्त संयोग और निष्पत्ति के अर्थ को लेकर परवर्ती आचार्यों में मतभेद पाया जाता है। इस कारिका में यह भी नहीं बतलाया गया है कि रस की निष्पत्ति किसको होती है — नाटक के नट( पात्र) को या सामाजिक (पाठक या श्रोता या दर्शक) को? इसी प्रकार राम,दुष्यन्त आदि ऐतिहासिक पुरुषों को रस निष्पत्ति हुई या नहीं? इन्हीं प्रश्नों का उत्तर देते हुए प्रमुख आचार्यों ने अपने-अपने ढंग से इस सूत्र की व्याख्या प्रस्तुत की है —

### रस-निष्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न आचार्यों के मत :—

आचार्य भरत के उपर्युक्त रस-सूत्र की व्याख्या करने वाले आचार्यों में भट्ट लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक और अभिनव गुप्त विशेष उल्लेखनीय हैं। इन आचार्यों के मतों का सारांश इस प्रकार है —[2]

---

1- यथा हि नाना व्यंजनौषधि द्रव्यसंयोगाद्रस निष्पत्तिः तथा नाना भावोपगमाद्रस निष्पत्तिः। यथा हि गुडादिभिर्द्रव्यैर्व्यंजनैरोषधिभिश्च षाडवादयोरसा निर्वर्त्यन्ते तथा नाना भावोपगता अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवन्तीति।

— अभिनव भारती, पृ0 677-678

2- सिद्धान्त और अध्ययन, बाबू गुलाबराय, पृ0 191

आचार्य विश्वनाथ :-

आचार्य विश्वनाथ ने रस-निष्पत्ति के प्रसंग में निम्नांकित तीन व्यापारों की कल्पना की है -[1]

(1) विभावन व्यापार - यह व्यापार सामाजिकों के हृदय में वासनारूप से स्थित रति आदि स्थायीभावों को जागृत करता है।

(2) अनुभावन व्यापार - यह व्यापार पूर्वोक्त जागृत भाव को आस्वादन के योग्य बनाता है।

(3) संचारण व्यापार - यह व्यापार आस्वादन योग्य व्यापार को पूर्णरूप से परिपुष्ट कर और रस-रूप में प्रकाशित करता है।

आचार्य विश्वनाथ के मत से सहृदय पुरुषों के हृदय में वासनारूप में स्थित रति आदि स्थायीभाव ही विभाव, अनुभाव और संचारीभावों के द्वारा अभिव्यक्त होकर रस रूप को प्राप्त होते हैं।[2]

## प्रमुख रस

अलंकारों के समान रसों की संख्या में भी समय-समय पर विस्तार होता रहा है। रस सम्प्रदाय के प्रवर्तक भरत मुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में श्रृंगार, रौद्र, वीर और वीभत्स इन चार ही रसों का प्रमुख रूप से उल्लेख किया है। इन्हीं से क्रमशः हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक रसों की उत्पत्ति मानी है। इस प्रकार नाट्यशास्त्र में कुल आठ रसों का वर्णन है। भरत मुनि ने इन आठ रसों का उल्लेख इस प्रकार किया है —

---

1- तत्र विभावनं रत्यादेर्विशेषेणास्वादाङ्कुरणयोग्यतानयनम्। अनुभावनमेवंभूतस्य रत्यादेः समनन्तरमेव रसादिरूपतया भावनम्। संचारणं तथाभूतस्यैव तस्य सम्यक् चारणम्।
- सा०द० 3/13 की विवृति

2- विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायीभावः सचेतसाम्॥ (वही, 3/1)

'शृंगार हास्य करुण रौद्रवीर भयानकाः।

बीभत्साद्भुत संज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः॥(नाट्य06/16)

उन्होंने इन रसों के बाद 'शान्तोऽपि नवमो रसः' इत्यादि कहकर शान्त रस को भी निरूपित किया है। वे शान्त रस से ही सब रसों की उत्पत्ति और अंत में उसमें अवसान होना मानते हैं।

स्वं स्वं निमित्तमासाद्य शान्ताद्भावः प्रवर्तते।

पुनर्निमित्तापाये च शान्त एवोपलीयते॥(वही, 6/108)

इस प्रकार भरत ने शान्त रस को नाटक में स्थान न देते हुए भी उसे सब रसों का उद्गम और अन्तकाल कहा है।

'विक्रमोर्वशीय' और 'कादम्बरी' में शान्त रस की चर्चा नहीं है, इनमें नाट्यशास्त्र में वर्णित अन्य आठ रसों का ही निर्देश है। किन्तु बाद में उद्भट ने और 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' में नौ रसों का उल्लेख किया है। कुछ विद्वानों का मत है कि शान्त रस की अवतारणा सर्वप्रथम उद्भट ने ही की थी। नाट्यशास्त्र में शान्त रसवाला अंश उद्भट द्वारा ही जोड़ा गया है। रुद्रट ने अपने 'काव्यालंकार' में प्रेयान् नामक दसवाँ रस माना है। इसका स्थायी भाव स्नेह है। विश्वनाथ ने प्रेयान् के स्थान पर वात्सल्य को दसवाँ रस कहा है।[1] महाराजा भोज ने बारह प्रकार के रसों की कल्पना की है। वे प्रेयान्, उद्धत और उदात्त रस को भी रस मानते हैं —

'बीभत्सहास्य प्रेयांसः शान्तोदात्तोद्धता रसाः।—सरस्वती0

रूप गोस्वामी, मधुसूदन सरस्वती आदि ने भक्ति को स्वतंत्र रस कहा है। भक्तिरस के समर्थक भक्ति रस में ही नौ रसों की स्थिति निरूपित करते हैं। भागवत में यह भक्ति रस भागवत रस के नाम से उद्धृत किया गया है —

---

1- स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः — साहित्यदर्पण।

'निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।

पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥'

उज्ज्वल नीलमणि में भक्ति को उज्ज्वल रस तथा रस गंगाधर में इसे भावध्वनि कहा गया है। 'रस तरंगिणी' में शान्त रस के विपरीत माया रस की भी चर्चा है। संगीत सुधाकर में ब्रह्म, सम्भोग और विप्रलम्भ नामक रसों का भी उल्लेख है। उद्भट मधुसूदन आदि कुछ विद्वानों ने तथा मानस शब्द आदि में प्रत्येक आस्वादनीय भाव का रस रूप में परिवर्तित होना कहा गया है।

अभिनव गुप्त ने स्नेह रस और लौल्य रस की कल्पना की है। श्रद्धा, कार्पण्य आदि को भी रस की संज्ञा दी गई है; किन्तु अधिकांश विद्वानों ने इन्हें स्वतंत्र रस न मानकर प्रमुख नौ रसों के ही अंग माने हैं।

(1) श्रृंगार रस :—

श्रृंगार शब्द की व्युत्पत्ति :— श्रृंगार शब्द की उत्पत्ति श्रृंग शब्द से हुई है। इसका अर्थ है कामोद्रेक। श्रृंगार 'श्रृंग' और आर दो शब्दों के योग से बना है। 'आर' शब्द 'ऋ' धातु से बना है, इसका अर्थ है गति या प्राप्ति। अतः श्रृंगार का अर्थ 'कामोद्रेक' की प्राप्ति होता है। इसका स्थायी भाव रति है।

परिभाषा :— आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में श्रृंगार की परिभाषा इस प्रकार दी है—

श्रृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमन हेतुकः।

आचार्य मम्मट ने दाम्पत्य रति को ही श्रृंगार कहा है। देवता मुनि, गुरु, पुत्रादि में होने वाली रति को उन्होंने भाव कहा है।

भरत मुनि ने श्रृंगार की परिभाषा अन्य आचार्यों से अलग की है —

यत्किंचिल्लोके शुचि मेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा तच्छृंगारेणोपमीयते।'

अर्थात् संसार में जो कुछ उत्तम, शुचि, उज्ज्वल और दर्शनीय है, वही श्रृंगार है।

संस्कृत साहित्य में श्रृंगार रस का महत्व :-

संस्कृत के अधिकांश आचार्यों ने श्रृंगार रस को सर्वप्रथम स्थान देकर इसे रसराज के नाम से अभिहित किया है। अग्निपुराण में अन्य सभी रसों की उत्पत्ति श्रृंगार रस से कल्पित की गयी है।

'व्यभिचार्यादिसामान्याच्छृंगार इति गीयते।

तद्भेदाः काममितरे हास्याद्या अप्यनेकशः ॥ (अग्निपुराण 349/4/5)

वेनी, पद्माकर आदि कवियों ने भी श्रृंगार रस को सर्वाधिक महत्व दिया है — कवि पद्माकर 'जगद्विनोद' में लिखते हैं —

नव रस में सिंगार रस, सिरे कहत सब कोई'

श्रृंगार का रसराजत्व — श्रृंगार रस को अधिकांश आचार्यों ने रसराज की उपाधि दी है। इसका प्रमुख कारण है श्रृंगार-भावना की व्यापकता। श्रृंगार का स्थायी भाव रति है। रति प्रत्येक प्राणी की शाश्वत भावना है। आचार्य रुद्रट ने एक स्थल पर लिखा है —

'अनुसरति रसानां रस्यतामस्य नान्यः सकलमिदमनेन व्याप्तमाबालवृद्धम्

तदिति विरचनीयः सम्यगेषः प्रयत्नात् भवति विरसमेवानेन हीनं हि काव्यम्।'
— काव्यालंकार।

अर्थात् श्रृंगार रस की स्थिति आबालवृद्ध में रहती है। इसके समान सरस रस अन्य कोई नहीं है। काव्य में इस रस का सम्यक् निरूपण होना चाहिए, क्योंकि श्रृंगार रहित काव्य नीरस हो जाता है।

अभिनवगुप्त ने अपनी 'अभिनव भारती' में 'तत्र कामस्य सकल जाति सुलभतया - - - इत्यादि शब्दों में श्रृंगार भावना को जाति सुलभ सामान्य भाव कहा है। यह प्रत्येक जाति और काल में नित्यरूप से विद्यमान रहता है, इसीलिए इसे आदि रस भी कहा गया है। काव्य मानव-भावनाओं का वर्णमय चित्र होता है। अतः मानव की

प्रधान भावना को शृंगार रस के नाम से प्रकट रस किया गया है। शृंगार रस की कमनीयता और सरसता ने भी उसे आकर्षण प्रदान किया है। यही कारण है कि साहित्य के किसी भी युग के लेखक और कवि अपनी रचना में शृंगार रस का त्याग नहीं कर सके हैं। शृंगार रस प्रधान ग्रंथों की संख्या अन्य रसों के ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक है। जहाँ कहीं अन्य रस की प्रधानता भी दी गयी है, वहाँ भी लेखक शृंगार रस की उपेक्षा नहीं कर सके। यत्र तत्र में दाम्पत्य और वात्सल्य में से किसी न किसी रूप में रति भावना का विस्तार अवश्य देखा जाता है।

शृंगार रस के भेदों और उसके भाव, अनुभाव और संचारीभाव आदि का जितना विस्तृत सूक्ष्म विवेचन लक्षण ग्रंथों में किया गया है, उतना किसी अन्य रस का नहीं किया गया। इसका कारण भी यही है कि शृंगार रस में जितना लेखकों का मन रमा है, उतना अन्य रसों में नहीं। अन्य रसों को तो अधिकांश विद्वानों ने शृंगार के अधीन कहकर एकमात्र शृंगार रस ही माना है। यथा —

उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रेम्ण्यखिलरसा यतः ।

सर्वे रसाश्च भावाश्च तरंगा इव वारिधौ॥'

अर्थात् जिस प्रकार समुद्र में तरंगे निमज्जित होती हैं, उसी प्रकार प्रेम में अन्य सभी रसों का निमज्जन होता है।

शृंगार के अन्तर्गत सभी संचारीभावों का निवास हो जाता है। अन्य रसों में सभी संचारियों का प्रयोग नहीं किया जा सकता। आलस्य, जुगुप्सा, मरण आदि जो संचारी भाव संयोग शृंगार में वर्जित हैं, वे वियोग शृंगार में वर्णित किये जा सकते हैं। देव कवि ने शृंगार का रस अनन्त कहा है। पक्षी जिस प्रकार आकाश का अन्त नहीं पा सकते, उसी प्रकार अन्य रस भी शृंगार की अनन्तता तक नहीं पहुँच सकते—

बिमल सुद्ध सिंगार रस देव अकास अनन्त।

उड़ि-उड़ि खग ज्यों और रस बिबस न पावत अन्त॥"

हिन्दी के रीतिकालीन कवि बेनी प्रवीन ने श्रृंगार की रसराजता का एक दूसरा ही कारण कल्पित किया है। श्रृंगार का रंग श्याम वर्ण का माना गया है। यही वर्ण उनके काव्यालम्बन रसिक कृष्ण का भी है। रति जैसा मधुर भाव इसका स्थायीभाव है इसी लिए वे श्रृंगार को प्रधानता देते हुए लिखते हैं —

श्याम बरन ब्रजराजपति धाई है रतिभाव।

ताहि कहत सिंगार हैं सकल रसन को राज।

— नवरसतरंग।

## श्रृंगार रस का शास्त्रीय रूप

आचार्यों ने श्रृंगार का श्याम वर्ण माना है। विष्णु इसके देवता हैं —

श्यामो वर्णो विष्णुर्दैवतोऽयं श्रृंगारः।'

स्थायीभाव — श्रृंगार का स्थायीभाव रति है। रति को स्पष्ट करते हुए साहित्यदर्पण में लिखा गया है —

रतिर्मनोनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम्।'

अर्थात् मनोनुकूल वस्तु के प्रति प्रभाव होने को रति कहते हैं।

आलम्बन विभाव —(नायिका और नायक) इस रस की नायिका प्रौढ़ा और प्रेम शून्या वेश्या के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार की हो सकती है। रसतरंगिणी में नायिका के निम्नांकित भेद बतलाये गये हैं —
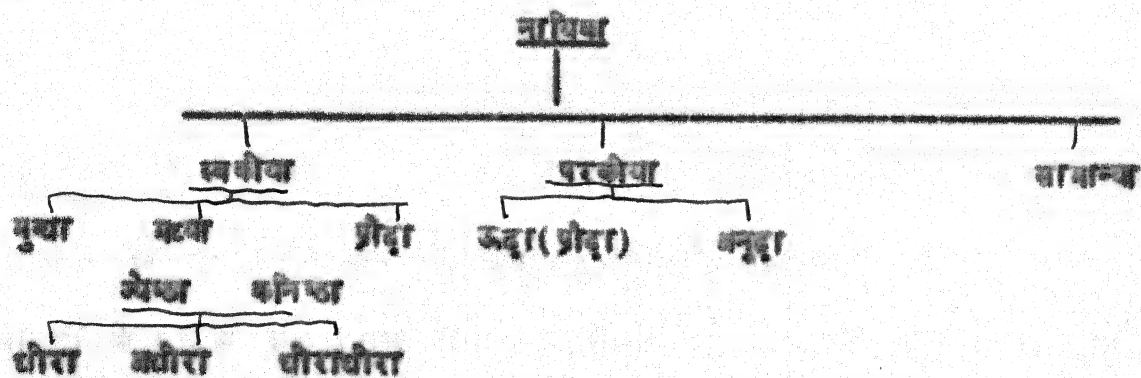
**अवस्थानुसार**

प्रोषितपतिका खण्डिता कलहान्तरिता विप्रलब्धा उत्कण्ठिता वासकसज्जा स्वाधीनपतिका अभिसारिका

**उद्दीपन विभाव :--** श्रृंगार के उद्दीपन विभाव नायिका की सखी, नायक के सखा और दूती, देश-काल आदि हैं। सखी की शिक्षा, परिहास, उपालम्भ आदि से रति-भावना उद्दीप्त होती है। इनके अतिरिक्त वन, उपवन, ऋतु, पुष्प, भ्रमर, कोकिल आदि देशकाल सम्बन्धी वस्तुएँ भी उद्दीपन रूप में प्रयुक्त होती हैं।

**अनुभाव :--** श्रृंगार रस के अनुभाव के रूप में नायक-नायिका की कायिक, वाचिक और मानसिक क्रियाएँ, प्रतिक्रियाएँ और चेष्टाएँ परिगणित होती हैं। जैसे — भ्रूभंग, भुजाक्षेप, पारस्परिक अवलोकन, स्वेद, रोमांच आदि। अनुभाव अनेक होते हैं। स्त्रियों के 28 अलंकार भी अनुभाव ही हैं।

**व्यभिचारी या संचारीभाव :--**

जुगुप्सा, उग्रता, मरण को छोड़कर हर्ष, मोह, चिन्ता, लज्जा, उत्सुकता आदि सभी संचारी भाव श्रृंगार रस के अन्तर्गत होते हैं। संयोग श्रृंगार में आनन्दोत्पादक संचारियों का प्राचुर्य रहता है और वियोग श्रृंगार में करुणोत्पादक संचारियों की अधिकता रहती है। श्रृंगार रस के दो भेद होते हैं (1) संयोग श्रृंगार (2) वियोग श्रृंगार।

**(2) करुण रस :-**

शोकीय रस — प्रिय-वियोग, बन्धु-विनाश, निराशा, धर्मघात, द्रव्यनाश आदि अनिष्टों से करुण रस उत्पन्न होता है। आचार्यों ने यमराज को इसका देवता माना है और इसका वर्ण कपोत के वर्ण के समान बतलाया है —

अर्थ कपोतवर्णो यमदैवतश्च'

आलम्बन — नायक-नायिका का पराभव, वियोग आदि

उद्दीपन— प्रिय-वियोग तथा उसके गुण का स्मरण। चित्र-दर्शन आदि।

अनुभाव — रोदन, अश्रुपात, प्रलाप, भूमि-पतन, मूर्छा, वैवर्ण्य, कम्प, दैवनिन्दा आदि।

संचारीभाव — निर्वेद, ग्लानि, मोह, स्मृति, चिन्ता, विषाद, उन्माद, दैन्य, व्याधि आदि

स्थायीभाव — शोक 'शोकोऽत्र स्थायीभावः।

इष्टनाशादिभिश्चेतोवैक्लव्यं शोकशब्दभाक्।'

<u>करुणरस का महत्व</u> :—

संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ कवि भवभूति ने 'करुण एव एको रसः' कहकर करुणरस को प्रधान रस कहा है। इसके विपरीत रुद्रट, अभिनवगुप्तादि आचार्यों ने शृंगार को रसराज के नाम से विभूषित किया है। निःसंदेह शृंगार व्यापक और मधुर रस है, किन्तु करुणा की व्यापकता ने शृंगार के क्षेत्र को भी आवृत कर लिया है। काव्यगत सभी रसों में करुण रस किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान रहता है। शृंगार रस के वियोग पक्ष में करुणा कवि की लेखनी का आधार पाकर साकार हो उठती है। हास्य रस में भी उपहासास्पद व्यक्ति के साथ पाठक या दर्शक की सहानुभूति जाग्रत् हो जाती है। सांसारिक द्वन्द्वों से निर्लिप्त रहने वाले शान्त रस का पूर्ण परिपाक भी कारुणिक दृश्यों के चित्रण से किया जाता है। करुणा के इस व्यापक प्रसार के कारण ही महाकवि भवभूति ने करुण रस को मुख्य रस कहा है और अन्य सभी रसों को करुणरस के विवर्त रूप में चित्रित किया है —

'एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्

भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।

आवर्तबुद्बुदतरंगमयान् विकारान्।

अम्भो यथा सलिलमेव हि तत् समग्रम्॥'

करुण रस के संचारीभाव भी अन्य रसों के संचारी भावों से अधिक व्यापक हैं।

रसों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के द्वारा भी करुण रस सर्वाधिक व्यापक रस सिद्ध होता है। इसमें भाव-तादात्म्य की शक्ति अन्य रसों की अपेक्षा अधिक होती है। काव्य की सफलता की पूर्ण पराकाष्ठा भाव-तादात्म्य पर आधारित है। भाव-तादात्म्य की पराकाष्ठा ही साधारणीकरण की स्थिति है। साधारणीकरण रति भावना से उतना तीव्र रस संचारी नहीं करता, क्योंकि उसमें अहं भावना का पूर्ण लोप नहीं हो पाता। करुण रस के संचार से पाठक गण एक दूसरे में पूर्णतः लीन हो जाते हैं और व्यक्ति-भेद की सीमा नहीं रह जाती। पाश्चात्य विद्वान् 'कूपर' ने भी कारुणिक दृश्यों में ही पूर्ण भाव-तादात्म्य सम्भव माना है। प्रत्येक मनुष्य की अपनी कुछ विशेष प्रवृत्तियाँ और रुचियाँ होती हैं। कोमल और भावुक हृदय शृंगार प्रधान काव्य की ओर आकृष्ट होते हैं। वीरोचित उत्साह और स्फूर्ति से युक्त व्यक्ति वीर रस प्रधान काव्य में आनन्दानुभव करते हैं। किन्तु करुण रस ऐसा विश्वव्यापी रस है, जिसमें किसी भी सहृदय को आकृष्ट कर लेने की अपूर्व क्षमता होती है। मुनि और महात्माओं के विरक्त हृदय भी करुणा के प्रभाव से वंचित नहीं रह सके।

## (3) अद्भुत रस

शास्त्रीय रूप :— वस्तु वैचित्र्य को देखकर आश्चर्य के संचार से अद्भुत रस का उदय होता है। इस रस के देवता गंधर्व हैं और इसका वर्ण पीत है।

'विस्मयः स्थायी भाव होर्व पीतवर्णो गन्धर्वदैवतोऽद्भुतरसो भवति।'

आलम्बन — अलौकिक विचित्र दृश्य या वस्तु आदि।

उद्दीपन — इन्द्रजाल आलम्बन के विस्मयकारी वर्णन या रूप आदि।

अनुभाव — नेत्र-विस्फारण, स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, गद्गद होना, सम्भ्रम, उत्फुल्लता आदि।

संचारीभाव — प्रीति, गर्व, आवेग, जड़ता, दैन्य, शंका, हर्ष, चपलता, औत्सुक्य आदि

स्थायीभाव — विस्मय, 'विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृत।' (सा०द० 3/180)

शृंगार, करुण की भांति कुछ आचार्यों ने अद्भुत रस को भी रसराज कहा है। आचार्य

धर्मदत्त ने चमत्कार को सब रसों का आधार मानकर अद्भुत को ही प्रधानरस कहा है—

'रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते।

तच्चमत्कार सारत्वे सर्वत्राप्यद्भुतोरसः॥

अर्थात् चमत्कार रस का सार है, सर्वत्र चमत्कार ही दिखाई पड़ता है। अद्भुत चमत्कार का सार है। अतः सर्वत्र अद्भुत रस ही है।

नारायण पण्डित ने भी चमत्कार को रस का सार कहा है। चमत्कार में विलक्षणता होने से आकर्षण और जिज्ञासा उत्पन्न होती है। इसी से अन्य रसों का संचार होता है।

## (4) हास्य रस

हास्य रस — रूप, आकार, वाणी, वेश और कार्य आदि के विकृत हो जाने से हास्य की उत्पत्ति होती है।

'वागादिवैकृतैश्चेतो विकासो हास इष्यते।' —(साहित्यदर्पण)

हास्य की सीमा वहीं तक रहती है, जहाँ तक उस विकृति से कोई अनिष्ट न हो। अनिष्ट होने पर करुण रस हो जाएगा। हास्य दो प्रकार से उत्पन्न होता है — एक तो हास्य के विषय को स्वयं देखकर, यह आत्मस्थ कहलाता है, दूसरा वह जो दूसरे को हँसता देखकर उत्पन्न होता है, वह परस्थ कहलाता है। 'रस गंगाधर' में आत्मस्थ और परस्थ हास्य का उल्लेख है —

आत्मस्थो द्रष्टुरुत्पन्नो विभावेक्षणमात्रतः।
हसन्तमपरं दृष्ट्वा विभावश्चोपजायते।
योऽसौ हास्यरसस्तज्ज्ञैः परस्थः परिकीर्तितः॥'

हास्य रस के देवता प्रमथ (शिव के गण) और रंग श्वेत माना गया है। (हास्य रसस्य श्वेतोवर्णः प्रमथो देवता)। भरत मुनि ने हास्य की उत्पत्ति शृंगार से मानी है।

'शृंगाराद्धि भवेद्धास्यः।'

आलम्बन — विकृत आकार, व्यंग्य, कुचेष्टा के कार्य, निर्लज्जता आदि।

उद्दीपन — हास्यजनक वस्तु या व्यक्ति की चेष्टाएँ।

अनुभाव — व्यंग्य वाक्य कहना, ओष्ठ नासिका और कपोल का स्फुरित होना, नेत्र बन्द होना, मुख पर प्रसन्नता जनक दीप्ति आदि।

संचारी — अवहित्था, अश्रु, रोमांच, कम्प, हर्ष, खेद, चंचलता, आलस्य, निद्रा आदि।

स्थायीभाव — हास।

<u>हास्य के भेद</u> — हास छह प्रकार का होता है — स्मित, हसित, विहसित, अवहसित, अपहसित, अतिहसित।

साहित्यदर्पण में इनका उल्लेख इस प्रकार हुआ है —

> ज्येष्ठानाम् स्मितहसिते, मध्यानां विहसितावहसिते च।
>
> नीचानामपहसितं तथातिहसितं तदेष षड्भेदः॥'

## (5) रौद्र रस

<u>शास्त्रीय रूप</u> :—

शत्रु की अपमान जनित चेष्टाओं से तथा गुरु निन्दा, देशधर्म का अपकार और अपमान होने से रौद्र रस का उदय होता है। इस रस का देवता रुद्र और वर्ण रक्त के समान है। 'रक्तवर्णो रुद्राधिदैवतो रौद्रो रसो भवति।'

आलम्बन — शत्रु या अनुचित बात कहने वाला व्यक्ति।

उद्दीपन — विरोधी दल द्वारा किये गये अनुचित कार्य या कठोर वचन आदि।

अनुभाव — मुख और नेत्र का लाल होना, दाँत पीसना, ओठ चबाना, गर्जन, शस्त्रप्रहार करना, आत्म प्रशंसा, वेग, भर्त्सना, कठोरता से देखना, कम्प, रोमांच तथा प्रस्वेद आदि।

संचारी — रूक्षता, उग्रता, अमर्ष, मद, स्मृति, उद्वेग, असूया आदि।

स्थायीभाव — क्रोध 'प्रतिकूलेषु तैक्ष्ण्यस्यावबोधः क्रोध इष्यते।' (सा०द०3/177)

रौद्र और वीर रसोंमें आलम्बन विभाव एक से ही होते है, किन्तु दोनों के स्थायी भावों में अन्तर है। रौद्र का स्थायीभाव क्रोध और वीर का उत्साह है।

## (6)वीर रस

<u>शास्त्रीय रूप</u> युद्ध, दया और दान आदि कार्यों के अत्यधिक उत्साह के साथ किये जाने पर वीर रस की निष्पत्ति होती है। इसके देवता इन्द्र और इसका वर्ण स्वर्ण के समान माना गया है —

महेन्द्र दैवतो हेमवर्णो वीररसो भवति।(चन्द्रालोक)

आलम्बन विभाव — नायक-शत्रु ,याचक, दीन, तीर्थस्थान आदि।

उद्दीपन विभाव — शत्रु का प्रभाव, शक्ति, अत्याचार, ~~अन्य~~ याचक या दीन की दशा तथा उनके दुःखारम्भी मयी प्रार्थना आदि।

अनुभाव — स्थैर्य, रोमांच, सत्कार आदि।

संचारी — गर्व, धृति, तर्क, स्मृति, हर्ष, दया, असूया, आवेग आदि।

स्थायीभाव — उत्साह।

'कार्यारम्भेषु संरम्भः स्थेयानुत्साह उच्यते।' (सा०द०3/178)

अर्थात् कार्य के आरम्भ से अन्त तक विद्यमान अत्यधिक संलग्नता को उत्साह कहते हैं। शास्त्रीय दृष्टि से उत्साह का प्रदर्शन केवल युद्ध मेंही नहीं बल्कि दान, दया, धर्म आदि कार्यों में भी होता है। इन सभी कार्यों में वीर रस का संचार भी होता है। इस दृष्टि से वीर रस के निम्नलिखित भेद किये गये है —

(1)युद्धवीर

(2)दानवीर

(3)धर्मवीर

(4)दयावीर

अनुभाव —आँखें बन्द करना, नाक सिकोड़ना, थूकना, आदि।

संचारी — निर्वेद, ग्लानि, आवेग, जड़ता, व्याधि, अपस्मार, वैवर्ण्य, चिन्ता, मोह आदि।

स्थायीभाव — घृणा या जुगुप्सा। साहित्य दर्पण में जुगुप्सा का लक्षण इस प्रकार बतलाया गया है —"दोषेक्षणादिभिर्गर्हा जुगुप्सा विषयोद्भवा।" (3/179)

बीभत्स का वर्णन अधिकतर अन्य रसों के सहायक के रूप में किया जाता है।

## (9) शान्त रस

साहित्य शास्त्र में शान्त रस की मान्यता सातवीं शताब्दी में हुई। इससे पूर्व के ग्रंथों में केवल आठ ही रसों का उल्लेख है और शान्त को संचारी भाव कहा गया है। भरत मुनि ने यद्यपि सब रसों का अवसान शान्त में होना कहा है; पर शान्त रस को नाटक में स्थान नहीं दिया है। पंडितराज जगन्नाथ का मत दृष्टव्य है —

शान्तस्य शमसाध्यत्वान्नटे च तदसंभवात्।

अष्टावेव रसा नाट्ये शान्तस्तत्र न युज्यते॥ (रसगंगाधर, पृ० 29)

अर्थात् नट अपनी चंचलता के कारण शान्त के स्थायी भाव शम की मुद्रा धारण नहीं कर सकता। इसलिए नाटक में आठ ही रस होते हैं। नाटक में शान्त रस की योजना नहीं हो सकती। किन्तु 'संगीत रत्नाकर' में कहा गया है कि 'कविन्नरसं स्वदते नटः' कहकर नट का रस से निर्लिप्त रहना बताया गया है। वह जिस प्रकार रौद्र, करुण आदि का अभिनय कर सकता है, उसी प्रकार शान्त का भी कर सकता है।

दशरूपक और भावप्रकाश में कहा गया है कि शान्त रस काव्य का विषय हो सकता है, नाटक का नहीं; क्योंकि नट के साथ साथ सामाजिक भी शान्त रस का आस्वाद नहीं कर सकते —

सामाजिकानां मनसि रसः शान्तो न जायते (भावप्रकाश पृ० 47)

इसके विपरीत कुछ आचार्यों का मत है कि नाटक में भी शान्त रस वर्तमान रहता है। ध्वन्यालोक कार ने नागानंद नाटक में शृंगार, शान्त दोनों रसों की स्थिति मानी है।

उन्होंने नाट्यशास्त्र के निम्नलिखित शब्दों को उद्धृत किया है —

'त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्। क्वचिद्धर्मः क्वचित्क्रीड़ा
क्वचिदर्थः क्वचिच्छमः।।

अर्थात् लोक के भावों का अनुकीर्तन नाटक में रहता है, उसमें कभी धर्म, कभी क्रीड़ा, कभी अर्थ और कभी शम का निदर्शन होता है।

इस प्रकार शम की स्थिति भी नाटक में रहती है। यह बात दूसरी है कि सब लोग उस रस का आस्वादन न करते हों।

भाव प्रकाश में शान्त रस के आदि प्रवर्तक आचार्य वासुकि माने गए हैं। अभिनव गुप्त ने शान्त रस को सर्वश्रेष्ठ रस कहा है, क्योंकि इसका लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति होता है और मोक्ष जीवन-साधना का अन्तिम और चरम लक्ष्य कहा गया है, जो ब्रह्मानन्द के समकक्ष है। अतः उन्होंने काव्य में शान्त रस का समावेश भी अपेक्षित माना है- वे अभिनव भारती में लिखते हैं —

सर्वं रसानां शान्तप्राय एवास्वादः' (का०। पृ० 340)

शान्त रस का स्थायीभाव शम है —'शमो निरीहावस्थायां स्वात्मविश्रामजं सुखम्"।
विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में शान्त रस का लक्षण बतलाते हुए कहा है — कि भावों के समत्व को, अर्थात् जहाँ दुःख, सुख, चिन्ता, राग, द्वेष कुछ भी नहीं है; उसे मुनियों ने शान्त रस कहा है —

न यत्र दुःखं न सुखं न चिन्ता न द्वेष रागो न च काचिदिच्छा।
रसः स शान्तः कथितो मुनीन्द्रैः सर्वेषु भावेषु शम प्रधानः।"

अभिनवगुप्त और धनंजय ने भी शम को शान्त का स्थायी भाव कहा है। मम्मट और संगीत रत्नाकर के रचयिता ने निर्वेद को और कुछ अन्य आचार्यों ने जुगुप्सा और उत्साह को उसका स्थायीभाव कहा है। ध्वन्यालोककार ने तृष्णाक्षय और सुख को इसका स्थायीभाव कहा है। इस सुख का आस्वादन सब नहीं कर सकते, उनके मतानुसार केवल इसी आधार पर शान्त को रस न कहना भूल करना है।

विभाव :— वैराग्य और संसार भीरुता। एकाग्र-चिन्ता अनुभाव और निर्वेद, मति, धृति, स्मृति उसके व्यभिचारी भाव हैं।

## (10) वात्सल्य रस

प्राचीन आचार्यों ने वात्सल्य रस का उल्लेख नहीं किया है। आचार्य विश्वनाथ ने वात्सल्य रस की प्रतिष्ठा की है। सूर, तुलसी आदि ने राम कृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन कर इसका सुन्दर परिपाक किया है।

स्थायीभाव — वात्सल्यपूर्ण स्नेह

आलम्बन — पुत्र, पुत्री आदि।

उद्दीपन — बालक की चेष्टायें, बालक्रीड़ायें आदि।

संचारी — हर्ष, गर्व, आवेग आदि

आश्रय — माता-पिता तथा अन्य गुरुजन।

उदाहरण — कबहुँ ससि मांगत आरि करैं, कबहुँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
× × × ×
अवधेश के बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर में विहरैं।

## आलोच्य महाकाव्यों में रस-निष्पत्ति

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत आलोच्य महाकाव्यों में विभिन्न रसों की स्थिति पर विचार किया जायेगा।

## 'जननायक'

'जननायक' महाकाव्य में सभी रसों की निष्पत्ति हुई है। इसके नायक गाँधी जी अहिंसावादी हैं। अतः शान्त रस को प्रमुखता प्रदान की गयी है। गाँधी जी हिंसावादी नीतियों का विरोध अहिंसा द्वारा करते हैं।

शान्तरस :— इस महाकाव्य में शान्त रस के वर्णन अनेक स्थलों पर होते हैं। एक तरह से यह काव्य ही शान्त रस से आपूरित है। अन्य रस शान्त इसके सहायक के रूप में आये हैं —

अरे यही है अन्त मनुज का उड़ता उड़ता धुआँ बन गया।

पाँच तत्व का पुतला जलकर एक राख का ढेर रह गया।

× × × ×

करता पाप सतत सबको पापी नहीं राम से डरता। (जननायकपृ0 45)

चलते रहो रामके पथ पर मुक्ति मिलेगी जय पाओगे।

करो राम के काम विश्व में स्वयं राम ही बन जाओगे।

मन में राम हृदय में दीपक पथ दिखलाते बढ़े अगाड़ी

लघु जीवन से खींचे अपने जग जीवन की भारी गाड़ी।' (वही, पृ0 46)

वीररस :— गांधी जी अफ्रीका से लौटकर यहाँ की दशा भारतीयों के समक्ष कहते हैं और उनके अधिकारोंके प्रति उनको सजग करते हैं। अंग्रेजों के अत्याचार को देखकर कुछ भारतीय नवयुवकों का खून खौल उठता है और वे एक अलग क्रान्तिकारी दल का निर्माण कर लेते हैं —

जार्ज पंचम से गांधी जी भारत के प्रतिनिधि के रूप में मिलते हैं और उनसे स्पष्ट कहते हैं —

चलें गोलियाँ या बम बरसें कदम हमारे नहीं रुकेंगे।

स्वतंत्रता का भोर न जब तक तब तक हारे नहीं झुकेंगे।' (वही, पृ0 28)

सेनानी सुभाष सिंह गर्जना करते हुए कहते हैं —

सावधान हो राज्य, संभल तू मैं भी भीष्म ब्रह्मचारी हूँ।

मैं काली का अमर उपासक एक करोड़ों को भारी हूँ।'

× × × ×

संभल लुटेरे सावधान हो, सीमा पर भिड़ने आता हूँ।' (वही, 335)

कश्मीर में पाकिस्तानियों ने कब्जा कर लिया है, जिसको शान्त करने के लिए सेना

इसी प्रकार गाँधी जी अपनी पत्नी से ब्याह हो जाने के बाद उससे मिलने के लिए दिन भर व्याकुल रहते तब कहीं अमर रात आती

प्रतिपल मधुर प्रेम से मन में रस की बाढ़ बनी रहती थी।
कब हो रात्रि मिलूँ कब अलि से मन की कली यही कहती थी।
खिली चाँदनी नींद नहीं थी सोने नहीं दिया करते थे।
दीपक भभक भभक जलता था तम में ज्योति दिया करते थे।

## अंगराज

अंगराज में भावुक स्थलों का चित्रण मर्मस्पर्शी नहीं है। कवि की अनुभूति यहाँ पंगु जान पड़ती है। प्रकृति-चित्रण में कवि को अधिक सफलता मिली है।[1] परन्तु यहाँ प्रकृति-चित्रण महाकाव्य का बाह्य लक्षण पूर्ण करने के लिए ही किया गया है। वीर रस प्रधान अंगराज में युद्ध का अवश्य ही सजीव वर्णन किया गया है —

युग्म दलों में जले दीपिका दीप अकंपक
होने लगा निशीथ युद्ध तब महाभयानक।
महारथी प्रतिरथी भिड़ गये सभी परस्पर
वाहक वाहक भिड़े तथा कुंजर प्रतिकुंजर॥[2]

यह वीर रस प्रधान महाकाव्य है। अंगराज के रचयिता ने काव्य की भूमिका में कहा है कि —"वीर-गाथाओं को हम पृथ्वी पर पूर्वजों का वीर-लोक मानते हैं। - - वीर वृत्तान्तों से लोक में वीर-धर्म की प्रतिष्ठा होती है। वीर-धर्म का पालन रण सैनिकों के लिए आवश्यक है। - - - - वास्तव में वीरता ही सजीवता है। वीर रस ही जीवन का मुख्य रस है - - - - वीर वाणी से कम से कम कापुरुष की प्रवृत्ति का नाश और

---

1- अंगराज, पृ० 18-19

2- वही, पृ० 206

क वीररस का उद्दीपन तो होता है।"[1] इक्कीसवें सर्ग में कर्ण के सेना-पतित्व में सेना के प्रयाण का वर्णन है —

'अंगवीर कर्ण का निदेश सुनते ही वहाँ
गूँज उठी सैन्य सिंहनाद से रणस्थली।
वीर रस मण्डित सुसज्जित चले समग्र,
युद्ध सिद्ध आयुधी महारथी महाबली,
गर्वित मतंग चले धावित तुरंग चले
वेगित सतंग भी सजाकर ध्वजावली।
शत्रु को पुकारती प्रयाण वैजयन्तिका भी,
आरती उतारती सी भारती चमू चली।'[2]

हास्य रस

अंगराज महाकाव्य के छठें सर्ग में धर्मराज युधिष्ठिर ने यज्ञ में कौरवों को भी आमंत्रित किया। दुर्योधन भी आया। इन्द्रप्रस्थ का सभाभवन स्फटिक मणियों से जड़ा था, जहाँ जल में थल का और थल में जल का भ्रम होता था। आकस्मिक दुर्योधन को पता नहीं था/वह उस ओर झपकता बढ़ा, जिधर जल था और तालाब में गिर गया/तभी द्रौपदी ने उपहास करते हुए व्यंग्योक्ति की —

भीमसेन से बोली प्रकट करके कुटिल प्रहास,
हुआ चर्म दृग वंचित भूप की ज्ञान दृष्टि का ह्रास।
क्या सर्वदा रहा करेगा सुपथ भ्रष्ट यह दीन,
अंध पिता का आत्मजात भी होता चक्षु विहीन।'

1- अंगराज, भूमिका

2- अंगराज, पृ0 21/2

## वर्द्धमान

**श्रृंगाररस :—**

वर्द्धमान में श्रृंगार और प्रेम का वर्णन सिद्धार्थ और त्रिशला के प्रौढ़ गार्हस्थिक स्नेह पर अवलम्बित है। श्रृंगाररस की सहज उत्पत्ति और विकास के जो उपादान हैं और नायक-नायिका के युवोचित विभ्रम विलास के चित्रण के लिए कवि को जो चित्र पट प्राप्त होना चाहिए, वह यहाँ नहीं है। इसलिए श्रृंगार का संतुलन कठिन हो गया है। पर कवि ने इसे निभाने का प्रयत्न किया है। पाँचवें सर्ग में प्रेम की गरिमा और महिमा सिद्धार्थ और त्रिशला के स्नेहसंलाप के रूप में दिखाई गई है। दार्शनिकता के बीच में जहाँ कहीं मानवीय प्राणों की भावधारा उमड़ती है, वहाँ स्थल अधिक सरस और सजीव हो जाते हैं। सिद्धार्थ कहते हैं —

> वहित्र सा जीवन मध्य रात्रि के
> पड़ा रहा चन्द्र-विहीन सिन्धु में
> मिला न दिग्सूचक यंत्र सा कभी | वर्द्धमान 160-84
> प्रिये, तुम्हारा कर मैं छुवी रहा॥

और त्रिशला की भावप्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है —

> प्रकाश से शून्य अपार व्योम में
> उड़ी कभी आश्रित एक पक्ष मैं।
> मिला नहीं नाथ द्वितीय पक्ष-सा
> कभी तुम्हारा कर मैं छुवी रही।' वर्द्धमान, पृ0 160-85

इस प्रेम का धरातल इतना ऊँचा उठाया गया है कि एक स्थान पर यह अत्यन्त आध्यात्मिक हो गया है —

---

प्रभो मुझे हैं किस भाँति चाहते?
यथैव निःश्रेयस चाहते सुधी।"
"प्रिये मुझे हो किस भाँति चाहती?"
"यथैव साध्वी पद पार्श्वनाथ के।" (वर्द्धमान, 158-76)

इस स्थान पर पहुँच कर सहसा ध्यान आता है कि यहाँ पाँचवें सर्ग में जो राजदम्पत्ति इतने ऊँचे उठकर प्रेम वार्तालाप कर रहे हैं; दूसरे सर्ग में भी तो ये ही दम्पत्ति हैं, जो भगवान के जनक और जननी बनने वाले हैं। लगता है जैसे कवि ने दूसरे सर्ग में इन्हें केवल राज दम्पत्ति के रूप में ही मानकर रानी त्रिशला के नखशिख का वर्णन किया है। यह यद्यपि मात्रा में कम है और काव्य परम्परा के अनुकूल है, किन्तु कहीं-कहीं इसलिए नहीं जँचता कि त्रिशला काव्य की नायिका न होकर भगवान की माता हैं। सम्भवतया कवि के सामने श्रृंगार चित्रण के लिए बहुत ही सीमित फलक था। इसी में ही उसे सब कुछ कहना था और परम्परा को निभाना था। कवि ने फलक की संकीर्णता के दोष को रंगों की गहराई से ढँकना चाहा है और यहीं भक्त पाठक के मन में विभ्रम और कहीं कहीं जुगुप्सा उत्पन्न हो जाती है। इसके उत्तर में यही कहा जायेगा कि काव्य में जो वर्णन परम्परा से मान्य है और श्रृंगार के प्रसंग में अशोभन नहीं है; जो छोड़ने के लिए कवि बाध्य नहीं। दूसरी बात यह है कि त्रिशला का नखशिख वर्णन राजा की प्रेयसी के रूप में किया जा रहा है। अतः उसका रागात्मक वर्णन उन्हीं के दृष्टिकोण से किया गया है। तीसरे यह कि दूसरे सर्ग का पार्थिव श्रृंगार यदि पाँचवें सर्ग में अपार्थिव और आध्यात्मिक हो गया है, तो यह कवि की कल्पना का प्रतीक है।

## वीर रस

वर्द्धमान में सिद्धार्थ की महिमा का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है। निम्नांकित पंक्तियों में उनके पराक्रम और शौर्य का अच्छा वर्णन किया गया है —

परन्तु जो सर्वथ सर्वदा उन्हें

विचारते वह यों निराश थे।

न पीठ पायी अरि-वृन्द ने कभी

न वक्ष देखा पर नारि ने तथा। (वकुशवन, पृ0 44)

'रावण'

काव्य में श्रृंगार, शांत और वीर रस की निष्पत्ति हुई है। श्रृंगार में संयोग और विप्रलंभ दोनों पक्षों का चित्रण है, लेकिन उसमें गहनता नहीं। कैकेयी के तप और आत्मसमर्पण में शान्त रस की हल्की तूलिका से स्पर्श किया गया है। इस काव्य का अंगीरस वीर है, जिसकी सफल व्यंजना युद्ध के प्रसंग और अरिमर्दन के शौर्य में दृष्टिगत होती है।

वीररस

रावण के समान पराक्रमी और योद्धा पर आधारित इस प्रबन्ध-काव्य में रावण के शौर्य, साहस और उत्साह के भव्य दृश्य अंकित हुए हैं। त्रयोदश सर्ग में राम-रावण के युद्ध के अवसर पर वीर रस से परिपूर्ण वर्णन हुआ है —

रामहि देख निकट नियराम्यो।

दसशिर कोपि सरासर तान्यो।

बरसत बान सुकत अंधियारो।

भादव जलद घटा अनुहारी।'

× × × ×

या विधि बान बुन्द झरि लाई।

रन में रुधिर नदी बह आई।

जहँ तरवार चढ़त बिकराला।

मन सिवाल दोउ युगल किनारा।"

सो गए हैं शत्रु मित्र भूमि पर साथ ही,

सबको किशोरों सा सिलाया पितामह ने। (जयभारत, युद्धकाण्ड, पृ0374)

भयानक रस :— महाभारत युद्ध के प्रसंग में भयानक रस की अभिव्यक्ति हुई है। कवि कहता है कि युद्धभूमि में चारों ओर रक्तकुण्ड ही दिखलाई पड़ रहे हैं —

भर गयी सारी रणभूमि रक्त-कुण्डों से,

रक्त के प्रवाह छूटे पानी की फुहार सी।

हुंकारें जहाँ थीं वहीं आहें थीं, कराहें थीं।

लाल लाल भूमि सब ओर विकराल थी।

× × × ×

कट कट शीश गिर राहु से उछले थे।

तड़प रहे थे प्यार मीत सब नीचे के,

सो गये थे शत्रु-मित्र भूमि पर साथ ही।' (जयभारत, पृ0 374)

दुःशासन को युद्धभूमि में पाकर भीम उसको पछाड़कर उसकी छाती चीर डालते हैं

पटक पछाड़ उसे छाती पर चढ़के

गरज उठे वे कहाँ दुर्योधन कहाँ है?

शक्ति हो तो रोकें रक्त दुष्ट दुःशासन का

भीम पीने जा रहा है सबके समक्ष ही।

× × × ×

वक्ष फोड़ निज के नखों से ही नृसिंह ने,

चीर डाला वैरि वक्ष और आँतें और क्या?

देख वह घोर दृश्य भाग चले भट भी। (जयभारत, पृ0 394)

अश्वत्थामा रात को सभी के सोने पर पाण्डवों के शिविर में जाता है और सोते हुए सभी लोगों की हत्या कर डालता है। उस समय का दृश्य अत्यन्त भयानक हो जाता है—

पांचालों पर ही प्रथम प्रलय सा उसने क्रोध उतारा,
सोया था धृष्टद्युम्न उसे धर गला घोंट कर मारा।

मैं हूँ दुर्योधन — कन्धु ब्रह्मराक्षस कह वचन गिराये'

कृष्णा के उठते पाँच पुत्र भी उसने काट गिराये।' (जयभारत, 415)

करुणरस :— द्रौपदी कीचक से अपमानित होकर विराट की सभा में विलाप कर रही है —

तुम से प्रभु की कृपा पात्र होकर भी दासी,

मैं अनाथिनी यहाँ पड़ी जाती हूँ नासी।

जब अज्ञात रिपु बात याद मुझको यह आती,

छाती फटती हाय, दुःख दूना मैं पाती। (वही, 269)

द्रौपदी भीम को देखकर अपने अपमान को याद कर और भी व्याकुल हो जाती है —

हो गई अधीरा और भी उन्हें देखकर द्रौपदी,

हिमराशि पिघल रवि तेज से बहा ले चले ज्यों नदी। (वही, 271)

कहती कहती यों द्रौपदी रह न सकी आगे खड़ी।

मूर्छित होकर वह भीम के चरण शरण में गिर पड़ी। (वही, 273)

अभिमन्यु की मृत्यु के बाद सभी शोक संतप्त हो जाते हैं —

द्रौपदी सुभद्रा और उत्तरा की यातना।

तीन ओर चौथी ओर अपना विषाद था,

शान्ति किसी ओर भी दिखाई न दी उनको। (वही, पृ0 383)

पाण्डव शिविर में लौट कर सभी की हत्या का समाचार सुनकर अत्यन्त दुखी होते हैं —

उस ओर शिविर में लौट सबेरे पाण्डव ज्यों ही आए,

निज आहत से वे भी हम देखा वह काण्ड न कुछ कह पाये।

गिरकर धरती पर किसी भाँति उठ बैठी थी पांचाली।

हरि निकट गये तो खड़ी हो गई जिनके वारों वाली।

गिर पड़ी परन्तु चरणों पर छोड़ दृगों की धारा।

अवरुद्ध कण्ठ का व्याकुल सती ने वाक्य कठोर उचारा। (वही, पृ0 416)

महाभारत के युद्ध के बाद संजय जाकर धृतराष्ट्र से सर्वनाश की कथा सुनाते हुए कहते हैं — संजय ने जब सर्वनाश की कथा सुनाई,

दुःख वश धृतराष्ट्र नृप को मूर्छा आई।

× × × ×

यह सर्वक्षय अन्त समय में मैंने भोगा,

क्या मुझ सा हतभाग्य विश्व में कोई होगा। जयभारत — पृ0 419

करतीं हाहाकार गईं कुरकुल दारायें,

क्षोभित गलित प्रलयान्धकार की सी तारायें।' जयभारत, 422

करुणानल की हाय पूर्ण आहुति सी होती,

गान्धारी के पैर पकड़ पांचाली बोली —

तुल्यदशा में योग्य किंकरी आज तुम्हारी,

हो कुछ भी आदेश, देवि मैं उस पर वारी। (जयभारत पृ0 423)

आर्तध्वनियाँ सभी ओर बिखराकर छाईं

उठीं कहाँ से प्रलय घटायें जान न पाईं।

निज के भी पर दुख देखकर व्यर्थ बताया,

युग पक्षों को एक दूसरे ने समझाया। (जयभारत पृ0 423)

कुन्ती से जब मिले युधिष्ठिर रोते रोते

यह कैसा कर्तव्य अम्ब, बोले कुछ खोते।' जयभारत पृ0 432

राधा कर्ण के शव से लिपट कर रो रही है —

हतभागिनी राधा विपद बाधा व्यथा सह सह रही,

पुत्र हा! लिपटकर कर्ण शव से बिलखकर क्या कह रही—

हा वत्स मेरे दूध का यह मूल्य मुझको दे गया,

मेरे बने थे जो उन्हें भी संग अपने ले गया। (जयभारत पृ0 425)

वत्स कर्ण को भी अंजलि दो निज अग्रज जन के नाते।

गिर ही पड़ते आर्त्त युधिष्ठिर यदि न सँभाले जाते

हाय अम्ब पहले न कहा क्यों तो यह सब क्यों होता?

अब जाना क्यों जो देख मैं था स्थिरता खोता।(जयभारत, पृ0 428)

रौद्र रस — द्रोण का युद्ध देखकर भीम अत्यन्त क्रोधित हो उठते हैं और बिना किसी संकोच के आगे बढ़ते हैं और द्रोण को रथ सहित एक तरफ फेंक कर आगे बढ़ जाते हैं —

व्यूह में घुसे थे किन्तु भीम न थे आये मैं,

जल उठे देखते ही उनको सम्मुख वे-

विप्र उग्र जो हो तुम गुरु हो अवध्य हो,

किन्तु वध योग्य वह जो भी आततायी है।

फेंक दे उखाड़ ऊँचा झाड़ झंझावात ज्यों,

रथ के समेत उन्हें एक ओर फेंक के

सामने से ही वे घुसे शत्रुदल दलते।' (जयभारत, 383)

अभिमन्यु की मृत्यु के बाद सभी अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं तथा द्रोण के साथ युद्ध करते हैं। धृष्टद्युम्न उसका प्रतिशोध ले लेता है—

टूट पड़ा व्यापकता धृष्टद्युम्न सा क्या

लेने को कठोर प्रतिशोध पिता पुत्र का।

पक्व केश उनके पकड़ बायें हाथ से

दायें से असि ने सिर काट डाला उनका।(जयभारत, 386)

मानो भीम कौरव ही उनके बहाने से

कौरवों की सेना ध्वंस करने को आ गये।

काल का बवंडर सा वह जिस ओर को

उड़ते विपक्षी तृण तुल्य थे तुरन्त ही।(जयभारत, पृ0 390)

## 'पार्वती'

वीररस :— पार्वती का अंगीरस वीर है। युद्ध वर्णन में वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है। दानवराज तारक के अत्याचारों से विचलित हो कार्तिकेय सगर्व सिंहगर्जन कर उसे ललकारता है —

> व्यर्थ प्रलाप बंद कर साधो अब क्रूरतम दानवराज,
>
> पूर्ण तुम्हारे सब पापों का प्रायश्चित हो रहा आज।'[1]

इसी प्रकार कुमार कार्तिकेय के नेतृत्व में देव-सेना तारकासुर के दलन को उद्यत हुई, तो कवि ने वीर रस की सरिता ही प्रवाहित कर दी है —

> उमड़ पड़ा कोमल हृदयों में,
>
> किस पौरुष का नव उत्साह।
>
> फूट पड़ा निश्चल मानस में,
>
> किस प्रपात का पूर्ण प्रवाह।
>
> × × ×
>
> रुक न सका उत्सुक वीरों के
>
> अन्तर का आकुल आवेश
>
> मिले विजय का वर प्रयाण का
>
> आज अभीप्सित प्रत्यादेश।[2]

इसके अतिरिक्त करुण और श्रृंगार के दृश्य भी सुन्दर हैं। ऋषियों के हास परिहास भी स्वाभाविक हैं।[3]

तारकासुर देव सेना के कोलाहल से चमककर क्षुब्ध हो जाता है। उसके उत्साह की व्यंजना करने वाली निम्नांकित पंक्तियों में वीररस की अभिव्यक्ति

---

1- पार्वती, प्रथमसंस्करण, पृ0 365     2- पार्वती, सर्ग 17, पृ0 354

3- पार्वती, पृ0 13।

हुई है — 'रवीन्द्र कृपाण हाथ में बोला, वीर क्रोध से होकर लाल —

किसको आज निमंत्रित करके लाया शोणितपुर में काल?

किया मेघगर्जन से अपने पुत्रों को तत्काल आह्वान।

और संग ले उन्हें युद्ध के हेतु किया अविलम्ब प्रयाण। (पार्वती, पृ0 356)

लगे गरजने वीर क्रोध से कर निज शस्त्रों का संधान,

होने लगे उभय पक्षों से क्रुद्ध बाण के भीषण वार।

गिरने लगे भूमि पर आहत हो होकर असुरों के झुंड,

बता रहे थे सकल अनगिन उनके नर्तित रंजित रुण्ड। (पार्वती, 356)

जब तारकासुर देवताओं पर अनेक प्रकार से व्यंग्य करता है तो तब इन्द्र अत्यन्त क्रुद्ध हो उठते हैं — न्यायालय यह नहीं वाग्युद्ध यह अंतिम देवासुर युद्ध,

तर्क-व्यंग्य से नहीं न्याय का निर्णय होगा दानवराज,

शस्त्र और बल एक मात्र है शेष विजय का साधन आज। (वही, 362)

इन्द्र कहते हैं - आज उन्हीं परिचित अस्त्रों के आघातों का देखो स्वाद,

अब सम्हालो शीघ्र वज्र का पुंज, व्यर्थ अनर्गल वाद।

और रोष से पूर्ण इन्द्र ने किया असुर पर वज्र प्रहार,

दानव महावीर ने उनका किया शक्ति बल से प्रतिकार।

(पार्वती, सर्ग 17 तारकवध, पृ0 363)

असुर द्वारा व्यंग्य करने पर कुमार उसका वीरोचित उत्तर देते हैं —

होता है गंभीर शक्ति औ चेतनता से पूर्ण प्रबुद्ध,

शक्ति विशुद्ध योगी कुमार ही कर सकते असुरों से युद्ध,

व्यर्थ प्रलाप बन्द कर शठो अतिक्रूरतम दानवराज,

पूर्ण तुम्हारे सब पापों का प्रायश्चित हो रहा आज।।' (वही, 365)

संयोग श्रृंगार रस — निम्नांकित पंक्तियों में श्रृंगार रस की निष्पत्ति हुई है —

कुसुमित कुंजों को गुंजित कर पुंजित भ्रमर हठीले,
घूम रहे हैं मद से उन्मद तरुओं से गर्वीले।
सरस काम सन्देश हृदय में नव पुष्पों के धरते,
जीवन के सौन्दर्य सर्ग के गान पवन में भरते। (पार्वती, मदनदहन, 118)
चपल तरंगों में सरितायें हृदय-उमंग भरतीं,
शैलों के उन्नत वक्षों का स्नेहालिंगन करतीं,
तन्वंगी लतिकायें चंचल वधुओं तुल्य नवेली,
लिपट तरुण तरुओं से करतीं यौवन की अठखेली। (वही, पृ0 120)

वियोग श्रृंगाररस — शंकर जी ने अपने तृतीय नेत्र से कामदेव को भस्म कर दिया। यह देखकर रति मूर्छित होकर गिर जाती है —

मृदुल लता सी वज्रपात से भीषण सहसा मारी,
तीव्र ज्योति से प्रहत दृष्टि सी रति मूर्छित सुकुमारी,
जान सकी न वियोग काम का संज्ञाहीन बिचारी,
विषम काल में कामिनियों की मूर्छा भी हितकारी। (वही, 124)
करके संज्ञा प्राप्त विरहिणी रति कुररी-सी रोई,
भस्म शेष लख देह काम की उसकी आशा खोई।
भर आँखों में अश्रु अकेली नागिन-सी बिलखाती,
हा प्रिय पुकारित बेरा पीटती कर से विह्वल छाती। (वही, पृ0 125)

वात्सल्य रस — कुमार घुटनों के बल चलने लगा है। कुटी में चारों तरफ स्वच्छन्द होकर घूमता है। उसे देखकर मात-पिता प्रसन्न होते हैं —

लगा घुटनों से विचरने कुटी में स्वच्छन्द,
मोद भर मात-पिता के हृदय में प्रिय स्पन्द,
पास आते पुत्र की सुन हर्षमय किलकार,
उमड़ता उनके हृदय में प्रेम पारावार। (वही, सर्ग 14, पृ0 297)

चार कर पद से भवन में मुक्त रुचि संचार

उपक्रम करता ग्रहण का प्रति पदार्थ निहार।

हाथ में ले देख उसको पलट बारम्बार,

छोड़ देता भूमि पर कर हर्ष से किलकार,

रुचिपूर्वक विश्व परिचय, ज्ञान-शक्ति-विकास,

कर रहा था स्व सृजन का कीर्तिमय इतिहास। (वही, पृ0299)

गोद में लेकर कभी यदि शैल करते प्यार,

खेलता था पन्नगों से सुन अभय फुंकार,

पकड़ने को भाल का विधु मचलता लघु हाथ,

स्नेह-निर्भर शम्भु मुख से चूमते निज माथ।' (पार्वती, सर्ग14पृ0299)

पूछता था सहज माँ से अंक में धर माथ,

स्नेह से कहती उमा थी फेर सिर पर हाथ,

साँझ ही होगी बड़े फिर बेला में क्या देर,

ब्रह्मचारी बन पढ़ेगा लाल अब तू वेद।" (वही, पृ0 301)

जब स्कन्द परशुराम के साथ दीक्षा के लिए जाने लगे, तो उमा के पास विदा माँगने गये — हृदय भर आया उमा का उमड़ आया प्यार,

वक्ष से सुत को लगा मुख चूम बारम्बार,

माँ अपने बेटे को क्या ~~क्या~~ देखना चाहती है —

वीर सेनानी बनेगा लौट मेरे लाल,

कुमार माँ से विदा के उपरान्त पिता के पास विदा लेने के लिए जाते हैं। शिव भी करुणार्द्र हो जाते हैं — ले जननि से विदा करुणापूर्ण द्रवित कुमार,

पीठ घूम आया पिता के पास अन्तिम बार,

और चरणों में विनय से किया मौन प्रणाम,
हो उठे करुणार्द्र शिव की सहज करुणाधाम।' (पार्वती, सर्ग। 4, कुमारजन्म, 305)
और बाहुओं में भर उसको अंक लगाया,
अन्तर का वात्सल्य उमड़ आंखों में आया,
बार बार भर अंक स्नेह से चूमा मुख को,
कौन जानता मात के अन्तर के सुख को। (वही, देवोद्बोधन सर्ग।6, 329)

## 'मीरा'

<u>वात्सल्यरस</u> :— मीरा की माँ मीरा को ढूंढती हुई आती हैं, तो देखती हैं कि मीरा जमीन में सो रही है। यह देखकर माँ का मातृ-हृदय उमड़ पड़ता है —

कर फैलाये आतुर मा ने,
लेने गोदी में अनजाने
ललचाईं मातृ अंक पाने
नैसर्गिक
बोली माँ उसका कर चुम्बन,
तू आज बता क्यों यों उन्मन?
भर लिया सभी मिट्टी से तन
क्यों बेटी? (मीरा, पृ0 3)

<u>करुणरस</u> :— माँ के देहावसान हो जाने पर मीरा दुखी होती है —

अरुणोदय में ही लीन हुई वह मेरी जननी का ज्वार?
अब किसकी गोदी में सोऊं किससे अब पाऊं वह दुलार।
× × × × ×
जिसकी मृदु वाणी से अमृत भर भरकर देता दिव्य स्नात,
खोया जीवन ने मातृ प्यार। (वही, पृ0 118)

<u>रौद्ररस</u> :- मीरा द्वारा पति के समझाने पर पति उनका तिरस्कार करते हैं। तब मीरा का नारी-हृदय अपमानित हो उठता है —

मैं क्रोधित होकर नाचूँ तो
जगती में हाहाकार मचे
मैं क्रान्ति महा की ज्वाला हूँ
जग उठने पर कुछ नहीं बचे। (वही, पृ0 107)

मदिरा के मादक प्याले में
दानवता नर्तन करती है
जीवन के शाश्वत सुन्दर में
नंगा परिवर्तन भरती है। (मीरा, पृ0 102

ऐसे तन की ऐसे मन की
कितनी कुत्सित अभिलाषाएँ?
ऐसे वर भी होते होंगे
कैसी गर्हिततम आशाएँ। (मीरा, पृ0 101)

<u>करुणरस</u> :- काव्य में जहाँ कहीं मनः तत्व को रूपायित करने का प्रयास किया गया है, वहाँ कवि को सफलता मिली है और कवित्व भी भव्यतर हो गया है। मीरा की माँ की मृत्यु हो गयी है। मीरा अभी बच्ची ही है। वह माँ माँ कहती हुई सो गयी है और जगने पर पुनः वही दुहराती है —

उठी तो भी वह ही अनुरोध
यहाँ माँ कब आवेगी लौट?
सुता के व्यथा-प्रपूरित शब्द
पिता का मन रहे थे घोट (मीरा, पृ0 41)

राणा पति बीमार होके रुग्णावस्था में चौंक उठते हैं —

कितने ही गायन जो उर छू जाते थे

रुग्णावस्था में भी कुमार गाते थे। (मीरा, पृ० 134)

मकरों का लोलुप झुण्ड रोष मुख खोले,

[illegible] में प्राण बचाने जब जब अस्थिर होते

चीखते अधिक करुणा क्रंदन सा करते

मीरा प्रबोधती ध्यान [illegible] करते। (वही, पृ० 132)

दुख में मनुष्य-हृदय अधिक संवेदनशील हो जाता है —

दुख में संवेदनशील हृदय हो जाता

पीड़ित नर दुख के गायन से सुख पाता

पीड़ित मन पर पड़ता प्रभाव पीड़ा का

सम्बन्ध नहीं कुछ रह जाता क्रीड़ा का। (वही, पृ० 135)

राणा सांगा की मृत्यु हो जाती है। चारों ओर करुण क्रन्दन होने लगता है। मीरा भी व्याकुल हो जाती है —

टूटा सांसों का तार बीन जो अटका

मीरा बिलखाई सिर धरती पर पटका। (वही, पृ० 145)

इसके बाद तो मीरा का जीवन नीरस हो जाता है। वह विरह के गीत गा गाकर अपना दुख भूलने का प्रयत्न करती है —

बज जाता करतल-वीणा

मैं विरह राग जब गाती

पंकज-कलिका की भांति

अश्रुधारा पर बह जाती। (वही पृ० 146)

और भी— कोमल शिशिर का [illegible]

[illegible] [illegible] कह उठता

सब वारुण नील-व्यथा से

उसका उर भीगा उठता। (मीरा, पृ० 146)

कवि ने मीरा के विरह का बहुत ही सजीव वर्णन किया है। मीरा के साथ प्रकृति भी व्याकुल हो उठती है और यह तो स्वाभाविक है। दुखी मनुष्य को प्रकृति भी दुखी ही दिखाई देती है।

## एकलव्य

वियोग वात्सल्य :— विरह की अवस्था में प्रिय व्यक्ति की छोटी-छोटी चीजें देखकर उसकी याद ताजा हो जाती है। इसी प्रकार इस महाकाव्य में एकलव्य की माँ, जब एकलव्य वन में चला जाता है तो व्याकुल हो जाती हैं और उसके छोटे से धनुष को देखकर उनकी व्याकुलता और भी बढ़ जाती है —

यह छोटा सा धनुष तुम्हारा,

इसने तीखा विरह बाण क्यों

मेरे मन में मारा?

आज बह रही है आँखों में

जब आँसू की धारा।'

× × × ×

अरे, सुना क्या, मुझे लाल ने

हँसकर अभी पुकारा। (एकलव्य, पृ० 152)

इसी प्रकार जब प्रिय व्यक्ति अपने से दूर होता है, तो उसके विषय में अनेक आशंकाएँ होती हैं — मैंने देखा स्वप्न सजीला।

एक भयानक वन है जिसके

बीच उठा है टीला।

तू बैठा है उसके ऊपर

पहने वल्कल पीला।'

ओस धुली तो मैंने पाया,

अपना अंचल भीगा।' एकलव्य, पृ0 154

<u>करुणरस</u> :— एकलव्य ने गुरु दक्षिणा के रूप में अपने हाथ का अंगूठा काटकर गुरु को अर्पित कर दिया। इस प्रसंग में करुण रस की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है —

दारुण का रूप गुरु द्रोण स्तब्ध थे,

पार्थ भूमि में गड़े-से लज्जित मलिन थे,
और एकलव्य झुका हुआ पद-तल में
रक्त धारा में सना अंगुष्ठ रखा सामने,

भूमि लाल थी या सूर्य पश्चिम में रक्तिम,

और बादलों ने एकलव्य-रक्त देख के

अपना शरीर रक्त-रंग से सजा लिया,

सारा नभ एकलव्य दक्षिणा का रूप था,

पीड़ा भूमि से उठा था अंकुर प्रमोद का

एकलव्य बोला कुछ वाष्प भरे कण्ठ से —

देव, इस दक्षिणा का मूल्य इतना ही है,

मेरी साधना को आप देख लेंगे पार्थ में। (वही, पृ0 299)

<u>रौद्ररस</u> :— निम्नांकित पंक्तियों में द्रोणाचार्य के उग्र रूप का वर्णन किया गया है। यहाँ रौद्ररस की निष्पत्ति हुई है —

5 दाँत वज्र जैसे सन्धि हीन बने मुख में

ओठ भूमि कंप से फटे हुए शिखर थे,

भौंह जैसी सर्पिणी सी बैठी निज बांबी में

स्वेद जैसे आग की नदी बही हो सिर से।' वही, पृ0 50

घोर तपस्या निरत शान्ते प्रिय मेरे

दो उनको दो गम हमारे प्रेरे।(नरवकाव्य, पृ0 291)

उधर श्रृंगी ऋषि भी शान्ता के आने में विलम्ब हुआ देखकर अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं और यहाँ वहाँ सभी उपवनों में उसे खोजते हैं —

जितनी कुंज विपिन बीच थी सुमन अलंकृत

पिक शावक रव-मुखर मनोहर मधुकर संकुल

सबमें दौड़े व्यग्र कहीं शान्ता मिल जाये।

प्रकृति रूप-प्रेमिका कहीं छिपकर दिखलाये।(वही, पृ0 306)

इसी ढूँढने में एक जगह उन्हें एक मधुप मिल जाता है। उसको गुलाब के ऊपर बैठा देखकर उन्हें गुलाब की निष्ठुरता के बारे में समझाते हैं। मधुप के ऊपर उनके वचनों का कुछ असर नहीं होता और अन्त में वह स्वयं मूर्छित हो जाते हैं —

देख न सके अंतिम अलि का जब वे मादक मधु पीना।

मूर्छित गिरे धरणि पर उसकी क्रीड़ा कर रसहीना।(वही, पृ0309)

आप श्रृंगी विरह से पीड़ित हैं। अतः चन्द्रमा भी उनके ताप को बढ़ाता हुआ प्रतीत होता है।

कामुकता के धाम कामना लोलुप काम वृष्टिकारी।

शान्ति कहाँ से दो मुझको, जब तुम्हीं आक्रान्त बने भारी।(वही, 216)

संयोग श्रृंगार :— श्रृंगी शान्ता को पाकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं —

प्रिये प्रिये तुम आयीं जैसी शीतल जल की धारा।

जलता था जो अनल हृदय में शान्त हो गया सारा।

जादू कौन सीखकर आयीं कुम्हली कली खिला दी।

छूमन्तर सा करके छन में बिगड़ी सभी बना दी।(वही, पृ0 217)

प्राणनाथ मेरा सब जादू वही विरह की ज्वाला।

जिसने मेरे मानस का रस सारा ही पी डाला।(वही, पृ0 217)

मैं डरने वाली नहीं तात रिपुओं के तप्त अंगारों से

यह सिर न कभी झुक सकता है, बैरी के तीखे वारों से।'[1]

ऐसे ही शौर्य का पाठ वे अपने नवजात शिशु को भी पढ़ाती हैं, उसे वीर शिवा और राणा प्रताप का कर्तव्य अपनाने की प्रेरणा देती हैं और अपने मातृभू को निडर देखना चाहती हैं। वे पद्मिनी के जौहर की निंदा करती हैं क्योंकि उसने अबला का रूप ही बताया, वह तलवार धारण कर ज्वाला स्वरूप क्यों नहीं बनी। उनके मानस में क्रोध और आवेश की प्रचण्ड ज्वाला धधकाने की शक्ति थी। वे समरांगण में साक्षात् रणचंडी बन जाती हैं — उनका युद्ध कौशल दर्शनीय और प्रशंसनीय है —

यह ताज नहीं था रानी का

यह था शृंगार भवानी का

यह रूप धरा पर चमक रहा

था सती पद्मिनी रानी का।' (झाँसी की रानी, पृ0 180)

रानी अरि गर्दन काट-काट

उड़ रही पवन में फर-फर-फर

लप लप करती असि जिह्वा से

शोणित बहता तर-तर-तर (वही, पृ0 211)

इसके अतिरिक्त काव्य में वात्सल्य, शृंगार, करुण रस की निष्पत्ति भी हुई है। वात्सल्य में संयोग और वियोग दोनों पक्षों का वर्णन है। अश्व-निधन पर करुण और पुत्र-शोक में वियोगवात्सल्य की झाँकी मिलती है।[2]

युद्ध वर्णन में महारानी लक्ष्मीबाई के वीरत्व की झाँकी अवलोकनीय है —

---

1-झाँसी की रानी, पृ0 62

2- कौन अब की लकुटी बनकर पथ पर मुझे चलावेगा?

तब मैं तात कहूँगी किसको, माँ कह कौन पुकारेगा। २झाँसी की रानी, पृ0 117

इसी प्रकार भगवान राम ने मारीच और सुबाहु का भी शमन किया —

हुए राम क्रोधाभिभूत राक्षसी कार्य से

बोले लक्ष्मण वीर बन्धु दृढ़ व्रताचार्य से

वत्स सुभुज मारीच भयंकर वैरी आये

सावधान, यह दुष्ट न बचकर जाने पाये। (भगवानराम, पृ0 62)

परशुराम राम से धनुष भंग की बात सुनकर अत्यन्त रुष्ट हो जाते हैं और वे राम से युद्ध के लिए तैयार हो जाते हैं —

करो मुझसे युद्ध करके यह शरासन पूर्ण

गर्व किया है तुम्हारे अतुल बल का चूर्ण

भृकुटि भंग हुआ विषम रघुवीर का तत्काल

गर्व-संवरण गया बन हृदय शूल कराल। (वही, पृ0 169)

सुना मैंने राम जब यह घोर कृत्य जघन्य

प्रज्वलित हो उठा मेरा प्रलय क्रोध अनन्य

× × × × ×

प्रथम कर विद्रूप अर्जुन का सकुल संहार

तदनन्तर करने लगा मम तीक्ष्ण धार कुठार

क्षितिवीरोत्सादन किया इसने सहस्त्रों बार

हुए उन्नत शिखर जहाँ थे नृप अनेक प्रकार। (वही, पृ0 171)

<u>शृंगाररस</u> :— सीता स्वयंवर के समय सम्पूर्ण वातावरण शृंगारमय हो जाता है —

हृदय तोड़ को चली जीतने सिय मोहिनी

राम श्याम छवि वलित रस-वारि प्रसारती।

× × × × × ×

छवि ने पाया प्रणय सुहाग

प्रीत बीज ने रसमय राग।(रमिलनराम, पृ0 84)

<u>वात्सल्य रस</u> — दशरथ के चारों पुत्रों से सभी अत्यन्त प्रसन्न हैं तथा चारों ओर वात्स-ल्य रस की सरिता प्रवाहित हो रही है —

कौशल्या ने लिये पुत्र निज अंक में

और मधुरकर चुम्बन वदन मयंक में

कहा प्राण आनन्द के द्वार मराल से

हृदयखण्ड हैं मेरे प्रियतम लाल ये।(वही, पृ036/40)

कैकेयी ने कहा भरत यह आपका,

सर अयोध्या-सा बने राम का व रथ का।

हो गये रसासिक्त दशरथ पल्लवित वात्सल्य से।

रागमय हो गया जीवन प्रेम के प्रावल्य से।

बाल क्रीड़ा राम की थी अब सजग होने लगी

मंजु चितवन अवलोकन पुलकमय वात्सल्य से।(वही, पृ0 37/48)

राम जननी व्यस्त रहतीं पुत्र के रसरंग में

कभी पलना पर सुलाकर कभी ले उत्संग में।

प्रेम परमानन्द रस में मग्न रहती हैं सदा

हृदय से पुत्र को लगाकर वात्सल्य उमंग में।(वही, पृ0 38/50)

जरा में मुझको मिले अति कष्ट से सुतरत्न हैं

राम सबसे अधिक प्रिय दृग ज्योति प्राण समान हैं

करें आप कृपा न मांगें राम प्रियतम पुत्र को

उन्हीं के कल्याण अर्पित सकल जीवन यत्न हैं।(वही, पृ046/93)

<u>वियोग वात्सल्य</u> :— विश्वामित्र के साथ राम, लक्ष्मण की विदाई को सुनकर राजा और रानी अपने अश्रु को न थाम सके :-

जैसे दौड़े त्वरित उठ उद्भ्रान्त हो भूमिपति

निःसंज्ञा हो झट गिर पड़े तीव्र अन्तर्व्यथा से।

कैकेयी भी क्रन्दन करुण कर वेदना अभिभूती,

रोती मानों विकल करुणा ही स्वयं मूर्तिमान।

टूटा था दारुण विपत्ति में धैर्य का भी सहारा। (वही, 114/721)

पाते ही दुःसह वचन का घात वज्राग्र जैसा

व्यापी मर्माहत भरत हो तीव्रता से व्यथा की।

जैसे पृथ्वी पर झट गिरे अश्रु संभार ढोते।

मानो उन्मूलित तरु गिरा कष्ट आधार खोई। (वही, पृ0183/1191)

करुणरस :- उदात्त करुणा की तो अबाध मन्दाकिनी ही जैसे आदि से अन्त तक इस महाकाव्य के मर्मस्थलों के कूलों को आप्लावित करती हुई अजस्र प्रवाहित हो उठी है। राम काव्य की करुणा स्रोतस्विनी वर्णिक छंदों की धीर और मंथर गति में कवि की करुण-विगलित वाणी द्वारा अर्थ गुंजरित होकर चित्त को भाव-विभोर कर देती है। राम वन गमन की अत्यन्त करुण गरिमा से पूर्ण चमत्कार युक्त घटनाओं का चित्रण तथा वन तक प्रकृति के वैविध्य का वर्णन मनोमुग्धकर बन पड़े हैं। राम काव्य के गौरवमय त्याग मय शौर्य तथा अन्तर्वेदना का सिन्धु-मंथन कर कवि ने मानवीय करुणा का पवित्र पार्थिव नवनीत भरकर अपनी गंभीर अनुभूति, व्यापक संवेदना एवं सत्यबोध तथा कलात्मक क्षमता का अपूर्व परिचय दिया है—

करते हुए विलाप भूमिपति मूर्छित हुए अचेत,

रविकुल रवि अस्तंगत होता स्पष्ट हुआ संकेत।

किन्तु कष्टाकार केतु सम झलके वो तत्काल,

नारि कुराग्रह की भूमिका हुई विषम विकराल।

संपात वज्र गिरते शुभ शांतिकारी,

माता हुई पतित भूपर देह-हीना

मानों गिरी गगन से च्युत देव-बाला

छिन्ना कटी परन्तु आहत मातृ-गात्रा।(वही, पृ0 72/442)

अपत्य आबद्ध विलोक किन्नरी

अधीर हो ज्यों करती विलाप है,

मृगी यथा निर्दय व्याध विद्ध हो,

विक्लिष्ट होती इत देवी विह्वला।(भगवानराम, पृ0 73)

सदैव आर्त्त रघुवंश रत्न की

वियोगकारी स्वर में व्यथामयी

स्वपुत्र का आनन देख देख यों

विलापमग्ना अति कातरा हुई।(वही, 73/446)

रावण द्वारा अपहृत सीता के करुण क्रन्दन में करुण रस की अभिव्यक्ति हुई है —

हा स्वामी, हा प्रणत जन कष्ट में त्राणदाता,

रक्षा मेरी रघुपति करो हा लिये राहु जाता

हा मेरे पालित वनमृगों तीव्रगामी विहंगो

जाओ भागो मम हरण की नाथ को सूचना दो

दुःखार्ता कण्ठ रुदित भय-ग्रस्त नारी

बोली यों उच्च स्वर से खग व्योमचारी

बन्दी समान मुझको दशग्रीव पापी

लेकर लिये लंका है अति शीघ्र जाता।(वही, पृ0 363/626)

दुःखार्त दीन स्वर से वन को गुंजाती

सीता गई लिपट पादप से लता ज्यों।

तत्काल पापरत रावण के करों से

विच्छिन्न वेश पकड़े वनवासिनी के।(मंगलरामायण, पृ0 366/648)

राम सीता को कुटी में न पाकर अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं तथा विक्षिप्त होकर उन्हें इधर उधर ढूंढ़ते हैं —

उद्भ्रान्तों के सदृश करते अंग विक्षेप रोते
आते जाते मृग गण तथा व्योमचारी खगों से
वैदेही को करुण स्वर में दुख से पूछते थे
बोलो मेरी विश्वाधवरी प्राणप्यारी कहाँ है?(वही, 375/704)

प्रिये तुम्हें देखा लिया रुको रुको
सवेग भागो न अरण्य-मार्ग में
प्रिये न रूठो इस भाँति व्यर्थ से
तुम्हें मनाने स्वयमेव आ रहा।(वही, पृ0 375/709)

विषण्णता आहत हीन-चेतना
यहाँ वहाँ थे रघुनाथ दौड़ते।
कुभूमि में थे गिरते कहीं कभी
अचेत होते उठ दौड़ते कभी।(वही, पृ0 376/711)

कभी करुण क्रन्दन थे करते कभी
अहह बन्धु हुआ यह दुख भी
मरण सूचक घात किया अभी
कट चुकी मम जीवन शृंखला।(वही, पृ0 377/719)

<u>रौद्ररस</u> :— राम का अकिंचित रुक जाने के कारण लक्ष्मण क्रोधित हो रहे हैं। इस प्रसंग में रौद्ररस की व्यंजना हुई है —

आवेशपूर्ण मुख लोहित क्रोध से था,
मानो महाकुपित हो मृगराज बैठा।
फुंकार त्याग करता अहि क्रुद्ध है ज्यों

निःश्वास उष्ण कुपितानुज के रहे थे,
था कम्प सर्वतन भ्रूकुटी चढ़ी थी
सर्वांग रौद्र रस की अभिव्यंजना थी।(भगवानराम, पृ0 82/508)
दोनों कराल यदि लोचन भी त्रिशूली
शिव करें प्रलय ताण्डव नृत्य दुबारा
मेरा प्रकोप उनकी प्रलयाग्नि को भी,
निस्तेज गलितहतप्रभा क्षण में करेगा।(वही, पृ0 84/524)

'जानकी जीवन'

वात्सल्य रस :- सीता के पुत्रों — लव कुश को आलम्बन बनाकर कवि ने वात्सल्य रस की सुन्दर अभिव्यक्ति की है —

धरा में धूलिधूसर लोटते थे,
जैसे हीरे नयी निधि के निराले
उठा लेती उन्हें तब जानकी माँ
निराश्रा रंकिनी ज्यों रत्न पाये।(वही, 344/59)

पर्यंक से गोद में आना, मही में पेट के बल लेटना, माँ की अंगुली पकड़कर चलने का उपक्रम करना आदि कितनी ही बाल चेष्टायें कवि के मानस-पटल पर अंकित हो जाती हैं।

लव कुश घुटनों के बल चलने लगते हैं। उनके विनोद-आमोद से पृथ्वी के क्रोड़ की सुषमा बढ़ने लगी। खेलते-खेलते वे खड़े होने लगे, जैसे कोई राष्ट्र अपने पैरों पर खड़ा हो गया हो। इस खड़े होने में झुके, घूमें, रुके, थिरके, गिरें आदि क्रियाएँ अतीव सार्थक बन पड़ी हैं।

जैसे कोई व्यक्ति उद्यम में सफलता पाकर हर्ष मनाने लगे, वैसा ही हर्ष लव और कुश के इस खड़े होने को देखकर सभी आश्रमवासियों को हो रहा था। वाल्मीकि जब उन्हें गोद में लेकर खिलाते, तो उनकी श्वेत दाढ़ी कचों के लिए खिलौने का काम करती और वे कहने लगते —

वन में वात्सल्य की धारा बहने लगी। कवि–हृदय का उस धारा से आप्लावित हो जाना स्वाभाविक है

करुणरस :— प्रस्तुत काव्य के बारहवें सर्ग में वाल्मीकि आश्रम में सीता के निर्वासन का वर्णन है। कवि ने उसका आरम्भ अत्यन्त करुण परिस्थितियों में किया है। सीता का राम से यह वियोग कितना मार्मिक है इसका स्वल्पाभास निम्नांकित छंद में अंकित करुणभाव की पृष्ठभूमि में हो रहा है —

तारकावली तेजहीन म्लान है,
कुंद ज्यों शीतांशु से छूये हुए।
प्राण प्यारे चन्द्र की त्यागी हुई
थी प्रतीक्षा दिव्य शोभा यामिनी।(जानकीजीवन, पृ० 216/5)
शोक संतप्ता खड़ी एकाकिनी
डोलता पत्ता न कोई बोलता
सुप्त सुषमा भरी आराधना
वंचना प्राणाधारी वंचना।(वही, पृ० 215/7)

वीररस :— काव्य के उन्नीसवें सर्ग में अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख है।- अश्व छोड़ा गया। वीराग्रणी सैनिक सन्नद्ध हो गये। सबके सामने एक ही ध्येय था —

आओ चलें अशान्ति के विनाश के लिए
आओ चलें प्रकाश के विकास के लिए
आओ चलें किसी दुखी उदास के लिए
आओ चलें समष्टि के सुवास के लिए।(वही, पृ० 358/35)
वीरों का लक्ष्य हो न शक्तिहीन नारियाँ
निःशस्त्र बाल वृद्ध कोमला कुमारियाँ
स्वार्थान्ध आततायि वृन्द से विरोध हो,
युद्धानुकूल युद्ध रूप का न क्रोध हो।(वही, पृ० 360/47)

कवि ने वीरवाहिनी के उत्साह का वर्णन अतीव उदात्त शब्दों में किया है —

आयें अनन्त मार्ग में महा आधि व्याधियाँ
आपत्तियाँ विपत्तियाँ अनष्ट आँधियाँ
ओले गिरें तुषार वृष्टि वज्रपात हों,
निर्द्वन्द्व यह वीर वृन्द पुष्प वृष्टि ज्ञात हों। (जानकीजीवन, पृ० 361/48)

जिन वीरों के हृदय में राष्ट्र की पुनीत मूर्ति बसी हुई है। उनके तन, मन धन, चित्त वित्त एवं मात्र सर्वात्मना राष्ट्र के लिए ही समर्पित होते हैं। स्वदेश और प्रजानु-रंजनकारी त्यागी एवं संयमी प्रजाधिपति के लिए वे कुछ उठा नहीं रखते। कवि ने इस दिशा में इस स्थल में अनेक मंगल संकेत किये हैं। सेना के प्रयाण का वर्णन भी प्रभावशाली है। यथा —

पीछे चला अजेय दिग्गजेन्द्र गिरीन्द्र से,
फुंकारते चले करीन्द्र ज्यों फणीन्द्र से।
देते तुरंग ताल मत्त झूमते चले,
मानो तरंग से सुभूमि चूमते चले। (जानकीजीवन, पृ० 365/72)
कल्याण कारी श्री गणेश के प्रतीक से,
मानो चली अनी अनन्त के प्रतीक से
आषाढ़ की प्रगाढ़ मेघ मालिका चली
दन्तावली मिली बलाक पंक्ति सी भली। (वही, पृ० 365/73)

## 'अरुणरामायण'

वात्सल्य रस :— कैकेयी रामचन्द्र जी को भरत की अपेक्षा अधिक स्नेह करती हैं। वे राम के रोने पर तुरन्त दौड़ पड़ती हैं और उन्हें गोदी में उठा लेती हैं —

अम्बा से भी बढ़ कर उन पर प्यार जताया करती।
कैकेयी नित चुम्बन से शिशु दुख को हरती।

शिशु चकित खड़ी हो जाती वह दर्पण सम्मुख।

प्रतिबिम्बित छवि को देख जो मिलता है सुख।

इस ओर राम उस ओर भरत दो नीलकमल।

वात्सल्य भाव से कैकेयी प्रतिदिन विह्वल। (अरुणरामायण, पृ0 11)

चारों बालकों की बाललीलाओं से अन्तःपुर स्वर्ग हो गया है। सभी माताएँ उनकी लीलाओं को देखकर आत्मविभोर हो उठती हैं —

जननी को नित सुख प्राप्त बाल लीलाओं से।

जैसे करतीं वे केलि मग्न ललनाओं से। (वही, पृ0 11)

करुणरस :— लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं —

सह लेता मैं स्त्री के हर जाने का अपना

पर लगता मैंने आज खो दिया है सपना।

भ्रातृ-विछोह दुख क्या समझे जो बन्धुहीन।

प्रेम के नीर से अलग आज है स्नेह-मीन।

ऐसी स्थिति में जीना तो मरने के समान।

छटपटा रहे भीतर ही भीतर विकल प्राण। (वही, पृ0 531)

वीभत्सरस :— युद्ध के निम्नांकित प्रसंग में वीभत्सरस की व्यंजना हुई है —

कुक्कुर स्यारों गीधों का मिलि भार सब भक्षण

टटके मोटे शव को दाँतों से चीर फाड़।

पिचकारी सी छूटती उष्ण रक्तधार॥

× × × × ×

मुर्दा जितना दुर्गन्धित स्वाद सुखद उतना

इन अनगिन शव को भूखे पशु खायें कितना॥ (वही, पृ0 557)

वीररस :— जब सम्पूर्ण राजा शिव के धनुष को नहीं उठा सके, तब जनक ने क्रुद्ध होकर पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन कह दिया। जनक की इस बात से लक्ष्मण का तेज उद्दीप्त

हो गया और वे कहने लगे —

बोले वे रामचन्द्र से भाई सुना नहीं,

जो बात जनक ने कही ओ क्या सुना नहीं,

खंडित पिनाक को कर देता यों ही क्षण में

आपकी कृपा से अमित शक्ति है लक्ष्मण में। (अरुण रामायण, पृ066)

रौद्ररस :— धनुष-भंग के पश्चात् परशुराम यज्ञस्थल पर आकर श्रीराम पर अपना क्रोध व्यक्त करते हैं। उस समय उनकी मुखमुद्रा में रौद्ररस के दर्शन होते हैं —

उस पर क्रुद्ध मुनि की आँखें अब अधिक लाल।

फनफना उठा सा मुनि-मानस का क्रोध-व्याल।

तमतमा उठी सी मुखमुद्रा बातें सुनकर

ज्यों ग्रीष्म प्रचण्ड दिवाकर से दुःसह दुपहर॥

× × × × ×

अब नहीं नाड़ियाँ केवल तन में मन में।

प्रतिशोध भावना तड़ित चपल चिन्तन रण में।

कौंधने लगी आक्रोश भरी दामिनी देह।

मन ही मन क्रोधित प्राण कि झूठा नृपति स्नेह।

शान्तरस :— परशुराम जी राम से अत्यन्त क्रोधयुक्त होकर अपमानजनक बातें कह रहे हैं, किन्तु राम उत्तेजित नहीं होते हैं। वे शान्त भाव से परशुराम की बातों का उत्तर देते हुए कहते हैं —

आपके सामने मैं भी तो बालक समान।

सर्वदा प्रणम्य आप ओजस्वी महाप्राण।

मैं केवल राम परन्तु आप तो परशुराम

आपके समान महान आपका महत् काम।

× × × × × ×

मैं लड़ूँ आपसे यह कैसे सोचा भृगुपति।

बालक हूँ पर अपराधित कदाचित् मेरी मति। (वही, पृ0 84)

— ——

## चतुर्थ अध्याय

## 'अलंकार-विधान'

**अलंकार की परिभाषा :-**

अलम् + कृ + घञ् के योग से निष्पन्न अलंकार शब्द की व्याख्या दो प्रकार से की जाती है —

(1) 'अलंकरोतीति अलंकारः' अर्थात् जो आभूषित करता है, वह अलंकार है।

(2) 'अलंक्रियते अनेनेत्यलंकारः' अर्थात् जिसके द्वारा कोई वस्तु विभूषित होती है, उसे अलंकार कहते हैं।

अलंकार के स्वरूप पर प्रकाश डालने वाले आचार्यों के मत निम्नांकित हैं —

(1) आचार्य भामह शब्दार्थ-वक्रता को अलंकार मानते हैं —

वक्राभिधेय - शब्दोक्तिरिष्टावाचामलंकृतिः'
—(काव्यालंकार, 1/37)

(2) दण्डी काव्य के शोभाविधायक धर्म को अलंकार मानते हैं —

'काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते'
—(काव्यादर्श, 2/1)

(3) वामन के विचार से काव्यसौन्दर्य ही अलंकार है —

'सौन्दर्यमलंकारः' —(काव्यालंकारसूत्रवृत्ति 1/1/2)

(4) रुद्रट का मत है कि अभिधान के कथन का प्रकार विशेष अथवा कवि प्रतिभा से प्रादुर्भूत कथन विशेष ही अलंकार है —

'अभिधान प्रकार विशेषा एवं चालंकाराः।
—(हि०सा०कोश, पृ०61 से उद्धृत)

(5) कुन्तक के विचार से विदग्धों की कथनभंगी ही वक्रोक्ति है और वही अलंकार है —

वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभंगीभणितिरुच्यते।' (वक्रोक्तिजीवित, 1/10)

(6) विश्वनाथ का मत है कि शब्द और अर्थ के शोभातिशायी अर्थात् सौन्दर्य की विभूति को बढ़ाने वाले धर्म अलंकार हैं —

'शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।

रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत्।' (सा०द० 10/1)

(7) महिमभट्ट के अनुसार चारुत्व और शब्दार्थ की विच्छित्ति को अलंकार कहते हैं —

चारुत्वमलंकारः तथा च शब्दार्थयोर्विच्छित्तिरलंकारः। (व्यक्तिविवेक)

(8) अग्निपुराण में कहा गया है कि अलंकार विरहित वाणी विधवा स्त्री की भाँति होती है —

'अर्थालंकाररहिता विधवेव सरस्वती'

(9) अलंकार शब्दार्थ से उसी प्रकार अनिवार्य रूप से सम्बन्धित होते हैं, जिस प्रकार उष्णता अग्नि से सम्बन्धित होती है —

अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।

असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती॥'

— चन्द्रालोक 1/8)

(10) ध्वनिकार के मत से अंगों में आभूषणों की जो स्थिति होती है, वही स्थिति शब्दार्थ में अलंकारों की होती है —

'अंगाश्रितास्त्वलंकारा मन्तव्याः कटकादिवत्।'

**अलंकार और अलंकार्य का भेद** :— अलंकार और अलंकार्य दोनों काव्य के प्रमुख पक्षों के सहायक तत्त्व हैं। काव्य के भाव और कला ये दो पक्ष हैं। अलंकार्य, जिसके अन्तर्गत रस वस्तु आदि आते हैं, भावपक्ष से सम्बन्धित हैं। अलंकार का सम्बन्ध उसके कलापक्ष से है। अतः भाव-पक्ष और कला पक्ष में जो सम्बन्ध और विभेद हैं, वही अलंकार और अलंकार्य में भी हो सकता है। डा० श्यामसुन्दर दास ने 'साहित्यालोचन' में काव्य के भावपक्ष और कलापक्ष के सम्बन्ध की नित्यता की ओर संकेत करते हुए कहा है—

"दोनों का नित्य सम्बन्ध है, जो सदा अक्षुण्ण बना रहता है। जहाँ एक का दूसरे से विछोह हुआ, वहाँ काव्य की अन्तरात्मा को ~~अपने को~~ प्रकट करने की सामर्थ्य नहीं रह जाती।" — रस और शैली, पृ० २०२

काव्य की अन्तरात्मा है रस। रस को क्रियाशील बनाने वाला कला पक्ष ही होता है। कलापक्ष के अन्तर्गत शैली सम्बन्धी सभी तत्त्व आ जाते हैं। अलंकार शैली का ही एक तत्त्व है। कुशल कलाकार की शैली में अलंकार नित्य रूप से वर्तमान रहते हैं। उनकी वाणी बिना प्रयास के ही सुन्दरतम अलंकारों की सृष्टि करती चलती है। हिन्दी साहित्य के भक्तियुग की रचनाओं में अलंकारों की योजना इसी रूप में मिलती है। काव्य में अलंकार जहाँ इस रूप में प्रयुक्त हुए हैं, वहाँ वे रस के उत्कर्ष के आवश्यक उपादान सिद्ध हुए हैं। इसके विपरीत जब अलंकारों का प्रयोग चमत्कारवाद की प्रतिष्ठा के लिए किया जाता है, तब रस से उनका वह सहज सम्बन्ध विच्छिन्न या शिथिल सा दिखलायी पड़ता है। उनका स्वाभाविक सौन्दर्य विकृत हो जाता है और वे काव्य में क्लिष्टता दोष उत्पन्न करने लगते हैं।

## गुण और अलंकारों में भेद

आचार्य मम्मट ने रस को काव्य का प्राण बतलाते हुए गुण को रस का उत्कर्ष नित्य धर्म कहा है—

'ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।

उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः॥ (काव्यप्रकाश, 8/66)

अर्थात् आत्मा के शौर्य आदि गुणों के समान काव्य-गुण रस के आश्रित धर्म, उत्कर्ष के हेतु और रस के साथ अचल या नित्य रहने वाले हैं।

इसके विपरीत वे अलंकार को रस के धर्म नहीं बल्कि शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म मानते हैं। रस के साथ अलंकार नित्यरूप में रहकर सदा ही उसका उत्कर्ष नहीं करते। अलंकार का लक्षण वे इस प्रकार देते हैं —

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।

हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।" (काव्यप्रकाश, 8/67)

मम्मट के अनुसार गुण और अलंकारों में निम्नलिखित अन्तर है —

(1) गुण रस के धर्म हैं, किन्तु अलंकार रस के धर्म न होकर शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म हैं।

(2) गुण रस के साथ नित्य रहते हैं, किन्तु अलंकार रस के साथ नित्य नहीं रहते। वे नीरस काव्यों में भी रहते हैं।

(3) गुण रस के साथ रहकर भी कभी शब्दार्थ के द्वारा रस का उपकार करते हैं और कभी उपकार नहीं भी करते हैं। इस प्रकार मम्मट ने वामन के 'काव्य शोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः तदतिशयहेतवस्तु अलंकाराः' का खण्डन कर दिया है। इस लक्षण में मम्मट ने गुणों को काव्य का शोभाकारक धर्म और अलंकारों को गुणकृत शोभा का उत्कर्षक कहा है।

## प्रसिद्ध अलंकारों के लक्षण और उदाहरण

**अलंकारों के प्रकार** :— अलंकार तीन प्रकार के होते हैं —

(1) शब्दालंकार

(2) अर्थालंकार

(3) उभयालंकार

शब्दालंकार :- जहाँ शाब्दिक चमत्कार प्रधान होता है, वहाँ शब्दालंकार होता है।

अर्थालंकार :- जहाँ काव्य में अर्थगत चमत्कार का प्राधान्य होता है, वहाँ अर्थालंकार होता है।

उभयालंकार :- जहाँ शब्दगत और अर्थगत दोनों ही कोटि के चमत्कार प्रधान होते हैं, वहाँ उभयालंकार माना जाता है।

शब्दालंकार :- प्रसिद्ध शब्दालंकार निम्नांकित हैं :-

(1) अनुप्रास :- जहाँ व्यंजनों की समानता हो, चाहे उनके स्वर मिलें या न मिलें, वहाँ अनुप्रास नामक अलंकार होता है।

उदाहरण - चंदन चंदक चाँदनी चंदसात नवबाल।

नित ही नित बाढ़तु चतुर पै निवाज के बाल।"

अनुप्रास के भेद -- अनुप्रास के पाँच भेद माने गए हैं --

(क) छेक (ख) वृत्ति (ग) श्रुति (घ) लाट (ङ) अन्त्य।

(क) छेकानुप्रास - जहाँ एक या अनेक अक्षरों की आवृत्ति केवल एक बार हो, चाहे वह आदि में हो या अन्त में -

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि।

मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कह कीन्ही।'

(ख) वृत्त्यनुप्रास :- जहाँ आदि या अन्त में एक वर्ण अथवा अनेक वर्णों की अनेक आवृत्तियाँ होती हैं, वहाँ वृत्त्यनुप्रास अलंकार होता है।

(ग) श्रुत्यनुप्रास :- जहाँ उच्चारण के एक स्थान से उच्चरित होने वाले वर्णों की समानता हो, वहाँ श्रुत्यनुप्रास होता है। दन्त्य वर्णों के अनुप्रास का उदाहरण इस प्रकार है -

तुलसिदास सीदत निसिदिन

देखत तुम्हारि निठुराई।'

(घ) लाटानुप्रास :- इसमें शब्द की आवृत्ति होती है। जब शब्द के अर्थ में कोई अन्तर न पड़े, किन्तु पद का अन्वय करने से अर्थ बदल जाये, तब वहाँ लाटानुप्रास माना जाता है।

तीरथ व्रत साधन कहा जो निसिदिन हरि गान।

तीरथ व्रत साधन कहा बिन निसिदिन हरिगान॥

यहाँ शब्दों और अर्थों की आवृत्ति की गयी है, किन्तु अन्वय से अर्थ बदल जाता है। जैसे — 'जो निसिदिन हरिगान कहा तीरथ व्रत साधन।' अर्थात् जो भगवान के भजन में लगे रहते हैं उन्हें तीर्थ-व्रत आदि साधनों की कोई आवश्यकता नहीं होती। दूसरा अर्थ इस प्रकार हो सकता है —

'जो तीरथ व्रत साधन निसिदिन हरिगान कहा—' अर्थात् जिन तीर्थ-व्रत और साधनों में रात-दिन हरि-गान का विधान न रहता हो वे तीर्थ-व्रत और साधन निरर्थक होते हैं।

(ङ) अन्त्यानुप्रास :— छन्द की प्रत्येक पंक्ति के अन्तिम वर्ण की समानता को अन्त्यानुप्रास कहते हैं। इसी को तुकान्त भी कहते हैं —

'जेहि सुमिरत सिधि होय गननायक करिबर बदन।

करहु अनुग्रह सोय बुद्धि रासि सुभ-गुन सदन।'

(2) यमक — जब एक ही शब्द की भिन्न-भिन्न अर्थों में आवृत्ति होती है, तब उसे यमक अलंकार कहते हैं। निम्नांकित चौपाई में विदेह शब्द के ये दो अर्थ हैं (1) राजा जनक (2) देह की सुधि से रहित।

'मूरत मधुर मनोहर देखी।

भयउ विदेह विदेह विसेषी।'

(3) वक्रोक्ति :— जब श्रोता वक्ता के द्वारा कहे गये शब्दों का वक्ता को अनभीप्सित अर्थ लेता है, तब वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है। इस प्रकार का भिन्न अर्थ या तो श्लेष के बल पर या काकु के सहारे ही व्यक्त होता है। अतः वक्रोक्ति के मुख्य दो भेद हैं—

(क) श्लेष वक्रोक्ति

(ख) काकु वक्रोक्ति

(क) श्लेष वक्रोक्ति — इसके दो भेद हैं —(1) सभंग पद (2) अभंग पद।

सभंग पद श्लेष वक्रोक्ति का उदाहरण —

मान तजौ गहि सुमति वर पुनि पुनि होत न देह,

मानस जोगीजोग को हम मांहि करत सनेह।'

यहाँ पर 'मान' 'तजौ' 'गहि'— इन तीन भंग पदों को श्रोता ने मिलकर उसका अर्थ जोड़ी लिया है। यही इसमें चमत्कार है।

अभंगपद श्लेष वक्रोक्ति —

कोतो जु किवार तुमको है रखी बार?

हरि नाम है, हमारो बसो कानन पहार में।

हौं तो प्यारी माधव, तो कोकिला के मारे भाग,

मोहन हौं प्यारी, परो मंत्र अभिचार में।

राधे हौं रंगीली तो जु जाहु काहु बाग पास

जोगी हौं — उजीली जाय बरनी जु पहार में।

नायक हौं नागरी तो क्यों कहूँ टाँड़ो आप,

हौं तो घनश्याम बरसो यो काहु ठार में।"

(ख) काकु वक्रोक्ति :—

जब शब्दों के उच्चारण में कण्ठध्वनि किसी अन्य अर्थ की ओर संकेत करे, तब वहाँ काकु वक्रोक्ति अलंकार होता है।

काह न पावक जारि सके, का न समुद्र समाय।

का न करे अबला प्रबल, केहि जग काल न खाय।'

(4) वीप्सा अलंकार :— वीप्सा का अर्थ है आवृत्ति। जब किसी मानसिक भाव को प्रकट करने के लिए एक शब्द कई बार दोहराया जाता है, तब वहाँ वीप्सा अलंकार होता है।

उदाहरण — राम जपु राम जपु, राम जपु बावरे।

घोर भव नीर निधि नाम निज नाव रे।'6

(5) पुनरुक्तिवदाभास :—

जब दो पर्यायवाची शब्द समान अर्थवाचक प्रतीत हों, किन्तु यथार्थ में अर्थ कोई दूसरा ही द्योतित करते हों, तब वहाँ पुनरुक्तिवदाभास अलंकार होता है—

पुनि फिरि राम निकट सो आई।

प्रभु लछिमन पहँ बहुरि पठाई।'

यहाँ पुनि और फिर में पुनरुक्ति का आभास है। फिर का अन्वय आयी शब्द के साथ किया जाना चाहिए।

(6) पुनरुक्तिप्रकाश :— जब भाव को सुशोभित करने के लिए किसी एक शब्द की कई बार आवृत्ति की जाती है, तो तब वहाँ पुनरुक्ति प्रकाश नामक अलंकार होता है —

बनि बनि बनि बनिता चली गनि गनि गनि डग देत

धनि धनि धनि अंखियां सुछबि सनिसनि सनि सुख लेत।'

(7) चित्र :— जब कवि द्वारा छन्द योजना में ऐसे वर्णों का नियोजन किया जाता है, जिनके विशेष प्रकार के विन्यास से विशेष चित्र बनाये जायें। तब उस प्रकार के काव्य में वास्तव में अलंकारत्व नहीं होता, कवि का कौशल प्रधान रहता है। इस अलंकार द्वारा कवि कमल, छत्र, चक्र, चँवर, डमरू, खड्ग, रथ, धनुष, पक्षी, घोड़ा, मनुष्य, सिंह और सर्प आदि के चित्र बना सकता है —

नैन बैन छन चैन मन ध्यान लीन मन पीन।

पैन दैन छिन रैन तन छिन छिन उन बिन छीन।

इस दोहे में प्रत्येक दूसरा वर्ण 'न' है। इससे कमल के 'अ' सर्प चक्र उपरोक्तानुसार घोड़े आदि अनेक चित्र बन सकते हैं।

(8) श्लेष :— छन्द में जब एक ही शब्द प्रसंग-भेद से कई अर्थों की व्यंजना करता है तब वहाँ श्लेष अलंकार माना जाता है। यह श्लेष दो प्रकार का होता है — एक शब्द श्लेष दूसरा अर्थश्लेष। शब्दश्लेष में कवि का मुख्य तात्पर्य एक ही अर्थ से होता है। जैसे —

रावण सिर सरोज बनचारी। चलि रघुबीर सिलीमुख धारी।'

यहाँ पर सिलीमुख मुख्यतया दो अर्थों का वाचक है — बाण और भौंरा, किन्तु तुलसी का अभिप्रेत अर्थ बाण ही है। इसीलिए शब्दश्लेष है।

## अर्थालंकार

(1) उपमा :— जब प्रत्यक्ष पृथक् प्रतीत होने वाली दो वस्तुओं में समता प्रदर्शित की जाती है, तब वहाँ उपमालंकार माना जाता है। यह समता आकृति, रूप, रंग और गुण की होती है। उपमा के चार अंग होते हैं —

(1) उपमेय — जिसकी समता की जाये।

(2) उपमान — जिससे समता की जाये।

(3) धर्म — जिस हेतु समता की जाये।

(4) वाचक — जिसके आश्रय से समता की जाये।

'बन्दौ कोमल कमल से जग जननी के पाँव।' यहाँ पाँव शब्द उपमेय है। कमल उपमान है। कोमल धर्म है। से वाचक है। उपर्युक्त अंगों के आधार पर उपमा के दो भेद माने गए हैं —

(क) पूर्णोपमा

(ख) लुप्तोपमा

(क) पूर्णोपमा — जहाँ उपमेय, उपमान, धर्म और वाचक चारों अंग प्रकट हों, वहाँ पूर्णोपमा मानी जाती है।

उदाहरण — रामलखन सीता सहित सोहत पर्ण निकेत।

जिमि बासव बस अमर पुर शची जयन्त समेत।।

(ख) लुप्तोपमा — जहाँ उपमा के पूर्वोक्त चार अंगों में से कोई अंग लुप्त होता है, वहाँ लुप्तोपमा अलंकार होता है —

(2) मालोपमा — जहाँ एक उपमेय के लिए अनेक उपमानों की योजना की जाती है, वहाँ मालोपमा अलंकार होता है। मालोपमा दो प्रकार का होता है —

— एकधर्मा एवं भिन्न धर्मा।

एकधर्मा— मालोपमा — जहाँ सब उपमान एक ही धर्म के द्योतक होते हैं, वहाँ पर एकधर्मा मालोपमा अलंकार होता है।

उदाहरण — इन्द्र जिमि जंभ पर बाडव सुअंभ पर रावण सदंभ पर रघुकुलराज है।

पौन बारिवाह पर शम्भु रतिनाह पर ज्यौं सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है।

दावा द्रुम दंड पर चीता मृगझुंड पर भूषण वितुंड पर जैसे मृगराज है।

तेज तिमि अंस पर कान्ह जिमि कंस पर त्यौं म्लेच्छ-बंस पर शेर शिवराज है।

भिन्नधर्मा मालोपमा — जहाँ अनेक उपमानों के पृथक्-पृथक् धर्मों के लिए उपमा दी जावे, वहाँ भिन्न धर्मा मालोपमा होती है —

बन्दौं खल जस सेष सरोषा। सहस बदन बरनै पर दोषा।

पुनु प्रनवौं पृथुराज समाना। पर अघ सुनै सहस दस काना।

(3) अनन्वय — जहाँ उपमेय अपना उपमान स्वयं ही हो, वहाँ अनन्वय अलंकार होता है।

स्वामि गुसाइँहि सरिस गुसाईं। मोहि समान मैं स्वामि दोहाईं।'

(4) असम — उपमान का सर्वथा अभाव द्योतित करने को असम अलंकार कहते हैं। जैसे—

छबीला साँवला सुन्दर बना है नन्द का लाला।

नहीं ब्रज में नजर आया जपीं जिस नाम की माला।

अजायब रंग है सुन्दर नहीं वैसा कोई भूपर।

देऊँ किसको जो पटतर पिये हूँ प्रेम का प्याला॥

(5) रूपक :— जब उपमेय का उपमान में अभेदरूप से आरोप किया जाता है, तब वहाँ रूपक अलंकार होता है। इस अलंकार में वाचक, धर्म आदि उपमा के अंगों का कथन नहीं किया जाता है।

(6) उपमेयोपमा — जब उपमेय के लिए केवल एक ही उपमान उपयुक्त लगे और संसार में उपमान और उपमेय के सदृश किसी अन्य तीसरी वस्तु का अभाव प्रकट हो, वहाँ पर उपमेयोपमा अलंकार होता है। जैसे —

'सुधा संत के बैन सम बैन सुधा सम जान।
बैन असन्त के विषहिं से विष वत बैन बखान।

(7) उदाहरण अलंकार — जहाँ किसी साधारण रूप से कही हुई बात को ज्यों, ज्यों जैसे, इत्यादि वाचक शब्दों द्वारा किसी विशेष बात से समता दिखलाई जाती है, वहाँ उदाहरण अलंकार होता है। जैसे —

जगत जनायो जेहि सकल सो हरि जान्यो नाय।
ज्यों आँखिन सब देखिए, आँखि न देखी जाय।

(8) दृष्टान्त :— उपमेय, उपमान और साधारण धर्म का जहाँ बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव वर्णित किया जाये और वाचक शब्द व्यक्त न हो, वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है। जैसे —

भरतहिं होय कि राजमद बिधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँ कि कांजी सीकरनि छीर सिन्धु बिनसाइ।"

दृष्टान्त और उदाहरण अलंकार का अन्तर

ये दोनों अलंकार एक दूसरे से बहुत मिलते जुलते हैं। दृष्टान्त अलंकार में कवि उपमान वाक्य पर विशेष बल देता है और उदाहरण अलंकार में कवि का लक्ष्य उपमेय वाक्य पर होता है। यही दोनों में मौलिक अन्तर है। कन्हैयालाल पोद्दार ने काव्यकल्पद्रुम भाग 2 में इन दोनों अलंकारों के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है —"दृष्टान्त अलंकार में उपमेय और उपमान का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होता है। 'इव' आदि उपमा वाचक शब्दों का प्रयोग नहीं होता है। किन्तु उदाहरण अलंकार में सामान्य अर्थ को समझाने के लिए उसका एक अंश दिखाया जाता है। प्राक् साहित्याचार्यों ने इवादि का प्रयोग होने के कारण उदाहरण अलंकार को उपमा का एक भेद माना है। पण्डितराज के मतानुसार यह भिन्न अलंकार है। उनका कहना है कि उदाहरण अलंकार में सामान्य विशेष भाव रहता है, उपमा में यह बात नहीं। और सामान्य विशेष भाव वाले

अर्थान्तरन्यास' में 'इव' आदि शब्दों का प्रयोग नहीं होता और 'उदाहरण' में 'इव' आदि शब्दों का प्रयोग होता है। इसलिए उदाहरण को भिन्न अलंकार मानना ही युक्तिसंगत है।"

(9) <u>अर्थान्तरन्यास अलंकार</u> :— जब साधर्म्य या वैधर्म्य प्रतीति करने के लिए सामान्य का विशेष से और विशेष का सामान्य से समर्थन किया जाता है, तब वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है।

<u>साधारण का विशेष से समर्थन</u> —

कारण ते कारज कठिन होय दोष नहीं मोर।
कुलिश अस्थि ते उपल ते, लोह कराल कठोर।'

इस दोहे में पूर्वार्द्ध की सामान्य बात का उत्तरार्द्ध की विशेष बात से समर्थन किया गया है।

<u>दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास का अन्तर</u> ,— दृष्टान्त में दो सम वाक्यों में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव प्रतीति किया जाता है और अर्थान्तरन्यास में एक वाक्य का समर्थन दूसरे वाक्य से किया जाता है। दृष्टान्त में सामान्य का समर्थन सामान्य से और विशेष का समर्थन विशेष से ही होता है। किन्तु अर्थान्तरन्यास इसके विपरीत होता है। इसमें एक वाक्य सामान्य और दूसरा वाक्य विशेष होता है।

(10) <u>प्रतिवस्तूपमा</u> — जहाँ उपमेय और उपमान सूचक दो पृथक्-पृथक् वाक्यों में दो भिन्न शब्दों द्वारा एक ही समान धर्म का कथन किया जाता है, वहाँ प्रतिवस्तूपमा अलंकार होता है। जैसे —

सोहत भानुप्रताप सों लसत सूर धनुबान।'

यहाँ पर 'लसत सूर धनुबान' उपमेय वाक्य है। 'सोहत भानुप्रताप सों' उपमान वाक्य है। शोभित होना, दोनों वाक्यों का एक धर्म है जिसका कथन उपमेय में 'लसत' शब्द से किया गया है और उपमान वाक्य में सोहत शब्द से किया गया है।

प्रतिवस्तूपमा और दृष्टान्त में अन्तर :— दृष्टान्त अलंकार में उपमेय, उपमान और समानधर्म, इन तीनों का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव प्रकट किया जाता है। इसमें उपमा वाचक शब्द प्रकट नहीं रहता है। प्रतिवस्तूपमा में एक ही समान धर्म भिन्न भिन्न शब्दों द्वारा कहा जाता है।

(11) तुल्ययोगिता अलंकार — जहाँ किसी क्रिया अथवा गुण द्वारा अनेक व्यक्तियों का एक ही धर्म प्रतीत किया जाता है, वहाँ तुल्ययोगिता अलंकार होता है।

गुरु रघुपति सब मुनि मन माहीं।
मुदित भए पुनि पुनि पुलकाहीं।

यहाँ गुरु, रघुपति और मुनि, इन तीनों उपमेयों में प्रसन्न होने के एक ही धर्म का कथन किया गया है।

(12) दीपक अलंकार :— जहाँ उपमेय और उपमान दोनों का एक ही धर्म दिखाया जाता है, वहाँ दीपक अलंकार होता है। जैसे —

संग ते जती कुमंत्र ते राजा।
मान ते ज्ञान पान ते लाजा।
प्रीति प्रनय बिन मद ते गुनी।
नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥

इस उदाहरण में राजा प्रस्तुत है और शेष उदाहरण अप्रस्तुत हैं। "नासहिं" क्रिया से सबका एक धर्म कहा गया है।

(13) अपन्हुति :— इसमें उपमेय का निषेध करके उपमान का स्थापन किया जाता है—

मैं जो कहा रघुबीर कृपाला।
बन्धु न होइ मोर यह काला।

यहाँ उपमेय बन्धु का निषेध किया गया है।

(14) निदर्शना :— जहाँ दो वाक्यों के अर्थ में अन्तर होने पर भी समता भाव का ऐसा आरोप किया जाये, कि दोनों एक से प्रतीत होने लगे, वहाँ निदर्शना अलंकार होता है। जैसे —

तुव बचनन की मधुरता, रही सुधा मँह छाय।
चारु चमक चल नयन की, मीनन लई छिनाय।

(15) उत्प्रेक्षा — जब प्रस्तुत की अप्रस्तुत रूप में सम्भावना की जाती है, तब उसे उत्प्रेक्षा कहते हैं। इस अलंकार के वाचक शब्द 'मनु, जनु, जानो, मानो' आदि होते हैं।

लता भवन ते प्रगट भए, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग विमल बिधु, जलद पटल बिलगाइ।

(16) अतिशयोक्ति :— लोकमर्यादा का उल्लंघन करने वाली अतिरंजनापूर्ण उक्ति को अतिशयोक्ति कहते हैं। जैसे —

जो सुख भा सिय मातु मन देखि राम नर वेष।
सो न सकहिं कहि कल्प सत सहस सारदा सेष।

(17) उल्लेख — जब किसी कारण से एक वस्तु या व्यक्ति का अनेक प्रकार से वर्णन किया जाता है, तब उसे उल्लेख अलंकार कहते हैं। जैसे —

जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।
देखहिं भूप महा रनधीरा। मनहु वीर रस धरे सरीरा।
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी।
मनहुँ भयानक मूरति भारी॥

(18) स्मरण — किसी सदृश वस्तु को देखकर पहले देखी गयी वस्तु के स्मरण को स्मरण अलंकार कहते हैं। जैसे —

सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर॥

(19) सन्देह :— (

जहाँ प्रस्तुत का वर्णन इस प्रकार किया जाये कि तथ्य और अतथ्य का निश्चय न हो सके, वहाँ सन्देहालंकार होता है। जैसे —

की तुम हरिदासन महँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई।

की तुम राम दीन अनुरागी। आयउ मोहि करन बड़भागी।

(20) भ्रान्तिमान :— जब भ्रमवश किसी वस्तु को अन्य वस्तु समझ लिया जाता है, तब तब भ्रान्तिमान अलंकार होता है। जैसे —

कपि कर हृदय विचार, दीन्ह मुद्रिका डारि तब।

जानि अशोक अंगार, सीय हरषि उठिकर गहेउ ॥

यहाँ पर सीता जी ने भ्रम से स्वर्ण मुद्रिका को अंगार समझ लिया है। इसीलिए यहाँ भ्रान्तिमान् अलंकार है।

(21) प्रतीप ,— यह अलंकार उपमा, अलंकार का विपरीत रूप होता है। उपमा में उपमेय की अपेक्षा उपमान की श्रेष्ठता व्यंजित की जाती है। इसके विपरीत प्रतीप में उपमान की अपेक्षा उपमेय की उत्कृष्टता व्यंजित की जाती है। जैसे —

सियमुख समता पाव किमि, चंद बापुरो रंग।

[illegible]

(22) व्यतिरेक अलंकार :— जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय में सकारण उत्कृष्टता व्यंजित की जाये, वहाँ यह अलंकार होता है। जैसे —

का सरवरि तेहि देउँ मयंकू। चाँद कलंकी वह निकलंकू।

चाँदहि पुनि सो राहु गरासा। वह नित चाँद सदा परगासा।'

यहाँ पर उपमान में हीनता दिखाई गयी है। यह व्यतिरेक का एक पक्ष है। कहीं कहीं उपमेय में उपमान की अपेक्षा अधिक गुणों का उल्लेख किया जाता है। जैसे —

सन्त हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन पै कहत न जाना।

निज परिताप द्रवै नवनीता। परदुख द्रवै सु सन्त पुनीता।

प्रतीप और व्यतिरेक दोनों ही अलंकार बहुत मिलते जुलते हैं। पर दोनों में अन्तर होता है। प्रतीप में केवल उपमान की हेयता मात्र व्यंजित की जाती है, किन्तु व्यतिरेक में उपमेय की उत्कृष्टता अथवा उपमान की हेयता के कारण की व्यंजना भी मिलती है। यही दोनों में स्थूल अन्तर है।

(23) तद्गुण अलंकार :— जहाँ पर उपमेय उपमान के रंग में परिणत हो जाता है, वहाँ तद्गुण अलंकार होता है। जैसे —

अधर धरत हरि के परत ओठ डीठ पट ज्योति।
हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्रधनुष रँग होति।

(24) अतद्गुण अलंकार :— यह अलंकार तद्गुण का उलटा होता है। दूसरे के साथ रहने पर भी वस्तु का रंग तद्वत नहीं होता; इस स्थिति में अतद्गुण अलंकार माना जाता है। जैसे —

कैा मुकुताहि मरकत मनिमय होत
श्याम लेत पुनि मुकता करत उदोत।'

(25) मीलित अलंकार — जब समान रंग वाली दो वस्तुओं को एक साथ रखने पर उनका पारस्परिक भेद मिट जाता है, तब वहाँ मीलित अलंकार होता है। जैसे —

पान पीक अधरान में सखी लखी नहिं जाय।
कजरारे अँखियान में कजरारी न लखाय।'

(26) उन्मीलित अलंकार :— जब दो समान रंग वाली वस्तुओं के भेद को किसी वस्तु या हेतु द्वारा व्यंजित किया जाये, तब वहाँ उन्मीलित अलंकार होता है। जैसे —

चंपक हरवा अंग मिलि अधिक सुहाय।
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाय।'

(27) कारणमाला :— जब कारण और कार्य की इस प्रकार श्रृंखला बन जाये कि एक का कारण दूसरा और दूसरे का कारण तीसरा प्रकट होता जाये, वहाँ कारणमाला अलंकार होता है। जैसे —

सत्संग से वैराग है तासे मन सन्तोष।

सन्तोषहिं से ज्ञान है, होत ज्ञान से मोक्ष॥

(28) एकावली अलंकार :— इस अलंकार में पहले कहे गये पदार्थ के साथ बाद में आने वाले पदार्थ का कई बार स्थापन अथवा निषेध किया जाता है। जैसे —

सो नाहिं सर जहँ सरसिज नाहीं।

सरसिज नहीं जेहिं अलि न लुभाहीं।

अलि नहीं जेकल गुंजन हीना।

गुंजन नहीं जो मन न हर लीन्हा।

(29) काव्यलिंग अलंकार — जब किसी कथन का समर्थन ज्ञापक हेतु द्वारा किया जाता है, तब वहाँ काव्यलिंग अलंकार होता है। जैसे —

कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय।

या खाय बौराय जग वाहि पाय बौराय॥

यहाँ पर कवि ने अपने इस कथन का, कि सोने में धतूरे की अपेक्षा सौगुनी मादकता होती है, समर्थन, 'या खाय बौराय जग वा पाय बौराय' इस ज्ञापक हेतु द्वारा किया है।

(30) असंगति अलंकार :— जहाँ पर कारण तो कहीं और हो और उसका कार्य या फल किसी दूसरे स्थल पर दिखाया जाये, वहाँ असंगति अलंकार होता है। जैसे —

दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।

परत गाँठ दुर्जन हिये, दई नई यह रीति॥

यहाँ पर उलझने का कारण दृग है और उलझने का कार्य रूप टूटना कुटुम्ब दिखलाया गया है। इसी प्रकार गाँठ तो दुर्जन के हृदय में पड़ती है और जुड़ते दो प्रेमियों के हृदय हैं। इस असंगति के कारण ही यहाँ असंगति अलंकार होता है।

(31) परिकर अलंकार — जहाँ पर अभिप्राय विशेषणों का कथन किया जाता है, वहाँ

परिकर अलंकार होता है। जैसे --

जानौ न नेकु व्यथा पर की बलिहारी तऊ पै सुजान कहावत।'

<u>(32) परिकरांकुर अलंकार</u> :— जहाँ साभिप्राय विशेष्य का कथन किया जाता है, वहाँ परिकरांकुर अलंकार होता है। जैसे --

वामा भामा कामिनी कहि बोलो प्रानेश।

प्यारी कहत लजात नहिं पावस चलत विदेश।

<u>(33) परिवृत्त अलंकार</u> :— जहाँ पर एक वस्तु की विशेषता दूसरी वस्तु में स्थापित कर दी जाये और दूसरे की विशेषता पहले में; वहाँ परिवृत्त अलंकार होता है। परिवृत्त का अर्थ है अदला-बदला। जैसे --

लीन नितम्बन मैं गुरुता, कटि लै जो कटि मैं तिनकी कृशताई।'

<u>(34) परिसंख्या अलंकार</u> :— जब किसी वस्तु, धर्म, गुण तथा जाति को उन सब स्थानों से, जहाँ उनकी स्वाभाविक स्थिति होती है, हटाकर किसी विशेष स्थान पर स्थापित कर दिया जाता है, तब वहाँ परिसंख्या अलंकार होता है। जैसे --

दण्ड जतिन कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज।

जीतहु मनहिं सुनिय अस, रामचन्द्र के राज॥

रामराज्य में दण्ड कहीं नहीं है, वह केवल संन्यासियों के हाथ में है। इस कथन से कवि ने राजनीति से, जो उसका वास्तविक स्थान है, दण्ड को हटाकर संन्यासियों के दण्डमात्र में स्थापित कर दिया है।

<u>(35) प्रत्यनीक अलंकार</u> :— जहाँ पर शत्रु पक्ष वालों से वैर अथवा मित्र पक्ष वालों से प्रेम करना दिखाया जाये, वहाँ प्रत्यनीक अलंकार होता है। जैसे --

सिंह न जीता लंक सरि हारि लीन्ह वनवास।

तेहि रिसि मानुष रकत पिय खाई मार के मास।'

(36) व्याजस्तुति अलंकार — जहाँ पर प्रत्यक्ष देखने में तो कोई कथन किसी के प्रति निंदात्मक प्रतीत हो, किन्तु वास्तव में वह हो स्तुति ही। जैसे —

कहा कहौं कहत न सुरसरि तेरी रीति।

तापै तु मूड़े चढ़े, जो आवै कर प्रीति।

इसमें प्रत्यक्ष तो गंगा जी की निंदा प्रतीत होती है, किन्तु वास्तविक रूप से प्रशंसा है।

(37) अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार :— जहाँ पर अप्रस्तुत के वर्णन के द्वारा प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति कराई जाती है, वहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार होता है।

(38) समासोक्ति अलंकार :— जहाँ पर प्रस्तुत कथन के द्वारा किसी अप्रस्तुत बात की व्यंजना होती है, वहाँ समासोक्ति अलंकार माना जाता है। इसकी योजना श्लिष्ट और अश्लिष्ट दोनों प्रकार के शब्दों द्वारा की जाती है। श्लिष्ट का उदाहरण देखिए —

तुही साँच द्विजराज है तेरी कला प्रमान।

तोपै शिव कृपा करी जानत सकल जहान॥

यहाँ पर प्रस्तुत तो चन्द्रमा की प्रशंसा है, किन्तु द्विजराज और शिव इन श्लिष्ट शब्दों के कारण भूषण कवि और शिवराज के परस्पर सम्बन्ध की व्यंजना भी हो गई है।

अश्लिष्ट का उदाहरण देखिए —

लोचन-मग रामहिं उर आनी। दीन्हें पलक कपाट सयानी।

यहाँ पर प्रस्तुत अर्थ के अतिरिक्त एक अप्रस्तुत अर्थ भी व्यंजित होता है। जैसे चंचल व्यक्ति को तभी बन्दी बनाया जा सकता है, जब उसे किसी स्थान में द्वार बन्द करके रखा जाये।

(39) मुद्रा अलंकार :— प्रस्तुत अर्थ का कथन करने वाले पदों से जब किसी दूसरे अर्थ की व्यंजना होती है, तब वहाँ मुद्रा अलंकार होता है। इसमें प्रायः ऐसे शब्दों का प्रयोग मिलता है, जो एक तो सामान्य अर्थ रखते हैं और दूसरा विशेष अर्थ रखते हैं। जैसे —

करुणे क्यों रोती है?

'उत्तर' में और अधिक तू रोई।

मेरी विभूति है, जो —

उसको भवभूति क्यों कहे कोई।'

यहाँ उत्तर और भवभूति का विशेष अर्थ क्रमशः उत्तररामचरित नाटक और भवभूति नाटक है।

(40) यथासंख्य अलंकार अथवा क्रमालंकार :— जब कवि क्रमशः कहे हुए अर्थों का पद में कहे हुए अन्य अर्थों से क्रमिक सम्बन्ध स्थापित करता है, तब वहाँ क्रमालंकार होता है। जैसे —

अमिय हलाहल मद भरे श्वेत श्याम रतनार।

जियत मरत झुकि झुकि परत जेहि चितवत एक बार।

(41) पर्यायोक्ति अलंकार :— जब कोई बात सीधे शब्दों में व्यक्त न करके घुमा-फिराकर दूसरे चमत्कारपूर्ण शब्दों में कही जाती है, वहाँ पर्यायोक्ति अलंकार होता है। यह दो प्रकार की होती है। एक तो वह जिसमें कवि सीधी सी बात को घुमा-फिराकर वर्णन करता है और दूसरी वह जहाँ किसी बहाने से वांछित कार्य का उल्लेख करता है।

पहली पर्यायोक्ति का उदाहरण —

सीता हरन तात जनि, कहेउ पिता सन जाय।

जो मैं राम तो कुल सहित कहहि दसानन आय।'

मैं रावण को मारूँगा, इसकी बात को दोहे में घुमाकर कहा गया है।

(42) विभावना अलंकार — विभावना अलंकार में कारण सम्बन्धी विलक्षण कल्पना मिलती है। जैसे— बिनु पग चलै सुनै बिनु काना।

कर बिनु कर्म करै विधि नाना।

(43) विशेषोक्ति :– कारण के होते हुए भी जहाँ कार्य का होना न वर्णित किया जाये, वहाँ विशेषोक्ति अलंकार होता है। जैसे –

अलि इन लोचन की कछु उपजी बड़ी बलाय।

नीर भरे नित प्रति रहैं तऊ न प्यास बुझाय।

यहाँ कारण नीर के होते हुए भी नेत्रों की प्यास का न बुझना रूपी कार्य वर्णित हुआ है, इसलिए यहाँ विशेषोक्ति अलंकार है।

## उभयालंकार

(1) संसृष्टि :– जहाँ पर कई अलंकारों की योजना एक साथ की जाती है, वहाँ संसृष्टि अलंकार होता है। इसके तीन भेद होते हैं –

(1) शब्दालंकार संसृष्टि (2) अर्थालंकार संसृष्टि (3) शब्दार्थालंकार संसृष्टि

इन तीनों प्रकार के अलंकारों में भिन्न-भिन्न अलंकार तिल और तंडुल के सदृश मिले रहते हैं, अर्थात् वे मिले भी रहते हैं और अलग भी रहते हैं।

(1) शब्दालंकार संसृष्टि का उदाहरण :–

मर मिटे रण में पर राम को हम न दे सकते जनकात्मजा।

सुन कपे सब में कल वीर के सुवन वारण वारण मुक्त हैं।'

इस उदाहरण में वृत्यनुप्रास और यमक, तिल-तंडुल न्याय से मिले हुए दिखाई पड़ते हैं। दोनों ही अलंकार शब्दालंकार हैं। इसलिए यहाँ शब्दालंकार संसृष्टि मानी गई है।

(2) अर्थालंकार संसृष्टि का उदाहरण :–

'सखि नीरवता के कंधे पर डाले बाँह

छाँह सी अम्बर पथ से चली।'

इसमें उपमा और रूपक अलंकार तिल-तंडुल न्याय से मिले हैं। दोनों ही अर्थालंकार हैं। इसलिए यहाँ अर्थालंकार संसृष्टि मानी गयी है।

<u>(3) शब्दार्थालंकार संसृष्टि का उदाहरण :-</u>

जीवन प्रात समीरण सा लघु विचरण निरत करो।

तरु तोरण तृण-तृण की कविता छवि मधु सुरभि भरो।

इसमें उपमा, यमक और वृत्त्यनुप्रास की संसृष्टि मिली है।

<u>(2) संकर</u> — जहाँ पर कई अलंकार नीर क्षीर न्याय से मिले हुए होते हैं, वहाँ संकर अलंकार होता है। जैसे —

करुणामय को भाता है तम के पर्दे में आना।

ओ नभ की दीपावलियों तुम क्षण भर को बुझ जाना।

इसमें दो रूपक हैं, एक तम के पर्दे में और दूसरा नभ की दीपावलियों में है। ये दोनों बराबर एक दूसरे की शोभा को बढ़ा रहे हैं। इसलिए एक दूसरे से नीर-क्षीर न्याय से मिले हुए कहे जायेंगे।

<u>कुछ पाश्चात्य अलंकार</u>

<u>(1) मानवीकरण</u> :- जब भावनाओं पर मानव-गुणों, रूपों और कार्यों का आरोप कर दिया जाता है, तब वहाँ मानवीकरण अलंकार होता है। जैसे -

सिन्धु सेज पर धरा वधू अब तनिक संकुचित बैठी-सी

प्रलय निशा की हलचल स्मृति में मान किये सी ऐंठी सी।'

यहाँ पर पृथ्वी पर वधू के रूप, गुण और कार्यों का आरोप किया गया है। इसलिए यहाँ मानवीकरण अलंकार है।

<u>(2) विशेषण विपर्यय</u> — भाव को तीव्रतर करने के लिए आधुनिक कवि विशेषण को अपनी वास्तविक जगह से हटाकर ऐसी जगह पर नियोजित करता है, जहाँ पर वह एक लाक्षणिक अर्थ देने लगता है। लाक्षणिक अर्थ से रचना का अर्थसौन्दर्य बढ़ जाता है। जैसे -

कल्पने आओ सजनि आ प्रेम की

सजल सुधि में मग्न हो जायें पुनः।

यहाँ पर सुधि को सजल कहना विशेषण विपर्यय है। ऐसा कहकर कवि ने एक ऐसे व्यक्ति के चित्र की व्यंजना की है, जो आँसू बहा रहा है।

## आलोच्य महाकाव्यों में अलंकार

### 'जननायक'

कुछ कवि अतिशय अलंकार प्रिय होते हैं। यद्यपि आजकल के कवियों में यह प्रवृत्ति कम ही देखी जाती है, किन्तु फिर भी कुछ अलंकारों के प्रति आसक्त से जान पड़ते हैं। इनके काव्य में अलंकारों का प्रयोग बहुत ही हुआ है जिससे इनकी अलंकार प्रियता का पता चलता है। इनके कुछ प्रिय अलंकार हैं, उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक अर्थान्तरन्यास, विभावना आदि।

अनुप्रास :— कवि तो फिर भी अनुप्रास के प्रति अधिक आकृष्ट नहीं प्रतीत होते, किन्तु फिर भी इसके कुछ उदाहरण महाकाव्य में मिल ही जाते हैं —

छैल छबीले बनकर छैला मानो चले छलों को छलने। (जननायक, पृ० 458)

× × × × ×

रिमझिम रिमझिम झरने झरते झुरमुट में झनकी झनकारें। (वही 458)

प्रथम उदाहरण में 'छ' तथा दूसरे में 'झ' का प्रयोग कई बार हुआ है।

यमक :— यमक अलंकार के उदाहरण काव्य में समुचित मात्रा में मिलते हैं। इससे काव्य में चमत्कार आ गया है। यथा —

पुतली बाई की पुतली में दुनिया की तस्वीर छिप गई। (वही, 27)

सेवाग्राम जहाँ बापू ने शूल बीनकर फूल खिलाये।

अंधकार में आ दीपक ने दीपक से नव दीप जलाये। (वही, 300)

इसमें प्रथम उदाहरण में पुतलीबाई गाँधी जी की माँ का नाम तथा दूसरी पुतलीबाई पुतली का आँखों की पुतली से तात्पर्य है। इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में प्रथम दीपक गाँधी जी के लिए प्रयुक्त है तथा दूसरे दीपक का तात्पर्य दीपक राग से है।

और भी — बदली थे व्रतों के ढंग्य बदली आधी दुनिया बदली।

उस युग द्रष्टा के वाणि को जपती बदली जनता बदली। (जन0343)

इस उदाहरण में एक बदली का अर्थ बादल तथा दूसरे का अर्थ बदलना है।

<u>पुनरुक्तिप्रकाश</u> — कवि ने भाषा में सौन्दर्य लाने के लिए पुनरुक्ति प्रकाश का प्रयोग किया है --

इस मुकद के चक्कर ने बीचड़ें बढ़ों का पथ रोका है।

जब भी पैर बढ़ा बढ़ने को सब मुकद ने ही टोका है।

पिसते पिसते पिसते पिसते घर में शान्ति नहीं मिल पाती।

फुकते फुकते छिदते छिदते, छाती छिल छलनी हो जाती। (वही, पृ05)

इसी प्रकार अनेक उदाहरण इस काव्य में भरे पड़े हैं।

स्वागत स्वागत स्वागत स्वागत, हरी हरी हरियाली बोली।

धन्य आज जग, धन्य आज जग, नव से नयी बिजली बोली॥

(जननायक, पृ0 28)

<u>उपमा</u> :— उपमा अलंकार के प्रति कवि का विशेष आकर्षण दिखाई पड़ता है, क्योंकि इसके उदाहरण पग-पग पर दिखाई देते हैं। गोखले, लोकमान्य तथा शेर फिरोज शाह की तुलना अलग-अलग उपमानों से की गई है —

गंगधारा बने गोखले, लोकमान्य 'सागर से गरजे।

शेर फिरोजशाह 'हिमगिरि' थे, जिनसे अत्याचारी लरजे।

हिमगिरि पर चढ़ना दुष्कर है, थाह नहीं मिलती सागर की।

गंगा की महिमा अपार है गति है जीवन के सागर की। (वही, 119)

यहाँ पर गोखले, लोकमान्य और फिरोजशाह की क्रमशः गंगधारा, सागर और

हिमगिरि से उपमा दी गयी है। इसी प्रकार —

गाँधी मान सरोवर में थे' मधुर हंसिनी-सी हँसमुख थी।

पीड़ा से पिघले पावस-सी गाँधी के जीवन में सुख थी। (जन0 147)

पतझड़ में कान्त सा बापू प्रिय आमों की ओर जा रहा।

'था' पीछे पदध्वनि की चलती साथ साथ मधुमास आ रहा। (वही, 301)

इसी प्रकार के सैकड़ों उदाहरण इस काव्य में खोजे जा सकते हैं। इसमें कवि को विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं हुई। बल्कि उपमा का प्रयोग सहज रूप से हुआ है।

<u>रूपक</u> :— कवि ने रूपक का प्रयोग भी यथास्थान किया है—

पिघले आत्मा का जीवन रस मानसरोवर में ही उतरा।

हृदय हंस मोती चुगने को लगा तैरने लहरा लहरा। (जनना0 पृ0 36)

पारस ने कठोर लोहे पर अपनी स्वर्णिम छाप छोड़ दी।

मन के आकुल घोड़े को सीधी ओर लगाम मोड़ दी। (वही, पृ0 61)

राजभक्ति के लिए वीर ने अन्तर के दरवाजे खोले।

भस्मासुर को वर दे डाला ऐसे थे मेरे शिव भोले। (वही, पृ0 199)

यहाँ प्रथम उदाहरण में हेमचन्द्र रूपी पारस ने गाँधी रूपी लोहे पर शुद्ध भावमयी स्वर्णिम छाप छोड़ दी। यहाँ पर सभी अंगों का वर्णन है। अतः सांगरूपक अलंकार है। दूसरे उदाहरण में गाँधी जी को शिव तथा अंग्रेजों को भस्मासुर कहा गया है।

राम बहुत समझाकर हारे, पर 'रावण' ने एक न मानी।

सकल विज्ञ पंडित 'रावण' की उल्टी मति से मिट्टी मिलानी। (315)

यहाँ गाँधी जी को राम तथा अंग्रेज अफसर को रावण के रूप में दिखलाया गया है।

<u>उत्प्रेक्षा अलंकार</u> — उत्प्रेक्षा अलंकार कवि का प्रिय अलंकार है। इसका प्रयोग इन्होंने बहुत किया है। प्रत्येक दो तीन पृष्ठ के बीच में उत्प्रेक्षा अलंकार का एक उदाहरण ढूँढा जा सकता है —

गाँधी जी अफ्रीका वकालत पढ़ने जा रहे हैं। यहाँ उत्प्रेक्षा सुन्दर बन पड़ी है –

सित कोट पतलून पहनकर मानो रवि जहाज से उतरा।
शान्ति सुधा वर्षा करने को मानो चाँद नाव से उतरा। (जननाo 52)
पर न्यायालय में जब पहुँचे पैर काँपने लगे पाँचक के।
मानो भग सीमा पर पहुँचा काँपने लगे प्रांचक के। (वही, पृo 74)

कवि की उत्प्रेक्षाएँ सहज स्वाभाविक हैं। इससे काव्य में सुन्दरता की ही वृद्धि हुई है–

पहुँच गए लाहौर रेल से भी हिल फूले नहीं समाए।
मानों आज अयोध्या फिर वन से राम लौटकर आये।
पागल से सब हुए हर्ष से बनी कृष्ण की गोपी मानो।
गाँधी की पदध्वनि में दुल दिल मानो बनने लगा पियानो। (वही, 201)
मानो चाँद धरा पर उतरा खेला सागर की गोदी में
चाँद दूर सागर से कितना पर है सागर की गोदी में।
धीरे धीरे बढ़े मंच पर मानो रथ बिजलियाँ चलतीं।
कम्पित हो निष्कम्प रथ से मानो रथ बिजलियाँ चलतीं।
मानो रिमझिम रिमझिम वर्षा बरस रही हो हरियाली में।
मानो मस्ती मचल रही हो – नीर भरी बदली काली में। (वही, 436)

<u>उदाहरण</u> – उदाहरण अलंकार का प्रयोग भी वर्ण्यमान विषय को पुष्ट करने के लिए किया गया है। कवि ने यहाँ भारत की परतंत्रता का वर्णन किया है।–

अँग्रेजी सरकार कि जिसने स्वतंत्रता का किया अपहरण।
सीता को ले गया चुराकर – जैसे छलकर राक्षस रावण।

<u>उल्लेख</u> :– कवि ने गाँधी जी को अनेक रूपों में व्यक्त किया है।

करुणा बने दीन जन जन को रोये तो बरसे गंगाजल।
जले तो दीपक बन जायें उमड़े तो खिल जायें उत्पल।
× × × ×

रंग भरें तो बने तूलिका, सुलझे तो उलझन सुलझायें।

इसी प्रकार गांधी जी को कभी हृदय, कभी प्राण, कभी भाग्य आदि के रूप में व्यक्त किया गया है —

तुम हृदय के प्राण हो तुम, भाव भाग्य मुद्रित हो तुम।

हंस हो कवि के हृदय में नित्य सुन्दर मुद्रित हो तुम।

तुम दया के गीत हो तुम पाप के उद्धार हो तुम।

बहुत कोमल हो कमल तुम करुणा के कबीर हो तुम।

× × × × ×

ताप के हम शीत हो तुम, पाप के हम पुण्य हो तुम।

कौन तुम कैसे हुए अब हो गये सब आज गुमसुम। (वही, पृ0 506)

<u>विभावना</u> — यहाँ बिना कारण के ही कार्य हो रहा है —

सूरज ही से निकल रश्मियाँ — आँखों को प्रकाश देती हैं

आँखों की भाषाएँ मन को — रस्सी बिना बाँध लेती हैं। (जनना0222)

और भी — स्वतंत्रता जब चली किले में बिना जलाये दीप जल गये।

स्वतंत्रता ने घूँघट खोला, ऋषि मुनियों के पुष्प फल गये।

स्वतंत्रता के दर्शन पाकर बिना सजाये लोक सज गये।

स्वतंत्रता की रुनझुन सुनकर बिना बजाये साज बज गये। (वही, 472)

<u>अर्थान्तरन्यास</u> :— कवि ने प्रथम वाक्य को पुष्ट करने के लिए दूसरे वाक्य का प्रयोग किया है, जबकि मतलब पहले वाक्य से ही पूरा हो जाता है —

स्वतंत्रता सुख का दीपक है पराधीन दुःखों से बदतर

झण्डा जीवन का प्रतीक है, उठ मानव झण्डा ऊँचाकर।

× × × × × ×

झण्डे का सम्मान अमर है — तब ही हम पूजे जायेंगे।

यदि झुक गया निशान हमारा तो हम ठोकर ही खायेंगे। (वही, 280)

और भी— हिन्दुकुश को कुछ बापू ने कहा कद में निर्वाचन के।

औषधि दवाई हुआ करती है— मन की दवा जब पावन है। (जनना० 308)

कई स्थलों पर कवि ने साधारण बात को कहकर जो विशिष्ट उदाहरण द्वारा समर्थित किया है और कई स्थानों पर साधारण बात का समर्थन साधारण बात द्वारा ही किया है —

आग फूस से कभी न बुझती, उलटी और धधक उठती है।
दमन नीति सफलित न बनती नागिन सदृश भभक उठती है। (वही, 235)
यदि अंग्रेज चले जायें तो हम आपस में मिल जायेंगे।
कांटे अगर न बींधे हमको— फूल यहाँ पर खिल जायेंगे।

<u>मुद्रा</u> :— काव्य में सौन्दर्य लाने के लिए कहीं-कहीं पर मुद्रा अलंकार का भी प्रयोग किया गया है। किन्तु इसके बहुत कम ही उदाहरण है —

गाँधी जी लंदन जा रहे हैं। वे जहाज में बैठे। जैसे ही उनकी यात्रा शुरू होती है, समुद्र में बहुत तेज तूफान आ गया। गाँधी जी सभी यात्रियों को ढाढ़स बंधा रहे हैं —

खेला याजी डरो न भाई, तट पर यह मँझधार चलेगा।
आज भँवर से होड़ लगी है आज जीत का दाँव चलेगा।
डगमग डगमग यान हो गया फेन फैला लहरें टकराईं।
तूफानों के तेज थपेड़े लहरें छाती पर चढ़ आईं। (वही, 121)

इसमें एक तो साधारण अर्थ है कि गाँधी जी सागर में फँसे यात्रियों को ढाढ़स बँधा रहे हैं। दूसरा अर्थ है कि गाँधी जी यात्रियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि यदि आज तुम कष्ट रूपी भँवर में फँसे हो, तो कभी न कभी जीत का दाँव अवश्य चलेगा।

मानवीकरण :— कवि ने प्रकृति को मानवी के रूप में चित्रित किया है —

हृदय हृदय में सिहर सिहर कर मधुर मधुर झनकार सुना।
मस्त तरंग की तान सुनाकर अन्तस्तल के तार बजाये।

गंगा-तट पर प्रकृति प्रिया का लहरों ने श्रृंगार किया था।

और तपस्या के गीतों ने उसे दूर से प्यार किया था।

शशि सूर्य का कुमकुम टीका छवि अलबेली पहिन चली थी।

तारों का सतलड़ा पहिनकर चमकाती अति गली गली थी।

इन्द्र धनुष से उन नयनों में मधुर घटाओं का था अंजन।

उन आँखों से आँख मिलाता — वन में घूम रहा था खंजन। (जनना० 177)

भ्रांतिमान :— गाँधी जी को देखकर दीपक और चन्द्रमा का भ्रम हो रहा है —

पूजा में गाँधी बैठे थे दीप समझ कर शलभ आ गये।

चन्दा समझ चकोर चले मधु मेघ समझ कर मोर छा गये।

स्वाति समझकर चातक दौड़े सूर्य समझकर कमल खिल गये।

मन-सागर में गये ज्वार थे, भक्तों को भगवान मिल गये।

× × × × ×

समझ बसन्त सन्त बापू को पतझड़ में ऋतुराज राजता।

सावन भादों समझ उन्हीं को कृषियों पर झूला विराजता। (वही, 429)

दिव्य देवियाँ नहा रही थीं चमक पड़ रही थी पानी पर।

आग समझ जल के पानी को भाग चली मछलियाँ फुदककर।

विरोधाभास :— आपस में विरोधी शक्तियों को एक साथ दिखाकर इस अलंकार का प्रयोग किया गया है। यहाँ गाँधी जी का चित्रण दृष्टव्य है —

मुट्ठी भर जर्जर शरीर वह सब वीरों में महावीर था।

जो न मिटाने से मिट सकती — वह ऐसी अद्भुत लकीर था। (वही, 513)

'वर्द्धमान'

अनुप्रास :— अलंकार निर्वाह के लिए शब्दावृत्ति, वर्णावृत्ति और अनुप्रास आदि का यथोचित उपयोग किया गया है —

भयद हेमन्त नरेश भूप की

सुदीर्घ हेमन्त निशीथ आयु की

सुसह्य हेमन्त रवीश पाई के

विनष्ट हेमन्त नरेश शत्रु के। (वर्द्धमान, 45-43)

परम्परागत अलंकार-कौशल के अतिरिक्त कविवर अनूप ने वर्द्धमान काव्य में अपनी भावमयी कल्पना से सुषमा के अनेक नये सुमन उपजाये हैं।

विलोचनों में ~~द्युति~~ सर्पिणी प्रभा,

पदाब्ज में पावक वर्षिणी प्रभा,

कराब्ज में उत्पल वर्षिणी प्रभा,

मृणालिका की रति-तर्पिणी प्रभा। (वही, पृ० 36-85)

<u>यमक</u> — कवि ने यत्र तत्र इस अलंकार का प्रयोग कर काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि की है—

यहीं कहीं कुण्डलनाम की पुरी,

स्वदेश के कुण्डल-सी मनोरमा (वही, पृ० 40-22)

यहाँ पर कुण्डल शब्द का प्रयोग दो बार किया गया है, जिसमें पहले कुण्डल का अर्थ नगर विशेष है तथा दूसरे कुण्डल का तात्पर्य कर्ण-कुण्डल है।

विहार से आ करती विहार है,

पयस्विनी मानस राज निःसृता। (वही, पृ० 287-9)

इसी प्रकार यहाँ पर विहार शब्द का दो बार प्रयोग किया गया है, जिसमें क्रमशः बिहार राज्य तथा विहरना अर्थ है।

कवि ने श्लेष, रूपक, उपमादि अलंकारों का सहज रूप में प्रयोग किया है —

कि श्याम अली -अलिनावृता यही

कि रम्य नाभी रस लिप्सिता दिवा

कि व्याप्त काली मसि अंतरिक्ष में,

कि भूमि आवेष्टित है तमिस्र में। (वर्द्धमान, पृ0 103)

तड़ाग थे स्वच्छ तड़ाग हो यथा,

सरोज थे फुल्ल सरोज हो यथा

शशांक भू का मंजु शशांक हो गया

प्रसन्नता पूर्ण शरत्स्वभाव था। (वही, पृ0 140)

उपमा :- भगवान की माता रानी त्रिशला के वर्णन में कवि ने उपमाओं की मनोहारिणी लड़ी पिरोयी है। त्रिशला कल्पवल्लरी के समान ही प्रतीत होती है —

सुपुष्पिता दन्त-प्रभा-प्रभाव से

सुवासिका पल्लविता सुगंधि से।

सुकेशिनी मेचक-भृंग-पुंज से

अनल्प थी शोभित कल्पवल्लरी। (वही, पृ0 50/59)

कवि की कल्पना का कौशल देखिए कि उसने त्रिशला की उँगली को साक्षात् महाभारत की कथा बना दिया है —

नलोपमा, अलवती स उर्मिका

मनोहरा सुन्दर पर्व संकुला।

नरेन्द्र जाया कर अंगुली लसी

कथा महाभारत के समान थी। (वही, पृ0 60-102)

त्रिशला के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि ने उपमा का सुन्दर प्रयोग किया है —

सु-आनना सुन्दर-चन्द्र कान्तसी,

सुकेशिनी नील-शिखा-समान थी,

सु-पाद से आरूण पद्म-रागसी

सुशोभिता रत्नमयी सुभीरू थी।' (वही, पृ0 49-55)

<u>रूपक</u> :— कवि ने जीवन की व्याख्या अनेक तरह से की है। उसने इस संसार को शतरंज तथा यहाँ के जीव को खेल की वस्तु कहा है —

महानीति की शतरंज है सिखो
नरेश प्यादे सब खेल-वस्तु हैं।
चले चलाये कुछ देर के लिए
हुए इकट्ठे फिर एक ठौर में। (वर्द्धमान, पृ0 305-83)

इसी प्रकार कवि ने कभी जीवन को पानी का बुलबुला कहा है, तो कभी पुष्प, कभी रंगभूमि और कभी शतरंज —

मनुष्य का जीवन एक पुष्प है
प्रफुल्ल होता यह है प्रभात में
परन्तु छाया जब सांध्य काल की
विकीर्ण होके गिरता दिनान्त में। (वही, पृ0 306-85)

<u>उदाहरण</u> :— राजा सिद्धार्थ को विजयश्री उसी प्रकार नहीं छोड़ती, जिसप्रकार प्रभव से पूर्ण पति को उसकी स्त्री —

न स्वप्न में भी रण-दक्ष भूप को
विमोचती थी सुभगा जयन्दिरा
प्रभव से पूर्ण यथैव कान्त को
न छोड़ती है वनिता रतिप्रिया।

कुमार के मन में अनेक प्रकार के विचार उठते हैं —

सुषुप्ति में निर्भर ज्यों कभी कभी
सुस्वप्न देते शुभ आत्म-बोध के,
विचार कुछेक कुमार-चित्त में
प्ररोहते आत्मिक भव्यभाव के। (वही, पृ0 354-37)

इसी प्रकार जब कुमार महावीर तीर्थंकर हो जाते हैं, तब स्थान स्थान पर अपने विचार व्यक्त करते हैं। यह संसार उसी प्रकार भ्रम में पड़ा हुआ है, जिस प्रकार ज्ञानहीन शिशु अंगुष्ठ को स्तन समझ कर पान करता है —

स्वकीय अंगुष्ठ उरोज-भ्रांति से
यथैव पीता शिशु ज्ञान-हीन है,
तथैव प्राणी सुख-भ्रान्ति में पड़ा
न पा सका सार असार विश्व का। (वर्द्धमान, पृ० 411-32)

दीपक — राजा सिद्धार्थ हाथी, घोड़ा, सोना, धन, धान्य, धरती आदि से समृद्धि-वान् नहीं है, बल्कि अखण्ड सौभाग्यवती पत्नी से युक्त होने के कारण समृद्धिवान् है। यहाँ समृद्धिवान् शब्द का प्रयोग एक ही बार किया गया है, किन्तु दोनों अर्थों का वाचक है— न हाथियों से, हय से, हिरण्य से,
न धान्य से या धन से धरित्रि से
नृपाल सिद्धार्थ समृद्धिवान् है,
अखण्ड सौभाग्यवती स्वनारि से। (वही, पृ० 68-133)

अपन्हुति — यहाँ पर कवि ने प्रभात के वास्तविक कारण को छिपाकर जैन धर्म के प्रभाव का वर्णन किया है —

दिनेश आरूढ़ न विश्व में हुआ,
विलोक मिथ्या-मत [illegible] के छिपे,
उषा न आयी नभ में धरित्रि में,
प्रभात आया जिन धर्म-चक्र का। (वही, पृ० 584-237)

उत्प्रेक्षा — काव्य में कहीं-कहीं इस अलंकार का प्रयोग किया गया है। महावीर अपने सहयोगियों के साथ एक जंगल से जा रहे हैं। एक स्थान पर इन लोगों को आग जलती हुई दिखायी देती है। कवि इसमें वृष राशि के सूर्य के ताप की उत्प्रेक्षा कर रहा है। जो अत्यन्त स्वाभाविक एवं सुन्दर बन पड़ी है —

जिनेन्द्र ही एक विचित्र सूर्य हैं

सदा प्रकाशी दिन में निशीथ में

न लीन होते, घन ओट से छुपी

न था सकेगा कुछ अंधकार भी।(वर्द्धमान, पृ0 516-93)

व्याजस्तुति (व्याजोक्ति :)— राजा सिद्धार्थ की प्रशंसा में कही गयी निम्नांकित व्याजोक्ति विशेष उल्लेखनीय है। जो लोग सिद्धार्थ को सब कुछ देने वाला मानते थे, उन्हें यह देखकर निराश होना पड़ा कि सिद्धार्थ ने कभी भी अरि को पीठ और परनारि को वक्षदान नहीं किया। सिद्धार्थ सर्वज्ञ भी नहीं हैं, क्योंकि उन्होंने कभी यह जाना ही नहीं कि नकार क्या होता है :—

परन्तु जो सर्वद सर्वदा उन्हें

विचारते थे, वह थी निराशा के

न पीठ पाई अरिवृन्द ने कभी

न वक्ष देखा पर नारि ने तथा

सदैव सर्वज्ञ न भूमिपाल थे

न जानते थे उनका यथापि वे

नकार होती किस भांति की कभी

अनाथ को आश्रित को अभाव को।(वही, पृ0 44, 36-37)

विरोधाभास :— राजा सिद्धार्थ निर्लिप्त होकर राज्य का शासन करते हैं, इसलिए उन्हें विदेह कहा गया है। वे सदेह होकर भी विदेह हैं —

स्वभाव से आप पवित्र देह हैं

सदेह हैं किन्तु सदा विदेह हैं।(वही, पृ0 270)

विभावना :— एकाध स्थानों पर इस अलंकार के भी दर्शन होते हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

सूर्य का प्रकाश होने के तत्काल तारागण का लोप हो गया, इसे कवि ने जिस ढंग से

व्यक्त किया है —

यथा-यथा स्पंदन व्योम के तले

चला बढ़ा आतुर तीव्र चाल से

तथा तथा तारक उच्च धाम के

हुए परिम्लान प्रकाश-बिन्दु से। (वर्द्धमान, पृ० 5।3-83)

मानवीकरण — कवि ने पृथ्वी को मानवी के रूप में चित्रित किया है, अतएव यहाँ मानवीकरण अलंकार है —

जहाँ मही की दृढ़ मेरु दण्ड सा

समुच्च प्रालेय-गिरीन्द्र राजता,

महीध्र कैलाश विशाल कुम्भ-सा

किरीट-सा मेरु विराजता जहाँ। (वही, पृ० 37-10)

सु केश-सी कानन श्रेणियाँ जहाँ

प्रलम्ब माला-मणि-अर्क-जाह्नुजा

कटि व विन्ध्याद्रि नितम्ब-देश-सा

सदा पद-प्रक्षालन शील सिन्धु है। (वही, पृ० 37-11)

'रावण'

उत्प्रेक्षा :— कवि ने उत्प्रेक्षा के माध्यम से प्रकृति का स्वाभाविक और सजीव वर्णन किया है। प्रकृति के विभिन्न रूपों की सरस अवतारणा की गयी है। संध्या, चन्द्रोदय, सूर्योदय आदि के दृश्य बड़े ही अभिराम और मनोहारी हैं। विन्ध्याटवी में सरोवर की छटा चित्ताकर्षक है।[1] प्रभात में प्राची के भाल पर उषा द्वारा लगाया गया सिन्दूर भी दर्शनीय है।[2]

---

1- रावण, पृ० 13    2- रावण, पृ० 2

प्रयुक्त अलंकार स्वाभाविक हैं। उत्प्रेक्षाएँ प्रभावशाली हैं। श्वेत कमलों और सेमर वृक्ष के बिम्ब की व्यंजना रोचक है।—

मानो सुधा और कालकूट की सुदीप्ति ले,

एक साथ सागर ने दामिनी प्रगटाई है। (वर्द्धमान, सर्ग1, 16)

मानों भयानक-महोदधि-शरणागत को

सागर ने लीन्हुई निज तल ही छिपाई है। (वही, सर्ग1, 17)

## 'जय भारत'

रूपक :— शान्तनु सत्यवती को एक बार देखकर ही मोहित हो जाते हैं। उनका मन इसी प्रकार अन्धा हो जाता है —

हुआ निमेष मात्र में उनका मोहित मनो मधुप अंध। (जयभारत, पृ0 31)

इसी प्रकार एकलव्य को शंकर के बालरूप में चित्रित किया गया है —

प्रौढ़ शबर रूपी शंकर का बाल्य रूप-सा वाम,

आया एक नवयुवक उसने गुरु को किया प्रणाम। (वही, पृ0 52)

उत्प्रेक्षा :— कवि ने इस अलंकार का प्रयोग भी सुन्दरता के साथ किया है। पाण्डवों को बारह वर्ष का निर्वासन दिया ~~दिया~~ गया है। द्रौपदी एक दिन अकेली कुटी के नीचे खड़ी पाण्डवों की राह देख रही है। इसकी कवि ने सुन्दर उत्प्रेक्षा की है —

आश्रम में कृष्णा कदम्ब की शाखा धरे खड़ी थी,

मानो किसी कुशल शिल्पी ने मन की मूर्ति गढ़ी थी। (वही, पृ0223)

इतने में ही जयद्रथ अपने मन में पाप लिये आ जाता है —

प्रेयसि कूजे भिन्न कण्ठ से सुनकर कृष्णा चौंकी

मानो मीठी छुरी किसी ने आकर उर में भोंकी। (वही, पृ0223)

इसी प्रकार कृष्ण के अलौकिक रूप का वर्णन करते समय सुन्दर उत्प्रेक्षा की गयी है —

यों चिन्ह कोरों में अंकित थे कुण्डलों के सोहते,

मानो लिखित आनेर वाकिफ कौन है मन मोहते।(जयभारत, पृ0299)

यहीं कर्ण नाम की चीज को नहीं जानता, किन्तु घटोत्कच उसके भी छक्के छुड़ा देता है—

भय कहते हैं जिसे कर्ण न था जानता

छक्के से छुड़ा दिये परन्तु घटोत्कच ने।

मानो भीम भैरव ही उसके बहाने से

कौरवों की सेना ध्वंस करने को आ गये।(वही, पृ0 390 )

<u>उदाहरण</u> :— उदाहरण अलंकार का प्रयोग कवि ने अप्रस्तुत प्रस्तुत विधान के रूप में किया है। अप्रस्तुत प्रस्तुत विधान देखिए —

जैसे धर्म-मानी भूखी जाय तीर्थ कृत्य को,

और घर बार सौंप जाय भले भृत्य को,

सौंपा अपने को यह राज्य वैसे जानो तुम

आती उसे मानो निज धर्म पहचानो तुम।(वही, पृ0 16)

इसी प्रकार द्रौपदी के चीर-हरण के समय का वर्णन है। कपोत आँखें बन्द कर लेता है और निश्चिन्त हो जाता है। इस अप्रस्तुत विधान से धृतराष्ट्र की सभा में बैठे हुए सभासदों के प्रस्तुतविधान का बिम्ब ग्रहण किया गया है। द्रौपदी सभी सभासदों को धिक्कारती है —

पाप-सभा में ये गुरूजन भी बैठे हैं निश्चल नत भाल।

नैन मूँद मानो कपोत ज्यों नहीं कहीं भी व्याल-बिडाल।(वही, पृ0 146)

<u>अर्थान्तरन्यास</u> :— स्थान स्थान पर कवि ने इस अलंकार के प्रयोग द्वारा काव्य सौन्दर्य में वृद्धि की है। शान्तनु सत्यवती को देखकर आकर्षित होते हैं, किन्तु उसके पिता द्वारा शर्त रखने पर बीमार पड़ जाते हैं —

भोगने से कब घटे हैं रोग क्यों राग?

और बढ़ती है निरन्तर ईंधनों से आग।(वही, पृ0 29)

कर्ण एक वीर पुरुष है, किन्तु भाग्य के प्रहार से वह भी नहीं बचता और वह भी भाग्य को मानता है। भाग्य पीटने से भाग्य का लेख नहीं मिटता है।

भाग्य पीटने से भाल लेख नहीं मिटता।

दुर्बल ही दैव के प्रहार से है पिटता। (जयभारत, पृ0 124)

प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र अपने बेटों के मोह के कारण हिताहित का भेद खो चुके हैं। इसलिए उनका मोह उनका उसी प्रकार विनाश करेगा, जिस प्रकार नदी का जल किनारे के वृक्षों को नष्ट कर देता है —

फूटेगा यह बाँध कहीं न कहीं से पानी,

पहले ही नालियाँ न हों तो घर वीरानी।

घुस आते हैं यथा उन्हीं से कभी सरीसृप

गेह-तुल्य ही देह-दशा भी यही गई नृप

इन्द्रिय रन्ध्रों से आ घुसे विष-विचार जो चित्त में

तुम उन्हें दूर कर दीजिए स्व कल्याण निमित्त में। (वही, 325)

मोह की ऐसी रीति है, वह अपनों को मारता

क्या नहीं निम्नगा नीर निज तट-तरु मूल विदारता। (वही, पृ0 331)

'पार्वती'

रूपक — कवि ने रूपक अलंकार का बहुत अधिक प्रयोग किया है। कुमार प्रतिदिन बाल्यकालीन सूर्य की भाँति बढ़ रहे थे। तन रूपी सरोवर में सौन्दर्य रूपी कमल विकसित हो रहा था —

बाल रश्मि-सा बढ़ रहा था नित्य मुख का ओज,

खिल रहा था देह-सर में रूप का अम्भोज।। (वही, 302)

**अर्थान्तरन्यास :—**

सभी देवता ब्रह्मा जी के पास अपनी व्यथा कहने जाते हैं। गुरु ब्रह्मा जी से कहते हैं कि उस राक्षस को सन्तुष्ट करने के सभी उपाय व्यर्थ हो गये हैं, उसका उत्पात घटने के बजाय बढ़ रहा है। दुष्ट हैं अनुनय-विनय से नहीं, अपितु दण्ड से वश में होते हैं :—

इस प्रकार आराधन से भी होता असुर न तुष्ट,
शुश्रूषा से नहीं, शक्ति से सीधे होते दुष्ट।

(पार्वती, सर्ग 4, स्वर्ग की पुकार पृ0सं0 102)

**उदाहरण :—**

कवि ने इस अलंकार का प्रयोग भी यथास्थान काव्य में सौन्दर्य लाने के लिए किया है। देवता ब्रह्मा जी से कहते हैं कि असुर पर विजय प्राप्त करने से सम्बन्धित हमारे सभी उपाय उसी प्रकार व्यर्थ हो गये हैं, जिस प्रकार सन्निपात होने पर सभी प्रकार के उपचार व्यर्थ हो जाते हैं :—

अस्तु त्रिलोक त्रस्त है उसके उत्पातों के हाथ,
असुर विजय के हुए हमारे असफल सभी उपाय।
जैसे सन्निपात ज्वर में जब बढ़े त्रिदोष विकार
सारवती औषधियाँ भी सब हो जातीं निस्सार।

(वही, सर्ग 4, स्वर्ग की पुकार, पृ0 105)

सरस और गम्भीर भाव से बरसे चतुर्दिग्जल( पार्वती, स0 4, पृ0105)

उत्प्रेक्षा :—

तारक के अत्याचार से सभी देवता त्रस्त हैं। ऋतुराज भी त्रस्त हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है, मानों काल भी तारकासुर का दास बन गया है —

असुरों का आतंक छा रहा बन रोष का नीहार
शोणित पुर में सूर्य न सकता बिखेर खुल प्रकार
निकले से कम असुर करों में होता-कमलोन्मेष
केवल उतना ही करता है तप निस्सार दिनेश। (वही, पृ0101)
मानो आ अजेय तारक का हुआ काल भी दास।
विपर्यस्त सा हुआ काल क्रम ऋतुओं का विन्यास। (वही, पृ0 101)

व्यतिरेक :—

पार्वती-सौन्दर्य की तुलना में सभी उपमान फीके पड़ जाते हैं। पार्वती के आनन और नेत्रों के सौन्दर्य-वर्णन में व्यतिरेक अलंकार की छटा दिख-लायी पड़ती है —

आनन के अपरूप रूप से शंकित होकर मन में
अम्बर की लज्जा से कलुषित हुआ मयंक गगन में
चंचल की लोचन की शोभा से विह्वल मीन बिचारी
उत्पीड़ित धा रा में फिरती लोक लाज की मारी।
वीक्ष पार्वती के चल चितवन हरिणी अपने मन में
अनुभूति से लज्जित हो छिपती फिरती गिरि-कानन में॥

(पार्वती, हिमालयखं0, पृ0 60)

मानवीकरण :-

प्रथम उषा ने ज्योति करों में लेकर नभ का नीलम थाल

की उज्ज्वल आलोक आरती, ज्वलित विगलित मृदुल सम्हाल

अरुणा ने निज स्वर्णकरों में लेकर रवि का मुकुट महान

उन्नत मस्तक पर पहनाया गा जीवन के मंगल गान। (पार्वती, पृ0 30)

यह प्रकृति पहन सुन्दर वासन्ती सारी,

हो रही स्वयं अपनी छवि पर बलिहारी

उस पर नीलाम्बर ओढ़ नवीन निराला,

ले भुवन मोहिनी प्राणों की ले वरमाला। (वही, सर्ग27, शिवसप्रकृतिवर्णन, 553)

यहाँ कवि ने प्रकृति का मानवीकरण किया है। प्रथम उदाहरण में ऊषा रूपी स्त्री ज्योतिरूपी हाथों में आकाश रूपी नीला थाल लेकर किरणरूपी वस्त्र सम्हालती हुयी आरती कर रही है। अरुणा ने अपने स्वर्ण रूपी हाथों से सूर्यरूपी महान् मुकुट को हिमालय के ऊँचे मस्तक पर मंगल गान गाते हुए पहना दिया।

इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में भी प्रकृति का मानवीकरण दृष्टव्य है।

भ्रान्तिमान :- शिव की बारात में सभी देवता बाराती हैं। उन्हें देखकर देखने वालों के मन में हिम-शृंगों का भ्रम हो जाता है —

देख के बरातों के तन की उज्ज्वल कांति,

होती वृन्दाओं के मन में सहसा भ्रान्ति

चन्द्र प्रभा से धौत समुन्नत शुचि हिम शृंग

आये हैं कैलाश अद्रि के घर नव अंग। (वही, पृ0 224)

'मीरा'

प्रस्तुत महाकाव्य में अनेक अलंकारों का प्रयोग किया गया है, जिनमें से अनुप्रास, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों ने काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाया है —

<u>अनुप्रास</u> :— निम्नांकित पंक्तियों में वृत्यनुप्रास की छटा दिखलायी पड़ती है —

जगमग जगमग जगमग जल जल (मीरा, पृ0 158)

यहाँ पर 'ज' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति की गयी है। इसी प्रकार निम्नांकित पंक्तियों में 'स' की आवृत्ति हुई है —

शिव सुन्दर सत्य सुभाषिनी। (मीरा, पृ0 190)

<u>उपमा</u> :— इस अलंकार के प्रयोग ने काव्य में सौन्दर्य ला दिया है। मीरा ससुराल पहुँचती है। सभी स्त्रियाँ आके रूप की प्रशंसा करती हैं —

नाम मीरा नीरजा की मुकुल सा अभिराम

बाल रवि की अंशुओं के जाल सा छवि धाम

हिम सा उज्ज्वल मराल कुमार वपु समान।

× × × ×

वेणियाँ ज्यों शेष की प्रिय पालियाँ विकराल

कवि ने मीरा का सौन्दर्य-वर्णन रीतिकालीन कवियों की परम्परा से हटकर किया है। इसमें कवि की मौलिकता के दर्शन होते हैं।

इस प्रकार कवि ने पंचम सर्ग में मीरा के सौन्दर्य का वर्णन करते समय प्रत्येक अंग तथा प्रत्येक वस्तु का वर्णन किया है। कोई भी वस्तु अछूती नहीं रही। इस महाकाव्य में कवि ने जीवन की व्याख्या करते हुए उपमा अलंकार का जाल सा बिछा दिया है —

जीवन पथ सा विस्तृत अनंत

सुख की दुख की दो सड़कें जिनसे आच्छादित दिग्दिगंत

ये सघन पर्ण अभिलाषायें जो हरी भरी कोमल ललाम
विहगों के दल हैं स्वप्न जाल उड़ते नभ में जो तम विराम।
(मीरा, पृ0 128)

पति की मृत्यु के उपरान्त मीरा का जीवन शुष्क हो जाता है। वह अपने जीवन में निराश हो जाती है। कवि सुख और दुख दोनों को ही इस पथ में आवश्यक मानते हैं—

दुख ही दुख केवल नहीं यहाँ

सुख भी है दुख के ही समान

यदि एक अब्धि सा विस्तृत

तो दूसरा हिमालय सा महान्। (मीरा, पृ0 204)

कवि आशा और निराशा में आशा को श्रेष्ठ मानते हुए कहता है —

आशा है किरणों का वितान

जिस ओर फूट पड़ती स्वर्णिम हो जाता सरित वहाँ वितान।

(वही, पृ0 210)

रूपक :— मीरा के मन में आशा-निराशा आती जाती रहती है —

मन अंबर में आशा पंछी

कभी कभी उड़ जाता

निरख निराशा तिमिर घटाएँ

पीछे ही मुड़ आता। (वही, पृ0 86)

उदाहरण :— कवि काव्य की शुरुआत ही उदाहरण अलंकार द्वारा करता है—

पतिका एक लघु लघु सुन्दर

चुपचाप मौन निस्पन्दित स्वर

ज्यों वीणा

साधक का ज्यों आराधित मन

ज्यों कवि का लोकोत्तर चिन्तन

त्यों दीप-शिखा सी नत व्रीडनलीन (मीरा, पृ0 1)

कवि ने मीरा की विरह दशा को, उसके भविष्य को, उसके निराश अंधकारयुक्त जीवन को अनेक उदाहरणों से व्यक्त किया है; जो कवि की एक मौलिक कल्पना है —

जितना तम नभ में फैला था

उतना ही अन्तर में अपार

तन में तारों की ज्यों उर में

स्मृतियाँ जलती थीं दुर्निवार। (मीरा, पृ0 212)

<u>अर्थान्तरन्यास</u> :— राणा कुंभा और मीरा जीवन की व्याख्या अपने अपने ढंग से करते हुए कहते हैं —

जीवन में मधु भरा न हो तो

पात्र रहेगा खाली

ईश्वर का जीवन नीरस यदि

हो न जगों की लाली। (वही, पृ0 89)

इसी प्रकार मीरा के दुःखी और निराश अवस्था का चित्रण अत्यन्त करुण है —

दुख देख करें उत्सर्ग प्राण

क्या जीवन का बस यही ध्येय?

पतझड़ का पत्र-हीन तरु क्या

समझा करता निज प्राण देय। (वही, पृ0 205)

दुख ही उन्नति का मूल स्रोत

दुख में क्यों साध्य रहे भूल?

जैसे जग को सौरभ देते

काँटों में भी तो उगा फूल। (वही, पृ0 206)

इस प्रकार यहाँ दुख को ही उन्नति का मूल स्रोत कहा गया है।

<u>उत्प्रेक्षा</u> — अंधकार की भयानकता को कवि ने जिस ढंग से व्यक्त किया है —

अंधकार के महाशिखर से

सांय सांय ध्वनि आती थी

मानो जग की सघन कालिमा

सिर धुन धुन पछताती थी। (मीरा, पृ0 18)

इसी प्रकार मीरा और राणा दोनों एक दूसरे से विपरीत स्वभाव वाले हैं। उनकी

कवि ने कितनी सुन्दर उत्प्रेक्षा की है —

एक थी दुनिया से अनभिज्ञ
दूसरा अतिरिक्त विद्वान्
हो गये मानो तिनके जीर्ण
इसलिए नया नीड़ निर्माण

<u>उल्लेख</u> :— राजा अपना तथा मीरा का अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं —

मैं वर्षोन्मुख घन संग संग
तुम निर्झरिणी मैं शैल शृंग
मैं इन्द्र-धनुष तुम विविध रंग
× × ×
तुम ज्वाला मैं निर्मल स्फुलिंग
तुम मृग-तृष्णा मैं चल कुरंग। (मीरा, पृ० 88-89)

## एकलव्य

एकलव्य की अलंकृत शैली भावों का अनुकरण करने वाली है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा मानवीकरण आदि अलंकारों की स्वाभाविक छटा दर्शनीय है। प्रस्तुत-अप्रस्तुत का विधान भी श्लाघ्य है —

बीच में उठता है वो शाखवृन्द पत्तों में
सुदृढ़ वक्ष है जैसे अविचल धैर्य है।
पल्लवों की हँसी छाया-पल्ली है शीतल
जैसे शालीनता में है बना कहीं हुई।' (एकलव्य, पृ० 192)

एकलव्य में निम्नांकित अलंकारों का प्रयोग किया गया है —

<u>अनुप्रास</u> :— इस अलंकार का प्रयोग कम ही किया गया है। निम्नांकित पंक्ति में न की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास है —

यह नाद नील नभ में निनाद से,
बिखरा दिशाओं मध्य।

इसी प्रकार निम्नांकित पंक्ति में भी वृत्त्यनुप्रास है —

तक्षक से क्रूर कुटिल पन्थी ने मारे हैं। (एकलव्य, पृ० 249)

<u>यमक</u> :— द्रोणाचार्य अपने पुत्र अश्वत्थामा को अमृत पिलाने की कामना करते हैं। इसे कवि ने निम्नांकित ढंग से व्यक्त किया है —

पुत्र पान करे सुधान्धार सुधाधार से। (वही, पृ० 39)

यहाँ पर एक सुधान्धार का अर्थ अमृत की धारा तथा दूसरे का अर्थ चन्द्रमा है।

<u>उपमा</u> — सभी राजपुत्र अपने शस्त्र प्रदर्शन के लिए क्रीड़ाभूमि में एकत्र होते हैं। उनकी उपमा कवि नेत्र की पुतली से करता है —

यह रंग नेत्र की कनीनिका सा मंडल,
जिस पर सघन बाल पलकों की भाँति था
एक क्षण में समस्त राजपुत्र दीखते
अन्यथा अदृश्य हो के आवरण जाल में। (एकलव्य, पृ० 103)

एकलव्य की लगन को देखकर द्रोणाचार्य अपने पुत्र अश्वत्थामा को धिक्कारते हैं और एकलव्य में धनुर्धर के दर्शन करते हैं —

पुत्र अश्वत्थामा तुम होगे क्या धनुर्धर
इसके समक्ष जो कि उन्नत है मनस्वी
कैसे तुम बालक बनोगे अनन्यमनों के
जब यह बालक स्वयं ही अनन्यमन है
जिसका मनोरथ ही रथ के समान है
श्रद्धा सारथी की भाँति अग्र में ही बैठी है
कामना कोदण्ड और शील शिलीमुख है,
सत्य के समान सीधी प्रखर प्रत्यंचा है। (वही, पृ० 125)

<u>रूपक</u> :— काव्य में रूपक नामक सर्ग से पूरे काव्य का परिचय मिल जाता है। पूरे

निष्ठा के नाराच छोड़ता है उद्वेग से

जिससे कि अप्रकट गुरु का हृदय है। (एकलव्य, पृ० 294)

<u>उदाहरण</u> :— यह अलंकार कवि का प्रिय अलंकार है। पात्रित्व-प्रकाशन के लिए भी इस अलंकार का प्रयोग बहुलता से किया गया है। निषादपुत्र एकलव्य के साथ कवि की गहरी सहानुभूति है। कवि उसे कण्ठ से उतारे हुए हार के समान बतलाता है—

हे निषाद-पुत्र, नीच, वर्ण-अधिकार-हीन?

लक्षित थे तुमको न कोई अधिकार था?

जीवन तुम्हारा जैसे उत्सव के अंत में

कंठ से उतारा हुआ लुंठित सा हार था। (वही, पृ० 5)

एकलव्य नागदत्त को द्रोणाचार्य के दर्शन का वृत्तान्त बताते हुए कहता है —

देव द्रोणाचार्य इस भाँति थे खड़े हुए

जैसे ब्रह्म का चिंतन जीवित खड़ा है। (वही, पृ० 12)

यों तो उदाहरण द्वारा बात को पुष्ट करना कवि की शैली है, किन्तु किसी-किसी पद्य में इसकी झड़ी सी लग गयी है —

फिर नासिकाग्र पर दृष्टि स्थिर करके

आँखों पर अग्नि-गर्भित बिम्ब सा फूका

जैसे सिन्धु शीश पर ज्वार की झकोर हो

जैसे बादलों के शीश पर दामिनी की द्युति हो

जैसे शैलशीश पर धारापात पंज हो,

जैसे व्योम-भाल पर सूर्य का मुकुट हो

जैसे दीप पर मानो मंत्र स्थिर हो गया। (वही, पृ० 15)

परिचय सर्ग में कवि हस्तिनापुर के नरेश धृतराष्ट्र, कौरवों तथा गांधारी का परिचय देते हुए अनेक उदाहरण प्रस्तुत करता है —

बरूणास्त्र की तुलना ओस बिन्दुओं से की जाती है। प्रदर्शन नामक सर्ग में कवि ने दिन का होना तथा उसके साथ ही कार्यों का होना और धनुर्वेद के प्रदर्शन की व्यवस्था में रूपक, उदाहरण, उत्प्रेक्षा तथा उपमा की झड़ी लगा दी है।

धनुर्वेद-प्रदर्शन के लिए सभी राजपुत्र राजधानी की क्रीड़ा-भूमि में एकत्र होते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि वीर रस का प्रवाह ही उठ गया हो। युधिष्ठिर सबसे पहले अपने बाण चलाने का प्रदर्शन कर रहे हैं —

धनुष चढ़ाया जैसे चन्द्र हो द्वितीया का

और कितने ही दिव्य बाण छोड़े नभ में,

जैसे अग्नि की विशाल रेखा गतिशील हो

खींचती है चक्र चक्र व्यूह अंतरिक्ष में। (एकलव्य, पृ0 104)

इसी प्रकार भीम गदा का प्रदर्शन करके सभा को चकित कर देते हैं। दुर्योधन और भीम दोनों ही एक से एक बढ़कर गदा का प्रदर्शन करते हैं। दोनों ही अपने को अधिक प्रदर्शित करते हैं।[1] अर्जुन सभा में अपनी विद्या का प्रदर्शन करने आ रहे हैं —

देखें आप शस्त्र इसे पाकर चमकती है,

जैसे मेघमाला सजती है नील व्योम में।

× × × ×

पार्थ ने प्रणाम किया, मस्तक झुका दिया,

जैसे धर्म के समक्ष झुके माथा भूप की। (एकलव्य, पृ0 108)

अर्जुन ने पार्जन्य अस्त्र का प्रदर्शन किया, जिसको कवि ने इन्द्रधनुष बसन्त इत्यादि उदाहरणों से व्यक्त किया है।[2] इसी प्रकार अर्जुन ने भौमास्त्र का प्रदर्शन किया, उसे भी कवि ने भूकम्प तथा इन्द्रवज्र का भूमि विलीन होना आदि उदाहरणों से उद्धृत किया

---

1- एकलव्य, पृ0 105

2- वही, पृ0 111

है।[1] अर्जुन ने पर्वतास्त्र का प्रयोग करके समतल भूमि को पर्वत बना दिया, जैसे ही भारती ने राम के कुमार को कवि का उदात्त पद दे दिया।[2]

जिस वन में एकलव्य धनुर्वेद-साधना के लिए जाता है, कवि ने उस वन के पेड़, कुश-कंटक, तथा शिलाखण्ड का अनेक उदाहरण देकर वर्णन किया है। यथा अरण्य-भूमि को अंधी वृद्धा, विषम धरातल को अस्त-व्यस्त वस्त्र, पेड़ को अष्टावक्र, झाड़ियों के झुण्ड को वीतराग संत, कुश कंटक को अनाथिन बाला के उद्दण्ड बाल, शिलाखण्डों को कुण्ठित पुंजीभूत कष्ट आदि के रूप में वर्णित किया गया है।[3]

एकलव्य वन में धनुर्वेद का अभ्यास करता है। उसके पैरों में अनेक कंटक चुभे हुए हैं। उन्हें देखकर ऐसा लगता है, जैसे श्याम शिलाखण्ड ही हों।'[4]

<u>दृष्टान्त</u> —

विषयानुसार कवि ने इस अलंकार का भी प्रयोग किया है। द्रोणाचार्य के शिष्यों में अर्जुन उसी प्रकार सबसे अधिक तेजस्वी थे, जैसे तारागणों में चन्द्रमा सबसे अधिक तेजस्वी होता है —

एक सी है शिक्षा गुरु के सभी कुमारों की
किन्तु पार्थ अग्रणी सभी में हुए शीघ्र ही
एक सा प्रकाश रवि देता सब तारों को
किन्तु चन्द्र सबसे अधिक ज्योतिर्मय है। (वही, पृ0 67)

---

1- एकलव्य, पृ0 111
2- वही, पृ0 112
3- वही, पृ0 174    4- वही, पृ0 175

अर्थान्तरन्यास :— कवि ने एकलव्य नामक काव्य में सभी प्रमुख अलंकारों का प्रयोग किया है। अर्थान्तरन्यास का प्रयोग भी काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि करता है। द्रोणाचार्य राजदरबार में भीष्म पितामह से अपनी व्यथा सुना रहे हैं। नियति भी उसी को वह वस्तु देता है, जिसकी उसको आवश्यकता नहीं होती। परशुराम ने अपनी सारी सम्पत्ति मेरे पहुँचने से पहले ही दान कर दी थी —

वह धन पाया श्रेष्ठ हाय ऐसे विप्रों ने
जो कि मूल्य जानते न होंगे उस धन का
हाय रे नियति, जल संचित है सिन्धु में
तारकों की राशि मिलती है दिनकर को।

एकलव्य अपने गुरु के सम्बन्ध में अपने मित्र से कहता है —

मेरे गुरु सिद्ध और साधु मैं निषाद हूँ
किन्तु गुरुवाणी ही अमोघ अभिषेक है।
ऊपर और नीचे क्या श्रेष्ठ भी नहीं है दो?
किन्तु जो निकलती है, वाणी वह एक है।

एकलव्य अपनों के लिए सन्देश नागकन्या द्वारा देता है —

मेरी खोज की न कभी चिन्ता करें आप भी
सबके समीप हूँ उन्हीं की भावनाओं में।
पल्लव भले ही मूल से हो दूर वृन्त में
किन्तु मूल का है रस उसकी शिराओं में। (वही, पृ० 141)

अपन्हुति :— यहाँ पर कवि ने वास्तविक बात (चीटियाँ निकालने की) छिपा कर एकलव्य के हृदय को प्रतिष्ठित किया है — एक समय द्रोणाचार्य देखता है —

चीटियाँ नहीं थी वह मेरा ही हृदय था,
आपने निकाला जिसे भेद सम कूप से।

जैसे चित्र लोचनों में अंजन की रेखा है,

दृष्टि के समान धनुर्वेद गतिशील है। (एकलव्य, पृ0 246)

इस पद में रूपक, उदाहरण और उपमा अलंकार का प्रयोग एक साथ किया गया है।

रक्त धारा बही जैसे धनुर्वेद साधना,

पुष्प-सम होके लीन हो रही है भूमि में

× × × × ×

गुरु पद तल के समीप अंगुष्ठ पड़ा

जैसे लाल पंखुड़ी है पद्मरागी फूल की

या कि अनुराग ने रख रखा रक्त में,

या कि गुरु- शिष्य जोड़ने की संधि रेखा है। (वही, पृ0 298)

इस पद में उपमा, रूपक, उदाहरण आदि अलंकारों का प्रयोग एक साथ किया गयाहै।

## 'अलंकार'

यों तो कवि ने सभी प्रमुख अलंकारों का प्रयोग किया है, किन्तु इसमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग अधिक किया है।

अनुप्रास :— इस अलंकार का प्रयोग सहज एवं स्वाभाविक है —

रवि-कुल कीर्ति-कलाप-कथन-कलोलित

इसमें 'क' वर्ण की अनेक आवृत्ति होने के कारण वृत्यनुप्रास है।

सुमन-संचय सद्गुण समाहित सफल सदृश सलाम। (वही, पृ0 214)

यहाँ पर 'स' वर्ण की कई बार आवृत्ति की गयी है। अतः यहाँ पर भी वृत्यनुप्रास है। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण काव्य में उपलब्ध होते हैं।

यमक :—

पाञ्चालिनी सी नाव चलत मधु पर होती थी

मधु में अपना देख उलझना ही देती थी।

उदाहरण :—

मधु वनदेवी को तारकवध की कथा सुना रहे हैं। वनदेवी तन की सुध-बुध भूलकर प्रसन्न होकर कथा सुनने लगती है, जैसे कमलिनी सूर्य को देखकर प्रसन्न होती है —

करने लगी श्रवण वनदेवी तन की सुधि-बुधि भूली।

ज्यों रविकर की रश्मि कमलिनी स्मितवदन से फूली।(तारकवध, पृ0 16)

शान्ता लोक-हित के लिए श्रृंगी ऋषि के पास जाने को तैयार है, किन्तु फिर भी दशरथ आदि मणिहीन सर्प की तरह व्याकुल हो रहे हैं —

तोक लोक-हित की कन्या के इस प्रकार जाने से।

हम मणिहीन भुजंगम जैसे होंगे दीवाने से।(वही, पृ0 131)

शान्ता अपनी वेशभूषा बदलकर वन जाने को तैयार होती है —

भुजगनागिनी बदलती केंचुल जैसे

चोला अपना आज बदलती हूँ मैं वैसे।(वही, पृ0 196)

शान्ता के चले जाने से उसके द्वारा पालित जन्तु पशु आदि ऐसे अचल मौन हैं, जैसे वे प्राण-विहीन पत्थर की मूर्तियाँ हों —

शान्ता के पालित जन्तु-मृग-पशु मौन अचल थे ऐसे।

पाहन की मूर्तियाँ वहाँ हों प्राण-विहीना जैसे।(वही, पृ0 325)

राजा दशरथ अन्य राजाओं के साथ तारक से युद्ध के लिए तत्पर हैं। वे अपनी सेना के साथ जा रहे हैं। रास्ते में उन्हें नारद मुनि मिल जाते हैं। राजा तथा सैनिक उन्हें घेर लेते हैं —

नृपति-मण्डली संग महामुनिवर यों राजे।

उडु तारकगण मध्य बृहस्पति ज्यों छवि छाजे।(वही, पृ0 359)

इस प्रकार आभरणों द्वारा नारकथ काव्य के सौन्दर्य में वृद्धि हुई है।

<u>अर्थान्तरन्यास :-</u>

कवि ने अपनी बात का समर्थन अनेक दृष्टान्तों द्वारा किया है। इसके द्वारा उन्होंने अपने भावों को स्पष्ट किया है —

नारद मुनि सभी जगह भ्रमण करते हैं, वे देवलोक, मृत्युलोक का भ्रमण करते हैं। उन्होंने सरसता लाने के लिए देव, दनिव तथा मनुज तीनों को आवश्यक माना है —

देव मनुज औ दनुज तीन में एक न होवें।
तो सब सरस प्रभाव नवल रचना के खोवें।
पंक न हो तो कमल कहाँ से खिलन सकेगा?
क्षमा बिना रवि की कीर्ति किस भाँति लहेगा? (वही, पृ०11)

नारद मुनि देवलोक के बाद मनुज लोक भ्रमण करते हुए राजा दशरथ के पास पहुँचते हैं तथा अपने आने का उद्देश्य बताते हैं —

अंधकार के बिना ज्योति को नहीं मिलेगा रूप।
रात बिना दिन की भी शोभा होगी नहीं अनूप।
मर्त्यलोक में मैं भी आया लेने को कुछ स्वाद।
केवल अमर लोक ही से तो मिल न सका आह्लाद। (नारक०पृ०108)

मुनि दशरथ को राजा का धर्म बताते हैं —

दिनकर का यह धर्म, तप्त हो प्रिय प्रकाश फैलाना।
दीपक का यह धर्म स्वयं जल सबको राह दिखाना। (
तरुवर का यह धर्म ताप सह फल औ छाया देना।
राजा का यह धर्म प्रजा की विपदा सिर पर लेना। (वही, पृ०30)

<u>अतिशयोक्ति :-</u> अयोध्या में अकाल पड़ गया है चारों ओर भूखा दिखायी दे रहा है — कवि अकाल का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन कर रहा है —

कृषक बालिका मधु रोक खेतों पर जाती

पौधे पायें प्राण, उन्हीं पर जल बरसाती। (वही, पृ0 126)

उल्लेख :— काव्य के आरम्भ में कवि माँ का स्तुतिगान करते हुए उनका विविध रूपों में उल्लेख करता है —

जय जय हे जगदम्बे,

तुम्हीं जगत की रचना कारिणि तुम्हीं प्रलय कारिणि भी।

तुम्हीं सकल रस की आधारिणि और तुम्हीं हारिणि भी।

तुम्हीं नाद हो, तुम्हीं बिन्दु हो, ओंकार भी तुम हो।

मन हो तुम्हीं बुद्धि भी तुम हो, चित्ताकार भी तुम हो।

हे जीवन अवलम्बे जय,

मानवीकरण :— इस अलंकार का प्रयोग कवि ने सहज आकर्षण से किया है। प्रकृति-वर्णन में इस अलंकार का प्रयोग विशेषरूप से किया है। उषा का मानवीकरण द्रष्टव्य है—

अरुण गात पर श्वेत वसन वर धारे शोभागार।

सहज हास से है कपोल की अलक-जाल छविभार।

दृग-अपोल-विषाद से भरे अपल सिता अमलिन।

मोती की माला भी मिलती सभी ओ छविमान। (वही, पृ0 76)

आकाश का मानवीकरण देखिए —

यह अम्बर नागरी लालसा विकल सम्मिलन हेतु

बढ़े-बढ़े दिग्बाहु बढ़ाती जब आलिंगन हेतु। (वही, पृ0 82)

अपह्नुति :— राजा दशरथ अपनी गज सेना लेकर शम्बरासुर से युद्ध करने के लिए तत्पर होते हैं। कवि कहता है कि वह गज सेना नहीं थी, अपितु साक्षात् घनमाला ही पृथ्वी पर उतर आयी हो —

थी न मदान्ध पंक्ति, घन-माला ही मही पर निकली थी। (पृ0 348)

इसी तरह प्रकृति के क्रिया कलापों की वास्तविक बात को छिपाकर कवि ने उनमें अन्य बातों का आरोप किया है —

पौ न फटी यह हाय फटी थी निशा की छाती।

बिन आगम की भीति, भालमणि टूटी जाती।

नहीं जपा कचनार कुसुम ये लाल-लाल दिखलाते।

फटा कलेजा किसी व्यथित का रक्त बहे से आते। (पृ0 522)

<u>भ्रान्तिमान</u> :— शान्ता को देखकर चन्द्रमा का भ्रम होता है —

घुँघराली अलकों से आवृत विकसित वदन विलोक।

भ्रम होता था राहु व्यथित शशि आया नव नभ लोक। (वही, पृ0 95)

<u>व्यतिरेक</u> :— शान्ता का अपहरण तारक दैत्य द्वारा हो जाता है। वह बन्दी है। उसकी आँखों में आँसू की दो बूँदें दिखलायी पड़ती हैं। उनमें इतनी ज्वाला है कि ओसमाल से उनकी तुलना नहीं की जा सकती —

जलबूँदें दृग मध्य पड़ीं दिखलायीं

दो कमलों ने ओसमाल सी पायीं।

ओसमाल भी किन्तु न उचित बतायी

उसमें इतनी ज्वाल कहाँ कब आयी। (वही, पृ0 289)

इसी प्रकार चन्द्रमा ने अपनी किरणों से जो काम कर लिया, वह कामदेव अपने सुमन शरों से भी नहीं कर पाया —

हर से कर के समर मनोभव हारा।

शशि-सुषमा से अतनु किया बेचारा

नभ पर आसीन सहज शुभ शोभन

परम प्रफुल्ल सहास रुचिर मनमोहन।।

## 'बाणाम्बरी'

'बाणाम्बरी' में अलंकारों की छटा ऐसी आकर्षक है जैसे निर्झर के पीछे दीपकों की आभा झिलमिलाती हुई आकर्षक लगती है। पौराणिक वृत्त प्रसंगवार पुष्कल मात्रा में उपमान के रूप में कुशलता से प्रयुक्त हुए हैं। वहाँ शाब्दिक चमत्कार नहीं उदात्त आशयत्व है।[1] ऐसे प्रयोग मार्मिक हैं। रेखा की व्याकुलता का चित्रण देखिए —

ज्यों जनक सभा में गार्गी - गति
ऋषि याज्ञवल्क्य उत्तरापति,
रेखा प्रकुपद।' (बाणाम्बरी, पृ0 44)

<u>रूपक</u> :— निम्नांकित रूपक भी अपूर्व और सर्वांग है —

कैकेयी-निशा सकल दिशाओं में प्रचित
मारुत-मंथरा अतीत-तिमिर-तिमिर-भू संचालित
लक्ष्मण सुमित्रा करुणा-कौशल्या-विस्मित
शत्रुघ्न-स्नेह में लक्ष्मण-मन-प्रातुल विचित।' (वही, पृ0 248)

## 'लोकायतन'

अलंकार-योजना में कवि ने अपनी पारदर्शी कलात्मकता का परिचय दिया है। यहाँ प्रयोगवाद अथवा नयी कविता का प्रभाव भी लक्षित होता है। प्रयोग वाद ने अवश्य ही हमें नये प्रयोगों और उपमानों की विविध रंगीन, छवियाँ दी हैं, परन्तु उनमें से अधिकतर उपमान बाहरी चकाचौंध उत्पन्न कर रह गये हैं। जीवन की समनुभूति के अभाव में रचना की पुच्छल पूंछ ही हाथ लगती है। प्रकृति

---

1- चांदनी, अमावस में ज्यों उर्मिला की रात,
कमल दीपित गात में नित विकल विद्युत्पात।(
अश्रुनिपात। (बाणाम्बरी, पृ0 104)

उत्प्रेक्षा :—

कवि ने उत्प्रेक्षा का भी प्रयोग किया है किन्तु इस अलंकार का प्रयोग करते समय वाचक शब्दों का प्रयोग नहीं किया है —

माली की लड़की रूक्म की सुन्दरता का वर्णन —

एक सुन्दरता उसमें मूक

फूल मुख पर हो मन की शान्ति(लोकायतन, पृ0 297)

इसी प्रकार — ठोंक दी हो लोहे की मेख

मित्र के मर्मस्थल को छेद। (वही, पृ0 357)

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य अलंकारों का भी प्रयोग किया गया है —

विरोधाभास :—

सरसोंसे लघु यत्न करें क्या,

पर्वतस्था शक्तियों का संकट

आरम्पार तम सिन्धु गरजता

नहीं सूझता आशा का तट। (वही, पृ0 49)

एकावली :—

इन्द्रिय से पर नित विषय, विषय से पर मन,

मन से पर बुद्धि परे उससे आत्मा घन।

आत्मा से पर अव्यक्त, पुरूष अति पर तर,

सूक्ष्मातिसूक्ष्म, काष्ठा अंतिम गति दुस्तर। (वही, पृ0 339)

मन के नभ में भावों के मधु नभ

भावों के नभ में शोभा शशि मुख

मुख शोभा में स्मित सुरधनु किरणें

प्रतिच्छवित करतीं शाश्वतस्व सुख। (वही, पृ0 482)

निन्दा :— स्वार्थी व्यक्तियों को अनेक प्रकार से निन्दित किया गया है—

वर्तमान में रहते जो निज में रत,

ऊँच नीच लघु स्वार्थों में उठ-गिर कर

भू मंगल के द्रोही वे जन-वंचक

दुर्वह भार, शोषित चित नरभुग भू पर।(वही, पृ0 33)

<u>संसृष्टि :—</u>

निम्नांकित पद में उपमा और रूपक का प्रयोग एक साथ किया गया है —

बाँसों के वन सा जलता युगमन

अणु विस्फोटों का निनाद भीषण।(वही, पृ0 428)

इसी प्रकार निम्नांकित पद में रूपक और उपमा का प्रयोग साथ-साथ किया गया है—

विश्व ह्रास के कर्दम सागर में

कृमियों सा रेंगता जनजीवन

कुब्ज कुरूप विकृत सी आहत नीति

घृणा दुर्वेष के वेश विष दर्शन।(वही, पृ0 440)

## 'झाँसी की रानी'

कवि की अनुकूल एवं मानवीय व्यापारों से परिव्याप्त प्रकृति-दृश्य-योजना नैसर्गिक है। प्रकृति का मानवीकरण भी अच्छा है। एक सजीव चित्र उभरता परिलक्षित होता है —

निशा सुन्दरी शशि-सखी ने
साज कर ली थी शृंगार
श्याम वदन को जल-दर्पण में
देख रही थी बार-बार।
गूँथ रही नव कुन्तल में थी
उडुगण-कुसुम नवल सुकुमार
सजा रही थी वह कबरी में
लेकर नभ-गंगा के हार। (झाँसी की रानी, पृ० 110)

रात्रि का रूपकमय निम्नांकित चित्रण आकर्षक है —

उस शोभाहीन दुख रजनी को
आलोक धार सी फूट उठी। (झाँसी की रानी।) पृ०63)

अन्योक्ति —

रघुनाथ लक्ष्मीबाई को मरता हुआ देखकर सूर्य का अवसान समीप जान-कर सूर्य को सम्बोधित करते हुए कहता है —

जाते हो दिनमणि, अम्बर को धीरे धीरे छोड़
खिले हुए कमल वन से क्यों ऐसा नाता तोड़?
उदय हुए थे मन में लेकर कितना बड़ा उछाह
और जा रहे हो जग की करके धूमिल राह। (वही, पृ० 331)

उपमा :—

कवि ने लक्ष्मीबाई का वर्णन करते हुए इस अलंकार का प्रयोग अधिक किया है। लक्ष्मीबाई की दोनों चोटियाँ माता के स्नेह के समान उसको झुककर चूम रही थीं —

मंगलमय बाहों सी लम्बी
उसकी वेणी थीं झूम रही।
माता के स्नेह सदृश झुककर
दोनों को वह थी चूम रही। (झाँसी की रानी, पृ० 57)

लक्ष्मीबाई की ओजपूर्ण वाणी की एक झलक द्रष्टव्य है —

घन प्रलय सदृश घहराऊँगी
दावाग्नि समान जलाऊँगी।
माता की लाज बचाने में
अपना सर्वस्व लुटा दूँगी। (वही, पृ० 60)

इसी प्रकार के अनेक उदाहरण इस काव्य में द्रष्टव्य हैं —

उल्लेख :— कवि ने ज्योति वर्ग के अन्तर्गत अदृश्य शक्ति का अनेक रूपों में उल्लेख किया है —

वही सघन घन में चपला है
उर में वात्सल्य है मौन
× × × ×
वही राम है, वही कृष्ण है,
वही ब्रह्म है जो है मौन
वही शब्द है वही अर्थ है
वही काव्य है जो है मौन। (वही, पृ० 31)

पुनरुक्तिप्रकाश :—

काव्य में सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए पुनरुक्तिप्रकाश का प्रयोग किया गया है— तन के शोणित के निर्झर भी

झर-झर-झर-झर-झर झरते हैं।

मस्तक से बल कौशेय बाल

फर-फर-फर-फर-फर करते हैं। (झाँसी की रानी, पृ0 48)

घुमड़ उमड़-घुमड़ घनघोर घटा

धड़धड़ा रही थी धड़-धड़-धड़।

अब सघन-घटा को चीर तड़ित

तड़तड़ा रही थी तड़, तड़, तड़। (वही, पृ0 159)

यमक :—

अम्बर से ही अम्बर से

लज्जा को ढकने वाले (वही, पृ0 283)

यहाँ पर एक अम्बर का अर्थ आकाश तथा दूसरे अम्बर का अर्थ वस्त्र है।

उत्प्रेक्षा :— भारत माँ की दीन हीन स्थिति का कितना सजीव चित्रण किया गया है। देखिए — माँ के तन पर भी मैला

सौ छिद्रों का कपड़ा था

ज्यों वह तन बर्फीले तल पर

मानो निश्चिन्त पड़ा था। (वही, पृ0 198)

इसी युद्ध में रानी के साथ उसकी दो सखियाँ सुन्दर, मुन्दर भी आयी हैं, दोनों भी रानी के साथ बड़ी वीरता से लड़ रही है —

इतने में गोली लगी एक

बढ़ती सुन्दर की छाती में

मानों वह तीर लगा माँ की

पुत्र की व्यथित सी छाती में। (झाँसी की रानी, पृ0 325)

रानी के वत्सल पुत्र की हत्या हो चुकी है। रानी सिंहिनी के सदृश अपने शिशु-हन्तक पर टूट पड़तीहै —

अब दो गोरे रह गये शेष

व्याकुल रानी फिर कूद पड़ी

या कुपित सिंहिनी ही अपने

शिशु हन्तक पर थी टूट पड़ी। (वही, पृ0 329)

भ्रान्तिमान :— कुहरे में गोला बारूद चलने पर किसानों को बिजली और वज्र का भ्रम होता है —

बालक किसानों ने समझा

घनहीन तड़ित् है कड़क रही।

पवि का निपात ही समझ उधर

उनकी छाती भी धड़क रही। (वही, पृ0 321)

अपन्हुति — यहाँ पर रानी की मृत्यु-शैया की वास्तविक बात को छिपाकर पद्मिनी रानी को आरोपित किया गया है —

यह शव नहीं था रानी का

यह था शृंगार भवानी का

यह रूप धरा पर चमक रहा

था सती पद्मिनी रानी का। (वही, पृ0 208)

<u>उपमा</u> :—

'महाभारती' काव्य में उपमा अलंकार का प्रयोग अधिक किया गया है। कहीं-कहीं पर तो उपमा की माला सी पिरो दी गयी है। कवि ने स्थान-स्थान पर अनेक प्रकार की उपमाओं का प्रयोग किया है — कवि राजा के गुण बताते हैं —

बाँह लिपटे शिशु-शालिता सदृश कर सत्कार

कीट-भक्षी छिपकिली-सा नहीं नृप अहंकार। (महाभारती, पृ०43)

यहाँ पर कहा गया है कि राजा को कीट-भक्षी छिपकली के समान नहीं, बल्कि बाँह में लिपटे हुए शिशु के समान प्रजा का भरण वहन करना चाहिए।

<u>रूपक</u> :—

कवि ने उपमा के साथ रूपक का प्रयोग अधिक किया गया है। कवि ने रूपक के सभी भेदों का प्रयोग किया है सांगरूपक की प्रधानता है। सांगरूपक का एक उदाहरण इस प्रकार है —

पार्वती पृथ्वी उठाती रही कम्प कष्ट

समय शिव से पूजित फिर फिर प्रगत कृति सौन्दर्य। (वही, पृ०37)

यहाँ पर कवि ने पृथ्वी पर पार्वती का आरोप किया है तथा समय पर शिव का आरोप किया है।

इसी प्रकार यहाँ पर प्रकृति का चित्रण देखिए —

हिम समाधि पर सूर्य कलश रख उषा प्रभात-विलीना,

लगी बजाने स्वर्ण-किरण से व्योम-ध्वनि बिन-वीणा। (वही, पृ०31)

यहाँ पर हिम सूर्य पर क्रमशः समाधि तथा कलश का आरोप किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने रूपक अलंकार का प्रयोग अत्यन्त कुशलता से किया है।

<u>उदाहरण :—</u>

कवि तृतीय सर्ग में सूर्य के उदय होने का वर्णन करता है। चक्रवर्ती प्रकाशयुक्त सूर्य ऐसा प्रतीत होता है, जैसे श्वेत ऐरावत पर विजयश्री से सम्पन्न इन्द्र हो — चक्रवर्ती प्रकाश-सम्पन्न

दिवस रथ पर शोभित सूर्य

श्वेत ऐरावत पर ज्यों अंकित

इन्द्र का विजय निनादित तूर्य। (वही, पृ0 97 तृतीय सर्ग)

वशिष्ठ अपने शिष्यों से मनुष्यों के संस्कार के विषय में बतलाते हुए कहते हैं कि पूर्वकाल के संस्कार जीवन में उसी प्रकार प्रकट हो जाते हैं, जिस प्रकार अन्धकार को विनष्ट कर प्रभात का प्रकाश प्रकट हो जाता है —

पूर्व का अन्तर्निहित संस्कार

झलकता जीवन में अज्ञात

पाप के अंधकार को मिटा,

व्याप्त होता ज्यों पुण्य-प्रभात (वही, पृ0 104, तृतीय सर्ग)

विश्वामित्र वशिष्ठ से कामधेनु माँगते हैं, किन्तु वशिष्ठ कहते हैं कि जैसे योगी से योगसिद्धि अलग नहीं हो सकती है, उसी प्रकार मुझसे कामधेनु भी अलग नहीं होगी :—

योगी से पृथक न योगसिद्धि ज्यों आजीवन।

त्यों कामधेनु मुझसे अभिन्न है द्विजराजन्। (महाभारती, पृ0 208)

विरोधाभास :—

यों तो इस अलंकार का प्रयोग इस महाकाव्य में कम ही हुआ है, किन्तु जो भी हुआ है, सुन्दर बन पड़ा है — शकुन्तला द्वारा गृहत्याग के उपरान्त महाराज दुष्यन्त की स्थिति करुणाजनक हो जाती है। वे दुःखी हो जाते हैं/ उनकी स्थिति उन्मत्त जैसी हो जाती है। वे अपने को दोषी ठहराते हैं —

मिटा पाया न जो मतिदोष वह दुष्यन्त हूँ मैं
तिमिर संयुक्त जिसकी दृष्टि वीर्य कान्त हूँ मैं
पड़ा हूँ आज पीठस्थल पर ओषधि-सुरक्षित
विधुरता कष्ट से क्षुभित किसी का कान्त हूँ मैं। (महाभारती, नवसर्ग, पृ0 487)

अर्थान्तरन्यास :— इस अलंकार में साधारण वाक्य कहकर उसका विशेष वाक्य द्वारा समर्थन किया जाता है।

शक्ति-वितरण ही सात्विक कार्य,
शक्तिसंचय ही निकृष्ट विचार
सूर्य का होता क्या सत्कार
न देता यदि वह दिव्य-प्रकाश (वही, एकादश सर्ग, पृ0 385)

दुष्यन्त शकुन्तला द्वारा गृहत्याग कर चले जाने के बाद आत्मग्लानि में डूब जाते हैं और अपने को धिक्कारते हैं —

नहीं पहचान पाती और सत्ता आत्मरूप को
समझ पाता न सिंहासन विवेकशील कवि को
पत्रों के बीच में ऋतु की पहचान क्यों हो/
समय की ओर से कवि का सत्व-सम्मान क्यों हो? (वही, चतुर्दश सर्ग, 490)

संसृष्टि :— इन अलंकारों के अतिरिक्त कवि ने संसृष्टि अलंकार का प्रयोग अत्यधिक किया है —

मेरे नयनों में खिले मेघ के वज्र-फूल

कुसुमानुकूल शिशुओं वह थी मेरी प्रथम-भूल

वायु में ज्यों लोटते आम त्यों तन में मन

निकला कवि दृग से अनुकम्पित उच्छ्वासी-स्वन। (महाभारती, पृ0140)

इस पद में उपमा औरउदाहरण अलंकार का एक साथ प्रयोग किया गया है।

दन्तहत सर्पशावा आकांक्षा दर्पहीन

हिल्लोर हीन सागर ज्यों अन्तर शक्ति-हीन

ज्यों पंखहीन पक्षी पिंजरे में व्योम-विकल

मेरी समस्त चेतना अभी तक रही अचल। (वही, पृ0 211)

कारणमाला :— यहाँ पर गुण कर्म से सम्बन्ध स्थापित किया गया है। शकुन्तला चिन्तन कर रही है —

कर्म से ही तो गुण निर्मित,

गुणों के कारण ही सम्मान

कर सके जो न शक्ति भर कार्य

अधूरे उस मानव के प्राण। (महाभारती, एकलव्य सर्ग, पृ0 386)

अन्योक्ति :— इसमें शकुन्तला मेघ और वायु के ऊपर डालकर दुष्यन्त को कहती है— वास्तविकता में तो मेघ और वायु को सम्बोधित करके कहा गया है कि मेघ किसी के प्यास को क्या समझे तथा उद्दण्ड वायु फूल को देखकर कब द्रवित होता है —

गरजना ही जिसका उद्देश्य

मेघ वह क्या जाने भू-प्यास

द्रवित होता न फूल पर कभी

चपल उद्दण्ड क्रूर, वातास। (महाभारती, पृ0393 [illegible]

उदाहरण :- इस अलंकार का प्रयोग कवि ने अधिक किया है। सरयू नदी का वर्णन है जिस —

कहीं शरगति सम कहीं अति वक्रगति जिमि व्याल। (भगवान० पृ08-23)

इसी प्रकार अयोध्या में कहीं भी बुराई का नाम निशान नहीं है —

दुष्ट दुर्जन कुव्यसन परदाररत सकलंक

हो गये थे नष्ट जिमि रवि उदय से [illegible] पंक। (वही, पृ019-78)

विदेह के सम्मुख विदेह अमरेन्द्र की आभा भी फीकी पड़ जाती है —

सुधांशु की उज्ज्वल चन्द्रिका ज्यों

प्रभात होते हतकान्ति होती

महाप्रतापी अमरेन्द्र भा त्यों

विदेह के सम्मुख लुप्त होती। (भगवानराम, पृ0 94)

ध्वजपताका केतु शतशः उड़ रहे थे पवन में

सैकड़ों सुरचाप जैसे खिलरहे हों गगन में। (वही, पृ0135)

वैभव धनु पार्थिव मान से हुए क्षीण प्रभहीन

प्राण निकलते ही काया ज्यों होती है द्युतिहीन। (वही, 173)

रूपक :- कवि ने इस अलंकार का प्रयोग अधिक किया है —

अतुल बल विक्रम पराक्रम-सैन्य-रत्नजाल। (वही, 6-13)

भक्त जन के मन मधुप का है वही पंकज नवल। (वही, 38)

चाहती है आज कर्मिक राम बोध जीवन तरी। (वही, 45-85)

अस्थि-पुंज-तनपूर्ण पड़े थे सुन न शोक में। (वही, पृ051)

जब भार में प्रशान्त हुआ मुनि चन्द्र-राहु का। (वही, पृ0 62)

बालारुण की झलक मात्र की घन तुषार में

धूमकेतु ज्वाला की शिखा धूमधार में। (वही, पृ0 82)

ब्रह्मचर्य नियम चर्या गतिकुल करते रहे।

ज्ञान जिज्ञासा सरोवर में अमृत भरते रहे।(भगवानराम, पृ0100)

कठिन वियोग धनुष को भी तो चलना है।(वही, पृ0 108)

दुख-कानन-सर-हंस(वही, पृ0 25)

जनक और वैराग्य निशा का देख हो गया अन्त(वही, पृ0126)

रघुकुल कृपा वारि बालक हैं निमि बीज सनेह।(वही, 127)

जब से मिथिला में आए हैं राम रस राकेश।(वही, 130)

राम रघुकुल-ज्योति के रवि तेजपुंज प्रचण्ड हैं।

किन्तु मिथिला हृदय अंबर के सुधांशु अखण्ड हैं।(वही, 138)

जब सायक ने किया विदीर्ण अम्बर अवनि का

उग्र रवि पर आवरण था सत्य ही घन तरल का।(वही, 139)

राम सबके नेत्र मधुकर के सरोज-पराग थे।(वही, पृ0 158)

मानवीकरण :— कवि ने प्रकृति का मानवीकरण-रूप प्रस्तुत किया है—

कर रही जल केलि ऊषा सुन्दरी

तिर रही है भीग रक्तिम चूनरी।

शीघ्र उसके कान्त आकर प्रीति से

बाहु पाशाबद्ध कर लेंगे उसे।(भगवानराम, पृ0 111)

भ्रान्तिमान :— राम के नेत्रों को देखकर चन्द्र और विष्णु का भ्रम हो जाता है —

विशाल पद्माक्ष विभुत्वधारी

मनोज से मानस चित्तहारी

वसुन्धरा के अमरेन्द्र हैं या

अचिन्त्य लक्ष्मीपति भूमि आए।(वही, पृ0 92)

जनकपुर के किनारे तालाब में खिले हुए कुमुदों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानों रजनी तारागणों के सहित स्नान के लिए अवतरित हुई हो —

खिले हैं अगणित कुमुद था मध्य सित
कंज कुड्मल दिख रहे हैं संकुचित
स्नान हित मानो स्वयं रजनी असित
अवतरित सर में हुई उडुगण सहित(भगवानराव, पृ0 115)

सीता का स्वयंवर हो रहा है। सभी वीर धनुष को तोड़ने में असमर्थ हैं। तब जनक उत्तेजित होकर सभा में सभी को धिक्कारते हैं —

वह सभा थी देख रही निस्तब्ध शून्य अनिमेष
मानो नृप ने छेड़ दिया था शान्त सबल फने शेष।
उत्तेजित अतिशय वीर रस मानो था शरीर।
जिसे शान्त करता था रघुवर स्नेह सुधा का नीर।
हुआ कर्णगत उसी समय गम्भीर घोष स्वन
मेघ घटा मानों घिरती हो करती गर्जन।(वही, पृ0 122)

अयोध्या में राम द्वारा धनुष-भंग का संदेश जाता है।दशरथ वशिष्ठ के साथ आ रहे हैं/कवि ने इसकी कितनी सुन्दर उत्प्रेक्षा की है —

तेजपुंज वशिष्ठ संग इस भाँति नृप दशरथ चले
चन्द्र मानों आ रहे हों अमर गुरू को साथ ले।(वही, पृ0134)

जब सभी बराती वापस आ रहे हैं/ रास्ते में प्रलय घटा के समान परशुराम आते हुए दिखायी देते हैं —

घन सघनता मध्य फूटा अकस्मात प्रकाश
प्रज्वलित मानो हुआ ज्वालावान हुताश
दुर्निरीक्ष्य प्रचण्डतम कालाग्नि सम दुर्धर्ष।
उत्तापप्रज्वलित मानों कोटि सूर्य- प्रकर्ष

रूपक अलंकार द्वारा बाण-विद्ध व्यक्ति की सभी चेष्टाएँ व्यक्त हो रही हैं —

काव्य की वाक्यावली बाणावली,
बेधती थी मानसों के मर्म को
स्तब्ध श्रोता-मण्डली रोमांचिता
शोकमग्ना अश्रु से आप्लावित।(जानकीजीवन, पृ० 323-61)

काव्य की वाक्यावली बाणावली है। बाण जैसे मर्म को बेध देता है, वाक्यावली भी श्रोताओं के हृदयों को विद्ध कर रही है। रोमों का खड़ा हो जाना और शोकाश्रुओं का गिरना आदि भी परिणामभूत चेष्टाएँ हैं।

<u>मानवीकरण</u> :— कवि ने प्रकृति का मानवीकरण किया है —

उषा सहेली सुषमामयी नयी,
मनोभिरामा मुस्कान मण्डिता
प्रमोद देती निज चारु चित्र की
प्रभा दिखाती प्रतिभा भरी प्रभा।(वही, पृ० 48-59)

खड़े खड़े पादप एक पैर से
तपस्वियों से तप में लगे हुए(वही, पृ० 51-74)

ध्वनि प्रतिध्वनि होती थी कि रोती दिशाएँ
निज सुमन गिराए आँसुओं से द्रुमों ने
महि लुंठित पड़ी थीं शोक-लीना लताएँ
मन मसल रही थी वेदना मेदिनी का (वही, पृ० 63-33)

संसुप्ता थी सकल संसृति शान्ति मग्ना
जागी प्रसन्न वदना पटु पूर्व प्राची
आयी औ वसन भूषण से सजाने
आली उषा अनुपमा सुषमामयी थी।(वही, पृ० 87-1)

अनुप्रास :— इस काव्य में वृत्यनुप्रास के एक से एक सुन्दर उदाहरण भरे पड़े हैं —

वियोग-बाधा-विपदा-विषाद से' (जानकीजीवन, पृ0 43-24)

वृथा किया क्यों धरती कुलांगना,

करालता कानन केलि कल्पना। (वही, पृ0 48-55)

सखी सु संध्या सुख शान्तिदा सदा

वाणी-विधान विविधाँ विधि हैं बताते। (वही, पृ0 92-33)

होते कई विविध उत्सव उत्सुकों से,

उत्साह उत्सवन उदात्त उमंग द्वारा। (वही, 96-59)

कान्ता की कमनीय कोमला कान्ति में (वही, 272-7)

इसी प्रकार अनुप्रास गर्भित अतिशयोक्ति अलंकार द्वारा कवि राम के उस चित्र को चित्रित करने में अपने को असमर्थ पाता है —

रुचिरता प्रियता उस चित्र की, परम चारु न चित्रित हो सकी।

चतुरता इतनी कवि में कहाँ चटक चाहक रंग न तरंग में। (
(वही, पृ0 164-44)

कलितता कवि कोविद क्या कहें ललितता लखती ललचारही। (
(जानकीजीवन, पृ0 45)

यमक :— निम्नांकित पंक्तियों में पयस्विनी शब्द का गाय और नदी के लिए प्रयोग किया गया है।

प्रवाहिता है वन में इतस्ततः

पयस्विनी के पयस्वी पयस्विनी। (वही, पृ0 49-65)

न जानकी की कुछ शोध जानकी

अनन्त शक्ति हनुमन्त ने किये। (वही, पृ0 69-66)

रोहिताश्व सुरेशहितावारूढ़ हो,

दिग्दिगन्त अनन्त मेला रोपती। (जानकीजीवन, पृ0 200-26)

इसमें न जान की तथा जानकी का प्रयोग किया गया है।

<u>उपमा :—</u>

राम का रूप कवि को इतना आकृष्ट करता है कि वह कहीं उनके हास्य का और कहीं अलंकृतियों द्वारा उनके गुणों का चित्रण करने लगता है। राम के धवलधाम का चित्रण करते हुए कवि कहता है —

परम उच्च हिमालय शृंगसा अमल मानसरूपा कविराज का।

कल कलेवर विस्तृत वास्तु का धवल धाम सुशोभित राम का।(
(जानकीजीवन, पृ0 154-69)

<u>अर्थान्तरन्यास :—</u> निम्नांकित पंक्तियों में प्रस्तुत अप्रस्तुत बिम्ब का सटीक वर्णन है —

मिली कि तारा महिषी कपीश को

गया सितारा फिर भानुवंश का।

मिला मिले हो वर जिस विश्व में

उसे बताओ फिर क्या नहीं मिला। (जानकीजीवन, पृ0 68-64)

दोषदर्शी दुर्जनों की दृष्टियाँ

दिव्यता भी देखती है दूषिता।

घोर की ज्योत्स्ना उलूकों को बिना

दृष्टि के दुर्योग से भाती नहीं। (जानकीजीवन, पृ0 220-39)

दुष्टों की दृष्टियाँ अच्छाई में भी बुराई ही खोजती हैं।

<u>मुद्रा अलंकार :—</u>

बिठुर में कार्तिकी पूर्णिमा को आज मेला मेला लगता है, यहाँ दूर दूर के तीर्थयात्री आते हैं। इसी मेले में मिथिला के अष्ट वशिष्ठ एवं राजभक्तों की

कवि का कल्पना प्रवण हृदय चित्र-विधान में अत्यन्त कुशल है। उर्मिला-पति-वियोग की स्थिति में प्रायः मूर्छित हो जाती है। कुछ क्षणों के पश्चात् मूर्छा का टूटना भी स्वाभाविक है। इस घटना के सम्बन्ध में कवि की उत्प्रेक्षा द्रष्टव्य है—

दीना शोक विषाद कण्टक दुखी दीना सदा उर्मिला

होती थी हत चेतना वह कभी आती कभी चेतना।

मानो व्याकुल प्राण त्याग उसको पृथ्वी पास हो,

आते थे फिर लौट ज्येष्ठ भगिनी या लोक की लाज से।

(जानकीजीवन, पृ० 14 प्रथम सर्ग)

दृष्टान्त :— चन्द्रिका के समान सीता चन्द्र के समान श्रीराम का साथ नहीं छोड़ना चाहती हैं :—

न चन्द्रिका चन्द्र बिना विराजती,

न भासती भास्कर के बिना विभा

छुटी न छाया तन की शरीर से

रहे प्रिया बिन प्राणनाथ क्यों? (जानकीजीवन, पृ० 54)

'अरुणरामायण'

'अरुण रामायण' रामकथा पर आधारित महाकाव्य है। इसमें कवि ने अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है, जिनमें अनुप्रास उपमा, रूपक और उदाहरण आदि अलंकार कवि के प्रिय अलंकार हैं।

अनुप्रास :— कवि ने अनुप्रास के सभी भेदों का प्रयोग किया है। वृत्त्यनुप्रास के कुछ उदाहरण देखिए —

खिल उठते कभी-कभी कमनीय कपोल-कमल (अरुणरामायण, पृ० 11)

कमनीय कलाओं से कल-कल कोमल-कोमल। (वही, पृ० 31)

हर ओर हरित धरती, हेमन्ती हरियाली। (वही, पृ० 35)

इसी प्रकार के अनेक उदाहरण मिलेंगे जो कवि की सहज अभिव्यक्ति के प्रतीक हैं।

उपमा :— उपमा अलंकार कवि का अत्यन्त प्रिय अलंकार है। राम लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ स्वयंवर देखने आए हुए हैं। विश्वामित्र दोनों का परिचय जनक से करवाते हैं — जिस क्षण श्रीराम औ' लक्ष्मण ने किया नमन उत्फुल्ल प्रात शतदल-समान विदेह लोचन। (अरुणरामायण, पृ0 41)।

सीता से उनकी सहेलियाँ राम के रूप का वर्णन करती हैं —

मनमोहक उनका रूप रसीला है सीते।

मणि-कांचित सदृश उनका मुख नीला है सीते। (अरुण0पृ0 48)

राम की तुलना सूर्य से तथा सीता की तुलना उनकी लाली से की गयी है—

रवि सदृश राम सीता उनकी अरुणाई थी। (वही, पृ068)

मन्थरा कैकेयी के मन में राम का राज्याभिषेक सुनकर उथलपुथल मचा देती है —

तू मोह पंक में फँसी मीन-सी तड़प रही

कुछ ही पहले तू मन मृग-सी थी कुदक रही। (वही, पृ0120)

अब उसके मन में भी हलचल होने लगती है —

आस्था की दृढ़ दीवार अचानक हिलती थी

मन के भीतर मन्थरा स्वच्छन्द मिलती थी। (वही, पृ0143)

राम के वनगमन की बात सुनकर लक्ष्मण शिशु की तरह व्याकुल हो उठते हैं —

शिशु के समान लक्ष्मण-चितवन में अश्रु-नीर

सुन दुःसह वचन हुआ आकुल व्याकुल शरीर। (वही, पृ0206)

लक्ष्मण रात रात भर जागकर रामसीता का पहरा देते हैं —

इसे देखकर सभी आश्रमवासी चकित हैं '—

आश्रमवासी भी चकित विलोक कड़ा पहरा।

तरु के समान व्यक्तित्व रात भर रहा खड़ा। (वही, पृ0213)

भरत जब ननिहाल से आते हैं उन्हें सभी समाचार ज्ञात होते हैं। वे बहुत ही दुखी होते हैं। वे इसका कारण अपने को मानते हैं —

मैं अशुभ ग्रह के समान ही दुखद हूँ

मेरे चलते वन में सीता — वन में गईं।(अरुण० पृ० 275)

रावण सीता को हरने आया है। वह उन्हें तरह-तरह से प्रभावित करता है और सीता राम-लक्ष्मण को आया जानकर अति प्रसन्न होकर ऊपर ही देखने लगती हैं—

सीता की आँखें हुईं चपला खंजन-सी

उठीं उत्सुक सदा आनन्दित मृगनयनी।(वही, पृ० 387)

इसी प्रकार उपमा अलंकार के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं —

विषधर-समान ही तो स्वदेश रिपु होते हैं।(वही, पृ० 499)

<u>उपमेयोपमा</u> —

वैसी न कहीं देखी न कभी ऐसी सुषमा

मानव सुन्दरता से न उचित आती उपमा।(वही, पृ० 210)

अंगद रावण से कह उठता है —

गम्भीर सिन्धु-सम वे हैं धीर हिमालय सम

दुख सुख घड़ियों में कभी न उनके मन में भ्रम।(वही, पृ० 514)

<u>रूपक</u> :— कवि ने उपमा के बाद दूसरे जिस अलंकार का प्रयोग सबसे अधिक किया है, वह रूपक है। सांगरूपक के कुछ उदाहरण देखिए —

निर्मल उर मंदिर में नवलता मणिदीप

बिखराते हैं जल मुक्ता पावन नयन-सीप।(वही, पृ० 4)

शृंगी ऋषि शान्ता सहित अयोध्या पधारे हुए हैं और वे जाना चाहते हैं। सभी उन्हें रोकना चाहते हैं। तब शृंगी ऋषि कहते हैं —

सम्मान सरोवर मेंबकिसना करें स्नान?

जब से आए हम यहाँ मिले हैं पद्म-प्राण।(पृ041)

राम द्वारा धनुष भंग करने पर परशुराम, रुष्ट होते हैं तब राम और अधिक विनम्र हो जाते हैं —

सुनु भृगुपति की वाणी श्री राम विनम्र अधिक

नम्रता-सरोज विवेक सुरभि से पुलकायित।(वही, पृ083)

राम भरत को सुचारू रूप से शासन करने का उपदेश देते हुए कहते हैं —

शासन-व्यवधान नहीं हुवे यह ध्यान रहे

चेतनाश्रित से भिन्न कोई प्राण रहे।(अरुण0पृ0225)

कैकेयी को अपने कर्मों से पश्चात्ताप हो रहा है। वह कहती है कि मेरे मानस पर स्वार्थ की धर्म चढ़ गया है अब मेरे पापों के शमन के लिए क्या उपाय है —

मेरे मानस पर स्वार्थ-तिमिर चढ़ गया हाय,

मेरे पापों के शमन हेतु अब क्या उपाय?वही, पृ0 262

राम भरत जैसे भाई को पाकर अपने को धन्य मानते हैं —

मैं धन्य कि मुझे भरत-सा सहृदय बन्धु मिला

मेरे मानस-सर में अनुपम उर कमल खिला।(वही, पृ0 299)

इस प्रकार रूपक अलंकार द्वारा काव्य-सौन्दर्य में वृद्धि हुई है।

<u>पुनरुक्तिप्रकाश</u> :— कवि ने काव्य-सौन्दर्य में वृद्धि के लिए इस अलंकार का प्रयोग किया है —

फूल ही फूल ही फूल ही फूल ही फूल ही फूल।

झूम झमझमा रही पावन पराग की पवन धूल।(वही, पृ0 46)

आते ही बोली अरी जानकी सुन-सुन-सुन

यों कहती हूँ, तू उठ हृदय से गुन-गुन-गुन।(अरुण0पृ081)

कंपित थर-थर-थर प्रोषित प्रसून शरीर।

वन-नदी, नदी-वन-गिरि र मरु को पार-पार

तर-तर-पर निकले तर-तर-पर को पुचकार।(अरुण०पृ०237)

सन-सन-सन-सन पवन तीर सा चुभवाई

कपिदल-शोभित आ पर्वत पर रावे अरुणाई।(वही, पृ० 293)

उदाहरण :— विश्वामित्र राम को लेने आए हैं। सभी रानियाँ राम लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ जाना सुनकर उदास हो जाती हैं। वे ऐसी प्रतीत होती हैं, जैसे हेमन्त ऋतु में सरयू नदी का प्रशान्त पुलिन—

सब करुण मौन पर नहीं सुमित्रा मुख-मलिन

[illegible] हेमन्त काल में सरयू का ज्यों शान्त पुलिन।(वही, 23)

राम विश्वामित्र के साथ उनके आश्रम में पहुँच जाते हैं। उनका शरीर वीरता रूपी वृक्ष में सात्विक श्रृंगार की तरह सुशोभित है —

वीरता वृक्ष में ज्यों सात्विक श्रृंगार सुमन

वैसा ही था सुशोभित रामचन्द्र का तन।(अरुण० पृ० 57)

दासी मंथरा कूटनीति से काम लेती है। वह अपने बिल से फन निकालते हुए विष-धर की तरह दो-चार वाक्य कहकर चुप हो जाती है —

ज्यों बिल से अपना फन निकालता है विषधर

हो गई मौन दासी दो चार वाक्य कहकर।(वही, पृ० 138)

शासक के बिना अयोध्या सूनी-सूनी लग रही है — जैसे गृहपति के बिना गृह सूना प्रतीत होता है —

शासक के बिना बहुत सूना समस्त शासन,

जैसे गृहपति से रहित शून्य श्रीहीन भवन।(वही, पृ० 236)

कवि ने शत-पुत्रक से दो साध्वी की वन्दना श्रेष्ठ बतलायी है।
इसे कवि अनेक दृष्टान्तों से पुष्ट करता है —

दो साध्वी की वन्दना श्रेष्ठ शत-पुत्रक से
उत्तम है केवल एक इंदु सौ-सौ उडु से
सौ-सौ कागों में कोयल क्या छिपने वाली?
झरती है शरद काल में ही तो शेफाली।(अरुण० पृ० 4)

राम वन जा रहे हैं।लक्ष्मण भी उनके साथ जाना चाहते हैं। वे भी माँ से आज्ञा
चाहते हैं — माँ कहीं अलग क्या रह सकता मैं भाई से?
हो सकता है रवि दूर कभी अरुणाई से।(वही, पृ० 176)

देखिए — प्रायः जो जैसा, वैसा उसका मित्र सज्जन
हिंसों का मित्र नहीं होता है कोई जन।
स्वार्थों से मैत्री सुजन कैसे कर सकते हैं?
मित्रों की पीड़ा शत्रु नहीं सह सकता है।(वही, पृ० 353)

विभीषण के लिए कहा गया है —

गृह का प्रदीप ही गृह में आग लगाता है।
कहीं भी तो भाई का रिपु बन जाता है।(वही, पृ० 489)

जब रावण सब तरफ से निराश हो जाता है तब कुम्भकर्ण को जगाता है।कुम्भकर्ण
उसे डाँटता है —

रे लात चला दी तुमने बन्धु विभीषण पर?
बन गया तुम्हारा वह भी और रिपु से मिलकर?
गृह दीपक से ही गृह में आग लगाते तुम
लंका जलवा लेने पर मुझे उठाते तुम? (वही, पृ० 541)

इस प्रकार के अनेकों दृष्टान्त इस काव्य में देखने को मिलते हैं। जिन्हें पढ़कर कवि

के पाण्डित्य का ज्ञान तो होता ही है, मन प्रसन्न होजाता है।

<u>उत्प्रेक्षा</u> :— राम लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ सीता के स्वयंवर में जाते हैं। उन्हें देखकर जनक अत्यन्त हर्षित होते हैं, मानों उनके हृदय में आनन्द पुष्प बरस रहे हों —

देखकर राम-लक्ष्मण को चकित जनक सहसा

मानो आनन्द सुमन उनके उर पर बरसा। (अवध०पृ०40)

राम-सीता-लक्ष्मण वनवास जा रहे है। सभी अयोध्यावासी दुखी हैं। सुमन्त उनको दण्डकारण्य के बाहर छोड़ कर रथ वापस करते हैं। वे अत्यन्त दुखी हैं उनके जाने से पशु-पक्षी जलचर भी दुखी हैं घोड़े भी मानों सुमन्त के आस-पास रो रहे हैं। कवि की उत्प्रेक्षा देखिए —

घोड़ों ने चरना छोड़ दिया अब हरित घास

मानों वे भी रोते सुमन्त के आस-पास। (वही, पृ० 224)

भरत सभी अयोध्यावासियों के साथ राम को वापस लौटाने के लिए चित्रकूट जाते हैं। इतने में वहीं जनक आदि भी आ जाते हैं। यह सुनकर ऐसा प्रतीत होता है, मानों कठिन काल में सन्तोष रूपी कमल खिल गया हो —

इतने में जनक आगमन का संवाद मिला

मानों इस कठिन काल में तुष्टि-सरोज खिला। (वही, पृ०311)

हनुमान सीता जी की खोज में लंका जाते हैं सीता अशोक वाटिका में मिल जाती हैं हनुमान बहुत ही खुश होते हैं। मानों शिव की अन्तरात्मा में परमानन्द रूपी सुमन खिल गया हो —

हनुमत्-प्राण हर्षित, हनुमत हृदय अर्पित।

मानों शिव-अन्तर पर आनन्द सुमन गर्भित। (वही, पृ० 403)

<u>उल्लेख</u> :— राम की शिव कथा को कवि ने अनेक प्रकार से फलदायिनी कहा है—

तुम कैसे कहूँ कि है सचमुच वैसी सीता। (अरुणरामायण, पृ0 58)

निम्नांकित उदाहरण में पुनरुक्ति प्रकाश और उदाहरण को एक साथ प्रयुक्त किया गया है —

[illegible]

दशरथ प्रसन्न, दशरथ प्रसन्न, दशरथ प्रसन्न

ज्यों सफल किसान देखकर मुदित अपार अन्न। (वही, पृ0 111)

यथासंख्य :— जिस गृह में राम भरत पढ़ते थे पूजा मंदिर,

निर्मल मयंक है एक एक है विमल मिहिर। (वही, पृ0 256)

<u>अतिशयोक्ति</u> :—

मन की गति से भी अधिक प्रखर उसमें गति है।' (वही, 361)

<u>विशेषोक्ति</u> :—

मंथरा कैकेयी को समझा रही है —

लगता कि एक मछली हो रही अलग जल से

षड्यन्त्र कर चुकी कौशल्या निज नृप बल से। (वही, पृ0 125)

<u>परिसंख्या</u> — कवि ने यहाँ पर पूर्णिमा के चन्द्र को आकाश से हटाकर सीता की आँखों में आरोपित किया है —

उसके लोचनदर्पण में ही पूर्णिमा आज

अम्बर श्यामिता विमल उसकी लालिमा आज (वही, पृ0 58)

---

## पंचम अध्याय

## 'वक्रोक्ति'

### वक्रोक्ति सम्प्रदाय :—

वक्रोक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य कुन्तक हैं। इन्होंने ध्वनि के व्यापक, सिद्धान्त का विरोध कर 'वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्' की उद्घोषणा की। भारतीय साहित्य में वक्रोक्ति प्राचीनकाल से ही किसी न किसी रूप में विद्यमान थी। कुन्तक ने इसे व्यापक रूप देकर सम्प्रदाय विशेष के रूप में प्रतिष्ठित किया।

### वक्रोक्ति का स्वरूप और विकास :--

'वक्रोक्ति निपुणेन विलासिजनेन' इस प्रकार प्राचीन साहित्य-ग्रंथों में वक्रोक्ति शब्द क्रीड़ा-लाप या परिहास के अर्थ में प्रयुक्त होता था। भामह, दण्डी इत्यादि आचार्यों ने इसे व्यापक रूप प्रदान किया। भामह वक्रोक्ति को अतिशयोक्ति का पर्यायवाची मानते हैं। उनके अनुसार यह वाग्वैदग्ध्य का एक रूप है और सभी अलंकारों का मूल भी यही है —

सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते।

यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनया विना।(2/85)

वक्रोक्ति की परिभाषा वे इस प्रकार देते हैं —

'लोकातिक्रान्तगोचरं वचनम्'

अर्थात् लोक की साधारण कथनप्रणाली से भिन्न उक्ति ही वक्रोक्ति है।

दण्डी ने अपने काव्यादर्श में वक्रोक्ति का विवेचन विस्तारपूर्वक किया है। उन्होंने वाङ्मय को दो भागों में विभक्त किया है, (1)स्वभावोक्ति(2)वक्रोक्ति। वक्रोक्ति

अलंकार विशेष नहीं है बल्कि स्वभावोक्ति अलंकारों के अतिरिक्त अर्थालंकारों का समुदित रूप है। श्लेष द्वारा वक्रोक्ति में सौन्दर्य की वृद्धि होती है —

श्लेषः सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम्।

द्विधा भिन्नं स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम्। ( 2/362)

अर्थात् श्लेष प्रायः वक्रोक्ति में सर्वत्र सौन्दर्य का विधान करता है। स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति दोनों अलग-अलग प्रकार का सौन्दर्य व्यंजित करती हैं।

आचार्य वामन ने वक्रोक्ति को दूसरे ही रूप में प्रतिपादित किया है। उन्होंने एक अर्थालंकार विशेष के रूप में इसकी प्रतिष्ठा करके काव्यालंकार सूत्र में उसका लक्षण इस प्रकार किया है —

'सादृश्यात् लक्षणा वक्रोक्तिः'

अर्थात् सादृश्य पर आश्रित लक्षणा वक्रोक्ति कहलाती है। दण्डी के समान कम गुण से उनका लक्षण मिलता है। बाद में वक्रोक्ति को अलंकार विशेष के रूप में ही ग्रहण किया गया। रुद्रट, मम्मट, वाग्भट, विद्याधर, हेमचन्द्र और जयदेव आदि इसे शब्दालंकार के अन्तर्गत मानते हैं। अग्निपुराण में भी वक्रोक्ति का शब्दालंकार के रूप में उल्लेख किया गया है —

वक्रोक्तिस्तु भवेद् भंग्या काकुतेन कृत द्विधा। (342/33)

रुद्रट ने इसके काकु वक्रोक्ति और श्लेष वक्रोक्ति, ये दो भेद किये हैं। रुय्यक इसे अर्थालंकार मानते हैं किन्तु ध्वनिवादी प्रमुख आचार्य आनन्दवर्धन और अभिनव गुप्त भामह के समान वक्रोक्ति को अलंकार विशेष नहीं, वरन् समग्र अलंकारों का मूल मानते हैं। उनके मत से वक्रोक्ति द्वारा ही काव्य सौन्दर्य की व्यंजना होती है। आनन्दवर्धन के ध्वनि-सिद्धांत के समक्ष उनका वक्रोक्ति-विवेचन अत्यन्त गौण है। आचार्य महिम भट्ट ने भी कुन्तक के समान ही लोक प्रसिद्ध रीति की अवहेलना कर

उसी अर्थ को, वैचित्र्यपूर्ण रीति से किए गए कथन को वक्रोक्ति माना है। महिम भट्ट ने वक्रोक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी है —

> प्रसिद्धं मार्गमुत्सृज्य यत्र वैचित्र्यसिद्धये।
>
> अन्यथैवोच्यते सोऽर्थः सा वक्रोक्ति रुदाहृता।"

वक्रोक्तिवादी आचार्य इस उक्ति-वैचित्र्य को शब्दगत, अर्थगत, और शब्दार्थ उभयगत मानते हैं। शब्द और अर्थ के वैचित्र्य के बिना काव्य के मुख्य उद्देश्य आनन्द का पूर्ण प्रसार नहीं हो सकता। काव्य की परिभाषा में कुन्तक ने शब्द-अर्थ के वैचित्र्य को ही प्रधानता देते हुए लिखा है —

> शब्दार्थौ सहितौ वक्रकवि व्यापारशालिनि।
>
> बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि।"

अर्थात् कवि के वक्र व्यापार से युक्त काव्य कोविदों को आह्लादित करने वाले व्यवस्थित रूप में नियोजित शब्द और अर्थ का सम्मिलित रूप ही काव्य है।

इस प्रकार कुन्तक शब्द-अर्थ को अलंकार्य और वक्रोक्ति को उनके अलंकरण का साधन मानते हैं, जैसा कि इस उक्ति से स्पष्ट है —

> उभावेतावलंकार्यौ तयोः पुनरलंकृतिः
>
> वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभंगी भणितिरुच्यते।" (व0जी0 1/10)

अर्थात् शब्द और अर्थ दोनों अलंकार्य हैं और उन्हें अलंकृत करने वाली वैदग्ध्यभंगी-भणिति ही वक्रोक्ति है। अभिनव गुप्त ने भी इसी प्रकार शब्द और अर्थ की वक्रता उनके लोकोत्तर रूप में प्रतिष्ठित होने पर सम्भव मानी है —

> शब्दस्य हि वक्रता अभिधेयस्य च वक्रता लोकोत्तीर्णेन रूपेणा-
>
> वस्थानमिति अयमेवासौ अलंकारस्यालंकारान्तरभावः।" लोचन, पृ0 208)

कुन्तक ने भामह और आनन्दवर्धन द्वारा निर्दिष्ट वक्रोक्ति के स्वरूप को ही ग्रहण करके काव्य के प्रधान भूत अंतरंग तत्त्व के रूप में जो

प्रतिष्ठित किया है। भोजराज ने भी ध्वनि की प्रतिक्रिया के रूप में वक्रोक्ति का प्रतिपादन किया है। किन्तु वे वक्रोक्ति का प्रमुख रूप से विवेचन नहीं कर सके हैं। वक्रोक्ति सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य कुन्तक ही हैं।

कुन्तक ने वक्रोक्ति में तीन बातें आवश्यक मानी हैं, काव्य-कौशल या कविप्रतिभा, चमत्कार और उक्ति।

वैदग्ध्यं विदग्धभावः कवि कर्म कौशलं तस्य विच्छित्तिः तया भणितिः, विचित्रैव अभिधा वक्रोक्तिः।— वक्रोक्तिजीवितम्, पृ० 22

<u>वक्रोक्ति के भेद :—</u>

आचार्य कुन्तक ने प्रबन्ध के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंगों को दृष्टि में रखकर वक्रोक्ति के निम्नलिखित छह भेद माने हैं —

( 1 ) वर्ण-विन्यास वक्रता

( 2 ) पद-पूर्वार्द्ध वक्रता

( 3 ) पद परार्द्ध-वक्रता

( 4 ) वाक्य वक्रता

( 5 ) प्रकरण वक्रता

( 6 ) प्रबन्ध वक्रता

<u>( 1 ) वर्ण-विन्यास वक्रता</u> :— इसके अन्तर्गत व्यंजन वर्णों की सौन्दर्य सम्बन्धी बातों का उल्लेख किया जाता है। वर्ण-विन्यास-सौन्दर्य में आचार्यों ने यमक और अनुप्रास का विवेचन किया है। आचार्य कुन्तक ने इन अलंकारों से सम्बन्धित कुछ मौलिक धारणाएँ भी उपस्थित की हैं। अनुप्रास-योजना के सम्बन्ध में वे लिखते हैं-

'नातिनिर्बन्धविहिता नाप्यपेशलभूषिता।

पूर्वावृत्तपरित्याग — नूतनावर्तनोज्ज्वला।" (व०जी०2/4)

अर्थात् अनुप्रास-सौष्ठव के लिए कवि को अति निर्बन्ध न होना चाहिए। वर्ण वर्ण मधुर और सुन्दर होने चाहिए तथा पूर्व आवृत्त वर्णों का प्रयोग होना चाहिए। इनके अतिरिक्त रीति और गुण के अनुरूप ही अनुप्रास की योजना होनी चाहिए। इसीप्रकार उन्होंने यमक में प्रसाद गुण, शब्द माधुर्य और औचित्य को आवश्यक माना है।

(2) पदपूर्वार्द्ध वक्रता :— इसमें पद के पूर्वार्द्ध में रहने वाली वक्रता का उल्लेख किया जाता है। इसके अन्तर्गत पर्याय, रूढ़ि उपचार, विशेषण संवृत्ति, वृत्ति, भाव, लिंग, क्रिया आदि के प्रयोग की विधि आती है। वर्ण समुदाय विभक्ति-रहित रहने पर प्रकृति और विभक्ति युक्त होने पर पद कहलाता है। पद के पूर्वार्द्ध में प्रकृति रहती है। इस वक्रता के अनेक प्रकार हैं — जैसे रूढ़ि-वैचित्र्य वक्रता, पर्याय वक्रता, उपचार वक्रता, विशेषण वक्रता, संवृत्ति वक्रता, प्रत्ययवक्रता, वृत्ति वक्रता, भाव वैचित्र्य वक्रता, लिंग वैचित्र्य वक्रता, क्रिया-वक्रता आदि।

(3) पदपरार्द्ध वक्रता :— पद के परार्द्ध में प्रत्यय रहता है, इसीलिए इसे प्रत्यय वक्रता भी कहते हैं। इसके भी अनेक भेद हैं — काल वैचित्र्य वक्रता, कारक वक्रता, संख्या वक्रता, पुरुष वक्रता, उपग्रह वक्रता, प्रत्यय वक्रता, पद वक्रता आदि। इनमें काल, कारक, संख्या आदि के प्रयोग पर विचार किया गया है।

(4) वाक्य वक्रता :— पदों के संयुक्त रूप से वाक्य बनता है। वाक्य वक्रता कवि की प्रतिभा पर आधारित है। प्रधान रूप से इसके अन्तर्गत अलंकारों पर विचार किया गया है। कुन्तक ने वक्रोक्ति जीवित में लिखा है —

वाक्यस्य वक्रता वान्या भिद्यते सहस्रधा,

यत्रालंकारवर्गोऽसौ सर्वोऽप्यन्तर्भविष्यति। (वक्रोक्तिजीवितम्, 1/20)

कुन्तक अलंकार में चारुत्व के अतिरिक्त वैचित्र्य और कवि-प्रतिभा को भी विशेष महत्त्व देते हैं। वाक्य-वक्रता के अन्तर्गत वस्तुवक्रता भी आती है। उन्होंने वस्तु का स्वरूप दो प्रकार का बतलाया है(1)स्वभाव प्रधान और(2) रस प्रधान। स्वभाव प्रधान वस्तु में स्वभावोक्ति अलंकार का वर्णन किया गया है। रस प्रधान वस्तु में रस का चमत्कार रहता है। रसवत् अलंकार को कुंतक अलंकार्य मानते हैं।

(5) प्रकरण वक्रता :—

वाक्यों के संयोग से प्रकरण बनता है। प्रकरण प्रबन्ध का एक अंग मात्र है। अतः प्रबन्ध-सौष्ठव के लिए प्रकरण की चारुता पर भी ध्यान देना आवश्यक है। अनेक लालित्यपूर्ण और सरस प्रसंगों से प्रकरण में सौन्दर्य का समावेश किया जाता है। कुन्तक ने ऐसे अनेक प्रसंगों का उल्लेख उदाहरण सहित किया है।

(6) प्रबन्धवक्रता —

जब सम्पूर्ण प्रबन्ध में वक्रता होती है, तब उसे प्रबन्ध-वक्रता कहते हैं।

## आलोच्य महाकाव्यों में वक्रोक्ति

### 'जननायक'

वचनवक्रता :— कवि ने बापू की अनुपस्थिति को, उनके विरह को सीधे ढंग से व्यक्त न कर वचन वक्रता का आधार ग्रहण किया है —

फूलों क्यों अब खिली नहीं हो? क्योंकि नहीं वह फूल हमारा।

तारो क्यों अब चमक न तुममें? क्योंकि आज टूटा 'ध्रुवतारा।

पेड़ों किसे प्रणाम कर रहे? जो किसे पहचान न पाये।

बादल क्या बरसा करते हो? बापू हमें याद अब आये।

(जननायक, पृ0 519)

अंग्रेज सामने बहुत ही प्रेम से बात करते हैं किन्तु उनकी नीति भारतवासियों के लिए घातक है —

जाल पड़ा है जिस पर उनकी बिछी हुई हैं मीठी बातें

मुँह में राम बगल में छुरियाँ कहते हैं मित्र, पर हैं घाती। (वही, 245)

गांधी जी अंग्रेजों की नीति समझ जाते हैं —

बारह वर्ष रही भी नलकी में फिर भी कुत्ते की दुम टेढ़ी

ये हो सकते नहीं तुम्हारे चाट करो तुम चोटी एड़ी। (वही, 432)

जग में अधिक भला होना भी कितना खतरनाक होता है।

रात चाँद को कब रख पाती, विश्व उजाले को रोता है।

वही, पृ0 512

<u>प्रकरण वक्रता</u> :— अंग्रेज भारत के टुकड़े करना चाहते हैं। इसलिए वे जिन्ना को उकसाते हैं और जिन्ना पाकिस्तान अलग करने का राग अलापने लगते हैं —

मिस्टर जिन्ना खड़े हो गये अपना बाजा अलग बजाने

भी वो चूहे लाकर बिल्ली-लोमड़ियों की चली रिझाने। (वही, 302)

एक बार फिर ब्रिटिश राज्य को-गांधी जी ने मार्ग सुझाया

बहरों के आगे न डरे अंधे को दीपक दिखलाया। (वही, 330)

<u>वर्णवक्रता</u> :—

गांधी जी गुण्डों के चक्कर में परेशान हैं —

नतोपमा आयती, स-उर्मिका

मनोहरा, सुन्दर-पर्व-संकुला

नरेन्द्र शाखान्तर अंगुली लसी

कथा महाभारत के समान ही। (नवप्रसंग, पृ0 60-102)

'जयभारत'

पद परार्द्ध वक्रता :—

श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र को युद्ध न करने के लिए समझा रहे हैं। इसके लिए वे अनेक नीति वाक्य कहते हैं —

फूटेगा घड़ा होय कहीं न कहीं से पानी,

घड़ों ही नालियाँ न हों तो घर की हानी।

घुस आते हैं यहाँ उन्हीं से सभी सरीसृप

गेह-कुम्भ की देखरेख भी कही गई नृप।

इन्द्रिय रन्ध्रों से आ घुसे विष विचार जो चित्त में।

तुम उन्हें दूर कर दूजिए रत कल्याण निमित्त में। (जयभारत 325)

यहाँ पर पद-परार्द्ध-वक्रता का प्रयोग किया गया है।

वचन वक्रता :—

दुर्योधन के संधि प्रस्ताव को लेकर द्रौपदी अपने अपमान की याद दिलाकर सभी को धिक्कारती है —

पर पाँच भाइयों के धनी वे दीन क्यों कहलायेंगे?

निज बन्धुओं का चित्त चौसर खेलकर बहलायेंगे। (वही, 316)

इसी प्रकार दुर्योधन कृष्ण पर व्यंग्य करता है —

हरि ने जब यह कहा मूर्छा छाया सन्नाटा

दुर्योधन ने जो व्यंग्य करके ही बाटा —

सात स्वरों के तीन ग्राम तो सभी कही " हैं।

एक स्वर में पाँच ग्राम ये सुने नहीं हैं। (जयभारत, पृ0 332)

'पार्वती'

वचनवक्रता :—

इस काव्य में स्थान-स्थान पर वचन-वक्रता देखने को मिलती है। पार्वती और बटु-वेशधारी शंकर का संवाद इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। शंकर जी पार्वती के प्रेम की परीक्षा लेने के उद्देश्य से पार्वती के पास जाते हैं और उन्हें शंकर जी के प्रति निरुत्साहित करते हैं —

सुन सखी के वचन बोला नम्रता से ब्रह्मचारी,

देवि अंगारहीन हम हैं बटुक केवल विपिन चारी। (पार्वतीसर्ग पृ0158)

विप्र हूँ बटु हूँ क्षमा वाचालता हो देवि मेरी,

देख तप और रूप चपल हो उठी कुछ प्रकृति मेरी

गोपनीय रहस्य यदि कुछ हो न तो कहिये अनभीति।

शान्त कर दो कुछ कुतूहल प्रश्न मिथुनों से कठोली। (वही, पृ0160)

है तुम्हारा इष्ट ऐसा युवा कौन कठोर त्यागी

हो सका इस रूप से भी तुष्ट जो न अभी विरागी

कौन इस सौन्दर्य के सौभाग्य से वंचित अभागा

वह हृदय में देवि जिसके प्रणय का गौरव न जागा। (वही, 161 )

चिर अमंगल मूर्ति सम्यक हैं ये योगेश्वर निखिल जग में,
जो रही हो तुम उन्हीं के हित प्रवर्तित तपोमय में
उस अमंगल मय वरण में देखकर ध्रुव रति तुम्हारी
हो रही हित कामना से चपल यह वाणी हमारी।
विश्व के सौन्दर्य की प्रतिमा कहाँ तुम गिरि कुमारी
औ कहाँ ये रूपहीन त्रिनेत्र अहि गन धारी
देख तुमको और स्मरण कर इष्ट की महिमा तुम्हारे
हृदय पर मति पर हृदय में देव अति होता हमारे।(

(पार्वती, सर्ग 7 शिवपरीक्षा पृ०163)

रानी मेना शंकर जी को देखकर अत्यन्त रूष्ट हो जाती हैं और वे नारद जी को साथ ही साथ ब्रह्मा और विष्णु जी को भी बुरा भला कहती हैं। कैलाश-प्रयाण के समय ब्रह्मा-विष्णु मेना के पास जाकर उनकी बातों का बुरा न मानकर अपने को धन्य मानते हैं —

बोले ब्रह्मा और विष्णु प्रेम से मिले
रानी पूजन से हम पर सदा बरसते
यह तिरस्कार अत्यन्त अलभ्य है हमको
तुमसे ही मिलता धन्य तुम्हारे प्रभु को।(वही, कैलाशप्रयाण, सर्ग 12)
पृष्ठ 255)

पार्वती-शंकर दोनों कैलाश में विहार कर रहे हैं और आपस में परिहास भी करते हैं —

तुम त्रिलोक की सुषमा की साकार अकेली
मन योगी के हेतु मधुर अज्ञात पहेली
फिरती थी अभीष्ट के हित निर्जन विपिन में
शंका होती तुम्हें देखकर मेरे मन में।(वही, सर्ग 13 पृ0 279)

(285)

हानि लाभ का एक न लेखा शिशिर सफल व्यापारी
ले मन दाम बेचते फलियाँ मटर चने की प्यारी
वाक्कार बैठी ले आये शिशिर जौहरी न्यारे।

(तारपथ, पृ0 509)

'लोकायतन'

वर्णवक्रता :—

कवि ने सीता के पृथ्वी से उत्पन्न होने और उनकी अग्निपरीक्षा को आधार बनाकर नवीन युग-सत्य का उल्लेख किया है। यहाँ वर्णवक्रता के दर्शन होते हैं —

कृषक सीर पृथ्वी का युग सीता
अग्नि परीक्षा देने फिर मुक्त
धरती ही धरती पर पावक पग
चिर शोणित की ज्वाला सी पावन। (लोकायतन, पृ0 574)

वचन वक्रता :—

जो व्यक्ति अहंकार से युक्त होकर अपने को विशेष चतुर मानते हैं और नाना प्रकार के तर्क प्रस्तुत करतेहुए अपने मत की पुष्टि करते हैं, वे इस संसार में अज्ञान रूपी अन्धकार में भटकते रहते हैं। इस प्रकार अज्ञान रूपी अन्धकार में भटके हुए व्यक्ति भला दूसरे का सही पथ-निर्देशन कैसे कर सकते हैं? इस तथ्य को कवि ने वचन-वक्रता के माध्यम से व्यक्त किया है —

जो अहंभाव से स्फीत अविद्याग्रस्त मन,
अति आत्म विज्ञ, तार्किक अति रँग चतुर मन।

नव तम में गिर के भटका करते प्रतिक्षण

सीधा आँखों को करता मार्ग प्रदान। (लोकायतन, पृ० 238)

<u>पदपरार्द्धवक्रता</u> :— कवि ने आकाश को नीले पक्षी की तरह वर्णित किया है -

निःसीम नील पक्षी सा

बैठा लगता चोटी पर

लोमश पांखों से ढाले

चीड़ों के तरु वन पुंजित। (लोकायतन, पृ० 192)

## 'झाँसी की रानी'

<u>वचन-वक्रता</u> :— रानी लक्ष्मीबाई सैनिकों को युद्ध के लिए प्रेरित करती हुई कहती हैं कि हमें अपने रक्त से भारत माता के चरणों का प्रक्षालन करना चाहिए और अभिमानी दुःशासन के हृदय को विदीर्ण कर भारतमाता रूपी द्रौपदी के केश प्रक्षालित करने चाहिए। रानी के इस उद्बोधन में वचन-वक्रता का आधार ग्रहण किया गया है —

बोली रानी हे वीरों, अब

यह समय नहीं है सोने का

है समय हृदय के शोणित से

जननी के पग को धोने का। (झाँसी की रानी, पृ० 162)

अब भीष्म प्रतिज्ञा के समान

प्रणपर्व ही है होने का

दुःशासन अरि का हृदय चीर

द्रौपदी केश है धोने का। (वही, पृ० 163)

<u>वर्णवक्रता</u> :— युद्धभूमि में रानी के शरीर से रक्त बह रहा था और उनके

अपने चातक के वियोग में पक्षी भी
मृदु, मृग तृणचर अति कठोर आपदी भी
कैसे दीन मलीन विकल नित रहते हैं
सब प्रकार सब प्रेम करते फिरते हैं। (भगवानराम, पृ0 108)

<u>वचनवक्रता</u> :—

भरत राज्यभार सम्भालने में अपने को असमर्थ मानते हुए कहते हैं कि पर्वत ही वज्र का प्रहार सहन कर सकता है, लघु तृण नहीं। इसी प्रकार मेरे स्वामी श्रीराम ही अयोध्या का राज्य भार सम्भाल सकते हैं, मैं नहीं :—

नरपति पद भारी भार स्वामि उठायें-
इस गुरु भवन से सर्वदा हीन हूँ मैं
भूधर सहता है घात ही वज्र का भी
लघु तृण प्रभु कैसे वज्र का घात लेगा। (भगवानराम, पृ0 133)

'जानकीजीवन'

<u>वर्णविन्यास वक्रता</u> :— अनुप्रास गर्भित अतिशयोक्ति अलंकार द्वारा कवि राम के चित्र को चित्रित करने में अपने को असमर्थ पाता है —

रूचिरता छिपता इस चित्र की परम चारु न चित्रित हो सकी
चतुरता इतनी कवि में कहाँ पटक पावक रंग न सरंग में।।

(जानकीजीवन, पृ0 164-44)

नवम सर्ग के अन्त में राम-राज्य के विमल वैभव की अभिवृद्धि में कवि भावी प्रलय की सूचना दे रहा है, जिसमें सीता का निष्कासन दिन में ही अंधकारमयी रात्रि का सूचक है।

पर मेरी माँ ने झुका दया कुल का मस्तक

ओंठों के बीच छिपा था उसके उर का फन। ( अरुण०-पृ० 25 । )

कैकेयी भी लज्जित है —

जल उठा विवेक अनल शंका कलुषित मन में

बन गई राक्षसी मैं उस दिन दुर्बल क्षण में। (वही, पृ० 302)

भरत अपने मन को भी राम के स्नेह से अलग नहीं मानते —

मैं बहुत अकेला हूँ पर फिर भी उदासीन नहीं

है दूर स्नेह जल से मेरा मन मीन नहीं। (वही, पृ० 306)

---

## षष्ठ अध्याय

## 'रीति और वृत्ति'

### रीति शब्द की परिभाषा :—

रीति शब्द की सिद्धि 'रीङ् गतौ' धातु से क्तिन् या क्तिन् प्रत्यय का योग करने पर होती है। रीति का अर्थ है पन्थ या गति। आचार्य वामन के मत से माधुर्य आदि गुणों से युक्त पदरचना ही रीति है —

विशिष्टा पदरचना रीतिः। (काव्यालंकार, सूत्र 1/2/7)

भोज के अनुसार अभिव्यक्ति के विभिन्न मार्ग होते हैं। लेखक अपनी रुचि के अनुसार इन मार्गों का अनुसरण करते हैं। रीति शब्द इसी अभिव्यक्ति वैभिन्य का द्योतक है—

वैदर्भादि कृतः पन्थाः काव्ये मार्ग इति स्मृतः।

रीङ् गताविति धातोः सा व्युत्पत्त्या रीतिरुच्यते।

(सरस्वतीकण्ठाभरण, पृ0 2/27)

### प्रमुख रीतियाँ :—

भामह और दण्डी के मत से केवल दो रीतियाँ होती हैं (1) वैदर्भी (2) गौड़ी) वामन ने इन दो रीतियों के अतिरिक्त पांचाली का भी उल्लेख किया है। रुद्रट और राजशेखर ने लाटी नामक चौथी रीति की भी चर्चा की है। इस प्रकार काव्य शास्त्र में निम्नांकित चार रीतियों का उल्लेख किया जाता है —

(1) वैदर्भी रीति :— वैदर्भी रीति सर्वश्रेष्ठ रीति समझी जाती है। इसे किसी ने गुण स्फुट रसा, कुछ ने गुण साकल्यमयी और कुछ ने गुण समग्र कहा है। आचार्य राजशेखर ने इसके सम्बन्ध में लिखा है —

वाग्वैदर्भीमधुरिमगुणं स्यन्दते श्रोत्रलेह्यम्। (बालरामायण,)

अर्थात् वैदर्भी रीति से कर्ण-प्रिय माधुर्य गुण का प्रस्रवण होता है। दण्डी ने वैदर्भी रीति का स्वरूप [illegible] निरूपण करते हुए लिखा है —

श्लेषः प्रसादः समता, माधुर्यं सुकुमारता
अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोजः कान्ति समाधयः
इति वैदर्भमार्गस्य प्राणाः दशगुणाः स्मृताः
एषां विपर्ययः प्रायो दृश्यते गौडवर्त्मनि ॥ (काव्यादर्श, 1/41-42)

अर्थात् वैदर्भी रीती के प्राणभूत गुण दस होते हैं —'श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारता, ओज, कान्ति तथा समाधि। वामन वैदर्भी को समग्र गुणों से युक्त मानते हैं —

'समग्रगुणा वैदर्भी' (1/2/11)

विश्वनाथ ने उसका वर्णन इस प्रकार किया है —

माधुर्य व्यंजकैर्वर्णैः रचना ललितात्मिका
अवृत्तिः अल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।

अर्थात् माधुर्य गुण और व्यंजक वर्णों द्वारा वृत्तिहीन या अल्पवृत्ति वाली रचना वैदर्भी होती है।

(2) गौड़ी रीति —

वैदर्भी के पश्चात् गौड़ी रीति का स्थान है। वामन ने उसके स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखा है —

समस्तात्युद्भटपदामोजः कान्तिगुणान्विताम्।
गौडीयमिति गायन्ति रीतिं विचक्षणाः ॥

अर्थात् गौड़ी रीति में ओज, कान्तिआदि गुणों की प्रधानता रहती है। इसमें समास-

बहुलता और उद्भट पदों की योजना पायी जाती है।

दण्डी ने गौड़ी का स्वतंत्र स्वरूप निर्देश नहीं किया है। उसने वैदर्भी की स्वरूप मीमांसा करके अन्त में लिखा है —'एषां विपर्ययः प्रायो दृश्यते गौड़-वर्त्मनि।" अर्थात् इनके विपरीत गुण गौड़ी रीति में मिलते हैं। इससे पता चलता है कि वे गौड़ी को निकृष्ट कोटि की रीति मानते थे, जिससे उनका दृष्टिकोण पक्षपात पूर्ण लगता है।

विश्वनाथ ने गौड़ी की परिभाषा इस प्रकार दी है —

ओजः प्रकाशकैः वर्णैः बन्धः आडम्बरः पुनः।

समासबहुला गौड़ी वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः।

अर्थात् ओजगुण प्रधान प्रकाशक वर्णों से युक्त, समासबहुला उत्कृष्ट रचना शैली गौड़ी कहलाती है।

<u>पांचाली रीति</u> :— वामन ने पांचाली का स्वरूप इस प्रकार निरूपित किया है—

माधुर्य सौकुमार्योपपन्ना पांचाली।' 1/2/13

अर्थात् पांचाली रीति में माधुर्य और सौकुमार्य का भाव रहता है।

राजशेखर के अनुसार —

शब्दार्थयोः [illegible] समोगुम्फः पांचाली रीतिरुच्यते।'

अर्थात् जिस शैली में शब्द और अर्थ का समान गुम्फन पाया जाता है, उसे पांचाली रीति कहते हैं। विश्वनाथ ने पांचाली की परिभाषा इस प्रकार दी है —

समस्त पंचषपदो बन्धः पांचालिका मता।'

अर्थात् 5, 6 समासयुक्त पदों से विशिष्ट रचना-शैली को पांचाली कहते हैं।

लाटी रीति — साहित्य दर्पणकार ने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है —

'लाटी तु रीति वैदर्भीपांचाल्योरन्तरे स्थिता।

अर्थात् वैदर्भी और पांचाली के मध्य की रीति को लाटी रीति कहते हैं।

## वृत्ति

### वृत्ति का स्वरूप और परिभाषा :—

वृत्ति शब्द 'वृत्' वर्तने धातु से क्तिन् प्रत्यय के योग से बना है। वर्तन का अर्थ होता है जीवन। वृत्ति जीवन का वह व्यापार है, जिससे धर्म अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि में सहायता मिलती है। नाटक में जीवन-व्यापारों का ही अनुकरण किया जाता है, इसलिए भरत मुनि ने नाटक के आवश्यक अंग के रूप में वृत्तियों पर विचार किया है। बाद में आचार्यों ने काव्य में भी वृत्तियों का समावेश किया। अभिनव गुप्त सम्पूर्ण संसार को प्रमुख चार वृत्तियों से व्याप्त मानते हैं —

'आस्तां काव्यादौ सर्वो हि संसारः वृत्तिचतुष्टयेनव्याप्तः।' (अभिनव०)

अभिनव गुप्त ने वृत्ति की परिभाषा इस प्रकार दी है —

कायवाङ्मनसां चेष्टा एव सह वैचित्र्येण वृत्तयः।'

अर्थात् नाटक और काव्य के नायक और पात्रों की कायिक, वाचिक और मानसिक चेष्टाएँ या व्यापार-वैचित्र्य वृत्तियाँ कहलाती हैं।

आनन्दवर्धनाचार्य ने भी वृत्ति को व्यापार कहा है —

व्यवहारो हि वृत्तिरित्युच्यते।'' (ध्वन्यालोक 3/33)

जीवन के इन वृत्ति रूप व्यापार विशेषों से जब कवि या नाटककार का हृदय संकुलित होता है; तभी वह साहित्य की सृष्टि करता है। इसलिए वृत्तियाँ नाटक या काव्य की जननी कही गयी हैं। भरत मुनि ने लिखा है ——

सर्वेषामेव काव्यानां वृत्तयो मातृकाः स्मृताः' (ना०शा०20/4)

एवमेते बुधैर्ज्ञेया वृत्तयो नाट्यमातरः।' (ना०शा०22/64)

नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने अभिनवगुप्त के अनुकरण पर वृत्तियों के नाट्यमातृत्व को स्वीकार किया है।

वृत्तियों का उद्भव :— वृत्तियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक रोचक कथाएँ दी गयी हैं। ये कथाएँ वैष्णव और शैव — इन दो मतों के आधार पर हैं। नाट्यशास्त्र में इन दोनों का उल्लेख किया गया है। वैष्णव मत के अनुसार प्रलय के समय भगवान् विष्णु और मधु-कैटभ राक्षस से युद्ध होता है। युद्ध के समय विष्णु की चार प्रकार की चेष्टाओं से नाटक की चार वृत्तियाँ उत्पन्न हुईं।

शैव मतानुयायी आचार्य भगवान् शंकर द्वारा तीन वृत्तियों की उत्पत्ति मानते हैं। कैशिकी वृत्ति को वे ब्रह्मा की आज्ञा से श्रृंगार रस से उत्पन्न हुआ बताते हैं। शारदा तनय एक भिन्न कथा की कल्पना करते हैं। उनके मत से शिव-पार्वती के ताण्डव और लास्य-नृत्य को देखते हुए ब्रह्मा जी ने अपने चारों मुखों से चारों रसों के साथ चार वृत्तियों की सृष्टि की। किन्तु अन्यत्र इस कथा का उल्लेख नहीं मिलता। राजशेखर इस संदर्भ में एक नये प्रसंग की कल्पना करते हैं — वे लिखते हैं कि साहित्य-वधू अपने प्रियतम काव्य-पुरुष की खोज में विभिन्न वेश, विलास और भाव धारण करती है। उसके वेश से प्रवृत्ति, विलास से वृत्ति और वचन से रीति का उद्भव होता है।

वेशविन्यासक्रमः प्रवृत्तिः विलासविन्यासक्रमो वृत्तिः वचनविन्यासक्रमो रीतिः।'

इस प्रकार राजशेखर ने प्रवृत्ति, वृत्ति और रीति तीनों में सामंजस्य स्थापित किया है।

भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में उल्लिखित चारों वृत्तियों की उत्पत्ति चारों वेदों से मानी है —

> ऋग्वेदाद् भारती वृत्ति, यजुर्वेदात्तु सात्वती।
>
> कैशिकी सामवेदाच्च शेष चाथर्वणात्तथा।" (ना0शा022/24)

## वृत्तियों के भेद

नाटक में भरत मुनि ने चार प्रकार की वृत्तियाँ मानी हैं — भारती, सात्वती, कैशिकी और आरभटी। ये चारों वृत्तियाँ दो भागों में विभक्त की गयी हैं। शब्दवृत्ति, अर्थवृत्ति। शब्दवृत्ति में भारतीवृत्ति आती है, क्योंकि इसमें शब्दों की बहुलता रहती है। अर्थवृत्ति में अन्य तीन वृत्तियाँ आती हैं। इनका सम्बन्ध रस, वस्तु और भाव से होता है।

### (1) भारतीवृत्ति :—

भरत मुनि ने भारतीवृत्ति का लक्षण इस प्रकार किया है —

> या वाक्प्रधाना पुरुषप्रयोज्या,
>
> स्त्रीवर्जित संस्कृतवाक्ययुक्ता।
>
> स्वनामधेयैर्भरतैः प्रयुक्ता,
>
> सा भारती नाम भवेत्तु वृत्तिः। (ना0शा022/24)

अर्थात् वह शब्दबहुला संस्कृत वाणी जो पुरुष पात्रों द्वारा प्रयुक्त की जाती है और स्त्रीपात्रों के लिए वर्जित है तथा नटों (भरतैः) द्वारा प्रयुक्त होती है, उसे भारतीवृत्ति कहते हैं।

अभिनवगुप्त ने भी इसे वाग्वृत्तिरूपा (भारती वाग्वृत्तिः) कहा है। पं0 बलदेव उपाध्याय ने इस वृत्ति के स्त्रीपात्रों के लिए वर्जित होने के सम्बन्ध में

दो कारण दिये हैं — एक तो यह कि नाटक के विकास के प्रारम्भिक काल में नाटकों में जब पात्र नहीं रहते थे, उस समय नाटक में इसका समावेश किया गया था। अतः पुरुषों द्वारा ही यह वृत्ति प्रयुक्त होती रही। दूसरा यह कि भारतीवृत्ति में शब्दों की अधिकता रहती है। स्त्रियाँ अपनी स्वाभाविक लज्जाशीलता के कारण शब्दाभिनय के स्थान पर आंगिक चेष्टाओं द्वारा ही अपनी भावनाओं को व्यक्त करती हैं। किन्तु परवर्ती नाटकोंमें इस प्रकार नियम नहीं रहा। भरत मुनि ने भारतीवृत्ति को केवल करुण और अद्भुत रस में प्रयुक्त होना बतलाया है —

भारती चापि विज्ञेया करुणाद्भुत संश्रया।(ना०शा० 22/66)

किन्तु शारदातनय ने इसकी स्थिति सभी रसों में मानी है —

'वृत्तिः सर्वत्र भारती।'(भावप्रकाशन, पृ० 12)

भारतीवृत्ति की उत्पत्ति सम्बन्धी अनेक कल्पनाएँ हैं। नाट्यशास्त्र में दो कथाओं का उल्लेख है —

(1) मधु और कैटभ नामक राक्षसों ने परस्पर युद्ध करते हुए जिस प्रगल्भ वाणी का प्रयोग किया था, उसी को भारतीवृत्ति कहते हैं —

भारती वाक्यभूयिष्ठा भारतीयं भविष्यति।'ना०शा०22/9)

(2) मधु-कैटभ से युद्ध करते हुए भगवान् विष्णु के पृथ्वी पर किये गये पदाघात के भार से भारतीवृत्ति का जन्म हुआ —

भूमि संस्थान संयोगैः पदन्यासैस्तथा हरेः।

अति भारोऽवसृष्टैः भारती तत्र निर्मिता।(ना०शा०21/11)

आचार्य धनंजय ने दशरूपक में भारतीवृत्ति को परिभाषित किया है —

भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नटाश्रयः।'(दशरूपक, 3/5)

अर्थात् नटों के संस्कृत भाषित वाग्व्यापार के कारण इस वृत्ति को भारती वृत्ति कहते हैं। भरत नट को कहते हैं।

विश्वनाथ ने महाशयः के स्थान पर नराश्रयः कहा है। आचार्य केशव दास ने उसका स्वरूप इस प्रकार वर्णित किया है —

बरनै जामें वीर रस, अरु अद्भुत रस हास।

कहि केशव शुभ अर्थ जहँ, सो भारती प्रकाश। (रसिकप्रिया)

भारती वृत्ति के चार भेद बताये गये हैं— प्ररोचना, वीथी, प्रहसन और आमुख।

<u>(2) सात्वतीवृत्ति</u> :—

आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में सात्वती वृत्ति का लक्षण इस प्रकार किया है —

या सात्वतेनेह गुणेन युक्ता,

न्यायेन वृत्तेन समन्विता च।

हर्षोत्कटा संहृतशोका च

सा सात्वती नाम भवेत्तु वृत्तिः। (ना०शा० 22/38)

अर्थात् यह वृत्ति सत्वप्रधान होती है और न्याय वृत्ति से युक्त रहती है। इसमें हर्ष की प्रचुरता और शोक का अभाव होता है।

सत्वगुण प्रधान होने के कारण यह वृत्ति सात्विक वृत्ति वाले पुरुषों द्वारा प्रयुक्त की जाती है। अभिनव गुप्त ने इस वृत्ति को सत्वशाली मन से संबंधित माना है ——

मनोव्यापाररूपा सात्विकी सात्वती' (अभिनवभारती, पृ०20)

भरतमुनि ने प्रमुख रूप से वीर तथा रौद्र रस में और कहीं-कहीं करुण और शृंगार में भी सात्वती वृत्ति की स्थिति मानी है। इस वृत्ति वाले पुरुष न्यायी, युद्धप्रिय और उदात्त प्रवृत्ति के होते हैं —

वीराद्भुतरौद्ररसा विज्ञेयाः ह्रस्वकरुणशृंगारा,

उद्धतपुरुषप्राया परस्पराधर्षण कृता च। (ना०शा० 22/40)

सत्त्वगुण प्रधान धीरोदात्त नायक में इस वृत्ति का विकास होता है। आचार्य केशव दास ने इसका निरूपण इस प्रकार किया है —

अद्भुत वीर शृंगाररस, समरस बरनि समान।

सुनतहि समुझत भाव जिहिं सो सात्विकी सुजान।(रसिकप्रिया,)

(3) कैशिकीवृत्ति — कैशिकीवृत्ति का लक्षण नाट्यशास्त्र में निम्न लिखित प्रकार से मिलता है—

या श्लक्ष्णनेपथ्यविशेषचित्रा,

स्त्री संयुता या बहुनृत्तगीता।

कामोपभोग प्रभवोपचारा,

तां कैशिकी वृत्तिमुदाहरन्ति।(ना०शा०) 22/47)

अर्थात् जो विशेष प्रकार के नेपथ्य से चित्रित की गई हो, स्त्रीपात्रों की तथा नृत्यगीत की बहुलता और कामोपभोग से युक्त हो, उसे कैशिकीवृत्ति कहते हैं।

कैशिकी शब्द केश से बना है। इस वृत्ति की उत्पत्ति भगवान विष्णु द्वारा अपने केशों को बाँधने वाले व्यापार से हुई है। मधु कैटभ से युद्ध करते समय अंगों के विविध हाव-भाव के साथ विष्णु ने अपने केशों को बाँधा था —

विचित्रैरंगहारैस्तु देवो लीलासमुद्भवैः।

बबन्ध यत् शिखापाशं कैशिकी तत्र निर्मिता।(ना०शा०) 21/13)

अभिनवगुप्त ने इसकी उत्पत्ति का दूसरा कारण माना है—

केशाः किंचिदपि अर्थक्रिया जातम् अकुर्वन्तो देहशोभोपयोगिनः।

तद्वत् सौन्दर्योपयोगिव्यापारः कैशिकीवृत्तिरिति तत्वमुख्यः क्रमः।"

अर्थात् केश का सम्बन्ध अर्थक्रिया से न होते हुए भी वे शरीर-शोभा के वर्धक हैं। अतः नाटक में इस शोभा के हेतु जो व्यापार किया जाता है, वही कैशिकी वृत्ति है।

नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने कैशिक का अर्थ केश माना है। यह वृत्ति स्त्रियों के उपयुक्त होने के कारण कैशिकी वृत्ति कहलाती है —

'अतिशायिनः केशाः सन्ति आसु इति केशिकाः स्त्रियः। स्तनकेशवतीति स्त्रीणां लक्षणम्। तत्प्रधानत्वात् तासामियं कैशिकी। (ना०द० पृ० 157)

मल्लिनाथ ने केशों से कैशिकी की उत्पत्ति बतलाते हुए लिखा है —

केशानां समूहः कैशिकम् कैशिकवत् सूक्ष्मत्वात् सुमनोभिः विचित्रत्वात् कैशिकीयेयोऽपि द्रष्टव्याः।— संगीत रत्नाकर टीका।

कैशिकी वृत्ति लालित्य और नृत्यगीत प्रधान होती है। इसीलिए भरत मुनि के मतानुसार इसकी उत्पत्ति संगीत प्रधान सामवेद से हुई है। पहले नाटक में तीन ही वृत्तियाँ थीं। कैशिकी के अभाव में नाटक नीरस था, अतः ब्रह्मा ने कैशिकी वृत्ति की सृष्टि की —

मृदंग हारसम्पन्ना रसभावक्रियात्मिका

दृष्टा मया भगवतो नीलकण्ठस्य नृत्यतः।

कैशिकी श्लक्ष्ण नेपथ्या श्रृंगार रसंभवा।

अशक्या पुरुषैः सा तु प्रयोक्तुं स्त्रीजनादृते। (ना०शा० 1/45/46)

अर्थात् नीलकण्ठ शिव के नृत्य के अवसर पर मैंने कैशिकी वृत्ति को देखा। अपनी ललित वेशभूषा और श्रृंगार तथा कोमलता के कारण पुरुष इस वृत्ति को नहीं धारण कर सकते। इसीलिए ब्रह्मा ने नाटक में अप्सराओं का निर्माण किया। डा० राघवन ने रीतियों के समान वृत्तियों को भी प्रान्त विशेष की उत्पत्ति मानी है। विदर्भ देश अपनी सौन्दर्यप्रियता और ललित कला के लिए प्रसिद्ध था। इसीलिए कैशिकी वृत्ति और वैदर्भी रीति का सामंजस्य किया गया है। आचार्य केशव ने भी लिखा है —

कहिए केशवदास जहँ करुण हास शृंगार।

सरल वरण शुभ भाव जहँ सो कैशिकी विचार।"

अभिनव गुप्त ने इस वृत्ति का सम्बन्ध मृदु कायिक चेष्टा से माना है।

**(4) आरभटी वृत्ति :—**

भरत मुनि ने आरभटी वृत्ति का लक्षण इस प्रकार किया है —

प्रस्तावपातप्लुतलङ्घितानि

छेद्यानि मायाकृतमिन्द्रजालम्।

चित्राणि युद्धानि च यत्र नित्यं

तां तादृशीमारभटीं वदन्ति।"(ना०शा०22/57)

अर्थात् जहाँ उछलने, कूदने, गिरने, लाँघने आदि के विचित्र चित्र हों और मायाजनित इन्द्रजाल के दृश्य हों, वहाँ आरभटी वृत्ति होती है।

आरभटी शब्द की उत्पत्ति अर् शब्द से हुई है। इसका अर्थ है उत्साह। आरभटी का अर्थ वीर योद्धा होता है। अभिनवगुप्त ने इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है —

इयर्ति इति अराः भटाः सोत्साहा अनलसाः। तेषामियं आरभटी।"

वे इसका सम्बन्ध उग्रकायिक चेष्टा से ध्वनित करते हैं। राक्षस तथा असुर आदि धीरोद्धत नायक नाटक में इसी वृत्ति में दिखाये जाते हैं। सात्वती वृत्ति में उत्साह, और वीरता आदि का प्रदर्शन धीरोदात्त नायक के अनुकूल होता है, किन्तु आरभटी में वीरता और उत्साह तमोगुण प्रधान ऐन्द्रजालिकी और अन्यायपूर्ण होते हैं। इसीलिए इस वृत्ति को भयानक और वीभत्स रस में स्थान दिया गया है—

भयानके च वीभत्से रौद्रे चारभटी भवेत्' (ना०शा०)

अथर्ववेद में मारण, मोहन, उच्चाटन आदि तान्त्रिक क्रियाओं का निर्देश किया गया है। भरत मुनि ने इस वृत्ति की उत्पत्ति अथर्ववेद से ही मानी है। वैष्णव मतानुयायी आचार्य इसकी उत्पत्ति मधुकैटभ से विष्णु के विविध युद्ध से मानते हैं। आचार्य केशव ने इसे इस प्रकार स्पष्ट किया है —

केशव जामें रुद्र रस, भय वीभत्सक जान।
आरभटी आरम्भ यह, पद-पद यमक बखान।(

## रीति और वृत्ति

काव्यशास्त्र में वृत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं —

(1) अर्थवृत्तियाँ या नाट्यवृत्तियाँ — इनके अन्तर्गत भारती, सात्वती और कैशिकी और आरभटी का निरूपण किया जाता है।

(2) शब्दवृत्तियाँ या वर्णाश्रय वृत्तियाँ :— इसके अन्तर्गत उपनागरिका, परुषा और कोमला नामक वृत्तियों की चर्चा होती है।

शब्दवृत्तियों और रीतियों में बड़ा साम्य है। यही कारण है कि मम्मट आदि आचार्यों ने दोनों में कोई भेद नहीं माना है।

इसके विपरीत कुछ आचार्यों ने दोनों को अलग-अलग माना है। इनका कहना है कि रीति के अन्तर्गत संघटना और वर्ण-योजना, ये दो तत्व माने जाते हैं, जबकि वृत्ति के अन्तर्गत केवल वर्ण योजना मात्र रहती है। अतः हम रीति को वृत्ति का पर्यायवाची नहीं मान सकते हैं।

**रीति और शैली :--**

संस्कृत में शैली शब्द का अर्थ रूढ़ अर्थ में नहीं मिलता। आजकल यह अंग्रेजी के 'स्टाइल' शब्द का पर्यायवाची है। इस अर्थ में हमारे यहाँ रीति शब्द रूढ़ था। रीति का प्रयोग संकुचित तथा व्यापक दोनों अर्थों में मिलता है।

अपने संकुचित अर्थ में यह 'विशिष्ट पद-रचना' है किन्तु व्यापक अर्थों में उसमें उन सकल तत्वों का सन्निवेश हो जाता है, जिनकी समन्विति आजकल शैली में मानी जाती है। अतः हम प्राचीन रीति शब्द को आधुनिक शैली का पर्यायवाची मानते हैं।[1]

## आलोच्य महाकाव्यों में रीतियाँ और वृत्तियाँ

### 'जननायक'

**सात्वती वृत्ति :—**

निम्नांकित पंक्तियों में हर्ष की प्रधानता और शोक के अभाव का वर्णन किया गया है। अतएव यहाँ सात्वती वृत्ति है। गाँधी जी के कानून पढ़कर वापस लौटने पर कस्तूरबा प्रसन्न हो जाती हैं —

फूलों की मुरझाई डाली प्रिय को पाकर हरी हो गयी।
मानो रजनी के आँगन में मदमाती चाँदनी सो गयी।
ललित लाज से नयन हृदय के चरणों में ही झुके रह गये।
मन के मोती बरस पलों में विरह व्यथा की कथा कह गये।

**आरभटी वृत्ति :—**

निम्नांकित पंक्तियों में विनाश का भावोत्पादक चित्रण किया गया है। अतएव यहाँ आरभटीवृत्ति है। द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ा हुआ है। चारों ओर वीभत्स दृश्य दिखलायी पड़ते हैं —

---

1- भारतीय समीक्षा के सिद्धान्त, डा० गोविन्द त्रिगुणायत। पृ० 335

आँधी आती डायन बनकर काले कोयले जलाती थी।

किलकार मार चिंघाड़ मार, खेला मसान जगाती थी।

गज फाड़फाड़ हड्डियाँ नोच, शोणित उछाल खेली होली।

गोली चलती थी इधर उधर यों बहनों की पुछती रोली।

(जननायक, पृ0 322)

खप्पर लिये चण्डिका फिरती खप्पर आज खून से भर दो।

जीभ निकाले काली कहती — बकरे काट काट कर धर दो।

भूत प्रेत भूखे बैठे थे, सूना मरघट चीख रहा था।

बँटवारे के बाद खून ही खून बरसता दीख रहा था। (वही, पृ0477)

'जयभारत'

वैदर्भीरीति :— निम्नांकित पंक्तियों में कोमल तथा माधुर्य गुण से युक्त शब्दों का प्रयोग किया गया है। अतएव यहाँ वैदर्भी रीति है —

ओढ़े मनोहर पीत पट वे दिव्य सन्निधान थे,

प्रत्यूष आतप-युक्त यमुना-कूल-सदृश सुविशाल थे।

वर भाल मुक्ता कण्ठ-शोभित यों सोहते अभिराम थे,

टेरे हुए ज्यों सूर्य को घन सघन शोभा-धाम थे।

नीलारविन्द समान तनु की अति मनोहर कान्ति थी,

मलहार के नवमौक्तिकों में नीलमणि की भ्रान्ति थी। (जयभारत, 298)

इसी प्रकार निम्नलिखित पंक्तियों में वैदर्भी रीति, सात्वती वृत्ति, श्रृंगार रस तथा माधुर्य गुण का प्रयोग किया गया है।

वे चिन्ह अंगों में थे अंकित थे युवतों के सोहते।

आपानिलिखित मनो पताका मा के मन मोहते। (वही, पृ0298)

**आरभटी वृत्ति :-**

निम्नांकित पंक्तियों में जयद्रथ के उद्दण्ड व्यवहार और क्रिया-कलापों का वर्णन किया गया है, अतः यहाँ आरभटी वृत्ति है। जयद्रथ कृष्णा का अपहरण करके जाता है —

सहसा दोनों हाथ दुष्ट ने उसकी ओर बढ़ा कर
एक कपोती पर मानो दो कुक्कुर विषधर धाये। (जयभारत, पृ0225)
झपट जयद्रथ बना बाघ सा उसे मृगी सी धर के।
रथ में डाल त्वरित तत्क्षण सा भाग पलायन करके। (वही, 225)

**'पार्वती'**

**सात्वती वृत्ति-गौड़ी रीति :-**

प्रस्तुत उद्धरणों में हर्ष की अभिव्यक्ति हुई है तथा ओज कान्ति आदि गुणों का प्रकाशन हुआ है, अतः यहाँ सात्वती वृत्ति तथा गौड़ी रीति है। पार्वती शिव से कह रही हैं —

प्रकृति के ही विभाव से है विश्व यह भरपूर
रह न सकते नाथ उससे आप क्षण भर दूर,
आपकी छाया-सदृश यह प्रकृति देव अपार,
अनुचरी के उचित सेवा का प्रकृत अधिकार।

(पार्वती, सर्ग3 योगीश्वर शिव पृष्ठ 81)

शंकर पार्वती-कुमार को परशुराम के साथ दीक्षा के लिए भेज रहे हैं। परशुराम अपनी ओजपूर्ण वाणी में ब्राह्मणों को वेद-शिक्षा के साथ शक्ति-साधना के लिए आमंत्रित करते हैं —

हृदय में वेद कर में परशु धारण कर रहा हूँ
युगों से विश्व में यह घोषणा मैं कर रहा हूँ।

अरे ओ ज्ञान के साधक दलित विप्रो जागो,

अरे तुम शक्ति की भी साधना के अर्थ जागो।

(पार्वती, कुमारदीक्षा सर्ग 15 पृ0 312)

## 'मीरा'

**सात्वतीवृत्ति :—**

काव्य में सात्वती वृत्ति का प्रयोग अधिक किया गया है। मीरा जब ससुराल पहुँचती है, गाँव की सभी स्त्रियाँ उसके रूप की प्रशंसा करती हैं —

नाम मीरा नीरजा की मुकुल सा अभिराम

बाल रवि की अंशुओं के जाल सा छविधाम

फेन सा उज्ज्वल मराल-कुमार वधु समान

× × × ×

वेणियाँ ज्यों शेष की प्रिय नागिन पत्नियाँ विकराल।

इसी प्रकार —

अल्हड़ चंचल दुलहिन मीरा

ज्यों प्रभात की छाया

शिशिर-समीरकम्पोलित लतिका

सी गति तन्मय काया। (मीरा, पृ0 85)

मीरा सावन में अपने पीहर आयी है —

रिमझिम रिमझिम बूँदें पड़तीं करते हैं नभ घने स्नान

मिट्टी के घर चुते सुन्दर, प्राणों का डर तुच्छ मान।

झूलों पर पड़ते तीव्र पेंग। (मीरा, पृ0 117)

पांचाली रीति :--

निम्नलिखित पंक्तियों में कवि ने बहुत ही सरल प्रसाद गुण सम्पन्न भाषा का प्रयोग किया है। मीरा के बचपन का चित्रण देखिए --

बालिका एक लघु लघु सुन्दर
चुपचाप मौन निस्पन्दित स्वर।
ज्यों वीणा
साधक का ज्यों आराधित मन
ज्यों कवि का लोकोत्तर चिन्तन
त्यों दीप-शिखा सी नत व्रीडन
तल्लीन। (मीरा पृ0 1)
लेटी थी मां के अंचल में
ज्यों मीन शान्त नीरव जल में। (मीरा, पृ0 2)

इसी प्रकार पड़ोस में एक बारात आयी हुई है। मीरा माँ से पूछती है, 'मेरा विवाह किससे होगा?' माँ कहती है 'तुम्हारा विवाह गिरिधर गोपाल से होगा। मीरा तभी से कृष्ण की भक्त बन जाती है --

हृदय कक्षों का अति निवेश
पत्र जैसे कोरा हो श्वेत
भूमि पर बोओ जैसा बीज
विकसित होता वैसा खेत।" (मीरा, पृ0 44)

परुषा वृत्ति -- मीरा को नारी का अपमान असह्य है। पति द्वारा की गयी निन्दा स्वाभिमानिनी मीरा नहीं सहन कर सकती। वह नागिन-सी फुंकार उठती है। वह मनुष्य की कठपुतली, दासी बनकर रहना पसंद नहीं करती। मेड़ के

समान पुरुष का अंधानुकरण उसे तनिक नहीं भाता। वह पुरुषप्रवृत्ति के विरुद्ध विद्रोहिणी बनकर नारी जागरण का शंख फूँकने चलती है। मीरा नाराज हो जाती है, तब पति उसकी मनुहार करते हैं। मीरा कहती है —

ऐसे दो रंगी पुरुषों की

बातों पर कोई ध्यान धरे

वह पागल है घर का लाऊ

ऐसी गिटपिट संलग्न करे। (मीरा, पृ0 109)

## एकलव्य

<u>सात्वतीवृत्ति</u> :— निम्नांकित प्रसंगों में क्रमशः करुण और वीर रस की अभिव्यंजना हुई है। अतः यहाँ सात्वती वृत्ति है। द्रोणाचार्य सहित राजकुमारों के चले जाने के पश्चात् एकलव्य कुएँ में झाँककर देखता है। वहाँ उसे पूर्ण शून्यता दिखलायी पड़ती है —

कूप देखा झाँक के वहाँ थी पूर्ण शून्यता

जान पड़ा जैसे वह भाग्य हो दरिद्र का। (एकलव्य, पृ0 23)

द्रोणाचार्य राजसभा में अपने पूर्व जीवन का परिचय देते हुए भीष्म से कहते हैं —

पिता शून्य आश्रम में आया जिस युग से

जैसे कोई वृक्ष से उजाड़ और म्लान हो,

टूट कर नीचे गिरे पुष्प उसी जड़ से मैं।

मैं भी उसी भाव से पिता के उसी स्थान में,

आकर तपस्या लीन हो गया मलीन हो। (एकलव्य, पृ0 35)

एकलव्य गुरु द्रोणाचार्य को दक्षिणा के रूप में अपना अँगूठा दे देता है —

गुरु- पद-तल के समीप अंगुष्ठ पड़ा

जैसे लाल पंखुड़ी है पद्म-रूपी फूल की,

या कि अनुराग ने है रूप रखा रक्त में

या कि गुरु-भक्ति जोड़ने की संधि रेखा है। (एकलव्य, पृ० 304)

<u>गौड़ी रीति</u> :— निम्नांकित पंक्तियों में एकलव्य के ओज की अभिव्यक्ति हुई है। अतएव यहाँ गौड़ी रीति के दर्शन होते हैं। एकलव्य धैर्य से —

देखा और नेत्रों में तड़ित जैसी भावना

कौंध गई, दाँत जैसे वज्र की लकीर हो

फल गए मुख में अधर कट सा गया। (एकलव्य, पृ० 294)

<u>'तारकवध'</u>

<u>वैदर्भीरीति</u> :— प्रस्तुत पंक्तियों में कर्णप्रिय और माधुर्य गुणोचित शब्दों का प्रयोग किया गया है। अतएव यहाँ वैदर्भी रीति है —

चंचल सुता आर मिस भेजा गिरि ने अपना प्यार।

देखो आकर जलधि उमंगित पाकर प्रिय उपहार।

मनों सघन मेघ आच्छादित देख अजिर नभ देश।

नाच उठे वो ही कहते हैं मोर भरे आवेश। (तारकवध, पृ० 213)

मिला सहज ही उसे मनोहर मधुतरु तले विराम।

लगी वहीं पीने प्रिय की छवि का रस अविराम।

प्रियतम को अवलोक अपरिमित भाव-सिन्धु में मग्न।

बना सहज ही बाला का उर चंचल प्रीति-निमग्न। (वही, पृ० 215)

<u>गौड़ीरीति</u> :— निम्नांकित पद में समास-बहुलता है और उसमें उद्भट शब्दों का प्रयोग हुआ है। अतएव यहाँ गौड़ी रीति है ——

मिली अभी शृंगार प्रेम का भाव भुलाते।

नहीं सेज पर वीर समरशैया पर जाते।(तारकवध, पृ० 45।)

मग्न हो गये रसोन्माद में कोसलवासी ऐसे

नाद श्रवण करके मोहित हो अहि कुरंग गण जैसे।( वही, पृ० 347)

<u>सात्त्वतीवृत्ति</u> :—

निम्नलिखित उद्धरण में शृंगार रस की अभिव्यक्ति हुई है तथा इसमें तारकासुर की राजमहिषी की शोभा का वर्णन किया गया है। अतः यहाँ सात्त्वती वृत्ति के दर्शन होते हैं —

शीलमयी मानवी राजमहिषी तारक की

महामूल्य मणिसदृश चमकर विस्तारक थी।

सूर्य अंग शान्तिसदृश क्षमा के आधार में

धेनु धूलि सी सान्ध्य कालिमा के प्रसार में।(तारकवध, पृ० 27।)

पाहन बीचे बीच रूई सी वह जलती थी

कोमल मोम समान आँच पाकर गलती थी।(वही, पृ० 27।)

<u>'लोकायतन'</u>

<u>सात्त्वती वृत्ति</u> :—

निम्नांकित उद्धरणों में सत्त्वगुण की प्रधानता है। अतएव सात्त्वती वृत्ति है :—

ध्यान मग्न अनिमेष मौन नत चितवन

नील कमल दल झुके वहि प्रतिपल,

युग संध्या के घने सुनहले तम से

कंधों पर लहराये कोमल कुंतल।(वही, पृ०8)

बाहु लताओं में वह सहज समेटे,

मृदु जीवन की करुणा ममता निःस्वर

प्रेम और हो छोर, छोर युग हों भुज

राग सूत्र बंधु कर मुक्त, रूपों मनोहर। (लोकायतन, पृ0 9)

कवि ने प्रकृति का चित्रण मुग्धा नारी के रूप में किया है —

कब मधुर प्रकृति शोभा ने,

धर लिया मुग्ध नारी तन।

× × ×

उड़ते हिम खग चंचल दृग

अधखुले मुकुल अरुणाधर,

× × ×

गिरि स्रोत रुपहले चलते

स्वर्णिम नूपुर कर संकुल। (वही, पृ0 194)

स्निग्ध शरद् मुस्काती आँगन में,

निज शशिमुख से उठा वाष्प गुंठन

× × × ×

कुंद स्मिति मालती मुकुल पुलकित

धवल शालि तन श्री शारद सुन्दर। (वही, पृ0 429)

**'झाँसी की रानी'**

**सात्विक**

**सात्विकवृत्ति** :— लक्ष्मीबाई की दोनों चोटियाँ उसके दोनों ओर झूल रही थीं।

इस प्रसंग में सत्वगुण प्रधान सात्विकवृत्ति के दर्शन होते हैं —

मंगलमय चाँदी-सी लक्ष्मी,

उसकी वेणी झूल रही।

माता के स्नेह सहारा छूकर

दोनों को वह थी चूम रही।(झाँसी की रानी, पृ0 57)

मनु का हृदय देशभक्ति से ओतप्रोत है। यहाँ पर सात्त्वतीवृत्ति, द्रष्टव्य है—

मैं डरने वाली नहीं लाल

फिरंगों के तप्त अंगारों से।

यह सिर न कभी झुक सकता है

वैरी के तीखे वारों से।(वही, पृ0 90)

रानी की सखियाँ भी रानी की तरह ही वीर हैं —

रानी से भी पहले मैं

यह हृदय दीप वार दूँगी।

जीवन की ज्योति चढ़ाकर

नव निर्मल प्रकाश करूँगी।(वही, पृ0 44)

<u>आरभटीवृत्ति</u> :—

अंग्रेज आक्रमणों के छुरा से अंग्रेज बालकों का खून बहाते हैं। इस वीभत्स वर्णन में आरभटी वृत्ति के दर्शन होते हैं —

पकड़-पकड़ कर देश द्रोहियों को

कटवाया मृतशोणित लाल

स्वच्छ करकर उनके ही सिर

दिया अग्नि में उनको डाल।(वही, पृ0 172)

रानी तलवार से शत्रुओं के गले हवा के वेग से काट रही है। चारों ओर खून ही खून दिखाई दे रहा है —

जलरुह अनिंद्य सुन्दर राम का आनन्द-घन

नीलकुंज सौन्दर्य सागर स्नेह का आगार नवल वारिद श्यामतन।

सकल मंगल मूल शंकर हृदय-मानस-हंस-सा

देखकर अपलक रहते आस्वादामृत मग्न-मन।(वही, पृ0 38-49)

राम का सौन्दर्य अद्भुत है —

केश कुंचित सघन मेचक दीप्त भाल उदार है

वदन नव राजीव शोभा श्याम कांति अपार है

श्रवण सुन्दर उच्च नासा नयन मोहक प्राण के

पुलक कांत कपोल अरुणिम चिबुक रस का सार है।(वही, 39-55)

वीतराग विरक्तमुनि की तपस्वी की निरीहता

मर्माहत होकर बनती है करुण दीनता।

शैल शिला का हृदय फोड़कर तरल निर्झरी

निकल वेदना सी आती है क्रन्दन लहरी।(वही, पृ0 160)

परुषवृत्ति :— उग्रता पूर्वक रुक्ष एवं कटु शब्दों का प्रयोग होने के कारण निम्नांकित अवसरों में परुषावृत्ति के दर्शन होते हैं —

धनुष भंग को सुनकर परशुराम अत्यन्त क्रोधित होकर आते हैं उनके आने के पहले ही प्रकृति भयंकर विपत्ति की सूचना देती है और वे सघन अंधकार के मध्य प्रकाश की तरह प्रकट होते हैं —

तब सघनतम मध्य फूटा अकस्मात् प्रकाश

प्रज्वलित मानो हुआ ज्वालामय आकाश।

दुर्निरीक्ष्य प्रचण्डतम कालाग्नि सम दुर्धर्ष

उग्रताप प्रदीप्त मानो कोटि सूर्य-प्रकर्ष

शर्व जाज्वल्य गिरि कैलास शोभागार

परशुराम प्रकट हुए कर लिए चण्ड कुठार।

निज धारण कंध पर तड़ितसम चाप कराल

आ गए मानो स्वयं त्रिपुरारि शशधर भाल। (भगवान० पृ० 167)

प्रतिध्वनित सिंह की सुनकर निनाद हुंकार

होता है उद्ग्रीव जानकर प्रतिपक्षी संचार

युद्ध प्रेरणा सुन विपक्ष की निर्भय क्षत्रिय वीर

प्राण मोह भी त्याग समुद्यत होता है रणधीर। (वही, पृ० 173)

भरत को जब ननिहाल से वापस आने पर सारा वृत्तान्त ज्ञात होता है, तब वे बहुत दुःखी होते हैं —

स्खलित नेत्र शिथिलाम्बर भूमिशायी

निःश्वास दीर्घ अहि - क्रुद्ध समान लेते

ऐसे हुए भरत रोष विषण्णता से,

मानो हुआ पतित वृक्षिंस भीम दन्ती।

वन में राम, लक्ष्मण, जानकी सहित सिंह की तरह निर्भीक होकर प्रविष्ट करते होते हैं—

अरण्य में राम सबन्धु जानकी,

प्रविष्ट निःशंक हुए मृगेन्द्र से।

सजीव हा हा ! ये प्रचण्ड रोष था

मृगारि जीवों कि ओज पूर्ण था। (भगवानराम, पृ० 278-329)

शूर्पणखा के नाक कान काट लिये जाने पर वह अपने भाई खरदूषण के पास जाती है। खरदूषण, त्रिशिरा राम से युद्ध करने आते हैं। राम सभी को अकेले परास्त करते हैं —

विद्युत समान प्रज्वलित प्रचण्ड भा की

आई महा निकट पुत्तलिका जलाती।

विद्युल्लता सदृश प्रभा विघातिनी को

सीता ने त्वरित खण्ड किया शरों से। (भगवानराम, 322-347)

मारा था कनक असुर को रुद्र के क्रोध ने ज्यों

जैसे वृत्रासुर हत हुआ इन्द्र के वज्र से था

जैसे त्यागी बलि नमुचि ने वज्र के फेन से ज्यों

वैसे ही आहत खरदूषण राम के बाण द्वारा। (वही, 323-354)

'जानकीजीवन'

सात्वतीवृत्ति एवं वैदर्भी रीति :-

कवि की रागात्मिका वृत्ति प्राकृतिक दृश्यों में विशेष रूप से रमती है और उसकी मनोदशा का अभिव्यंजन करती है। प्रकृतिका सहज अलंकरण कवि की प्रकृति में व्याप्त अलंकृति की कला को प्रेरणा देता है और वह उपमा का आश्रय लेकर कामदेव के प्रभाव को व्यक्त करने लगता है —

तीखे शिलीमुखी शिलीमुख से मनोज के,

काले महा विषम विष में बुझे हुए,

गुंजारते मदन से फुसकारते चले,

पाये अचेत जिनको उनको डसे प्रो। (वही, जानकीजीवन, 124-56)

राम का रूप कवि को इतना आकृष्ट करता है कि वह कहीं उनके रूप का और कहीं अलंकृतियों द्वारा उनके गुणों का चित्रण करने लगता है — नवम् सर्ग में राम के मुख का कल्पनाजनित चित्रण देखिए —

सुमुख की मृदुता मुस्कान में

मृदुलता प्रतिबिम्बित चित्त की

वचन की अमृतोपम माधुरी,

मधुरिमा महिमा मृदुमूर्ता। (जानकीजीवन, पृ0 158-11)

ग. समासयुक्त (गौडीरीति):—

अश्वमेध यज्ञ में वीरतापूर्ण सैनिक घोड़े की रक्षा के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं। सबके सामने एक ही ध्येय है —

आओ चलें अशान्ति के विनाश के लिए,

आओ चलें प्रकाश के विकास के लिए

आओ चलें किसी दुखी उदास के लिए

आओ चलें समष्टि के सुपास के लिए। (जानकीजीवन, 358-35)

कवि ने वीर-वाहिनी के उत्साह का वर्णन अतीव उदात्त शब्दों में किया है —

आयें अनन्त मार्ग मध्य आधि व्याधियाँ

आपत्तियाँ विपत्तियाँ अनिष्ट आँधियाँ

ओले गिरें तुषार वृष्टि वज्रपात हो,

निर्द्वन्द्व वीर वृन्द पुष्प वृष्टि ज्ञात हो। (वही, पृ0 361-48)

कवि की युद्ध विषयक दृश्यों के साथ तद्रूपता देखते ही बनती है —

रत आहत मार काट रक्त की नदी बही,

उद्दण्ड झुण्ड मुण्ड रुण्ड से पटी मही।

सन्तुष्ट हृष्ट-पुष्ट हो सुयोगिनी नची

वेताल प्रेत-भूत दुर्निवार हो नची। (वही, 368-95)

राम की सेना को किसी सेना का नहीं, वरन् दो कुमारों का सामना करना पड़ता है। एक ओर राम हैं दूसरी चन्द्रकेतु और उनकी सेना है। ओजगुण का जो रूप कवि ने यहाँ उपस्थित किया है, वह श्लाघनीय है :—

देखी रथेन्द्र नष्ट-भ्रष्ट चन्द्रकेतु ने

की कुश-धनुर्विलसित एक कुश केतु ने।

छोड़ा विशाल बाण सर्पराज सा चला,

तत्काल चक्रि-बाण से पूवाल सा जला। (जानकीजीवन, पृ0 376-21)

तीक्ष्णातितीक्ष्ण शुक्ल से सर्वांग बाण से

कल्याण प्राण का न त्राण शीघ्रता से।

ज्यों चन्द्रकेतु चन्द्र केतु ग्रस्त हो गया

चन्द्रोदयोपरान्त चन्द्र अस्त हो गया। (वही, 376-22)

## 'अरुणरामायण'

सात्त्वतीवृत्ति — वैदर्भीरीति :—

सीता सखियों के साथ गौरी पूजन को जाती हैं। वहीं पर राम लक्ष्मण गुरु के लिए फूल तोड़ने जाते हैं। सखियाँ सीता से राम के रूप की चर्चा करती हैं — मनमोहक उनका रूप रसीला है सीते।

मणि-कान्तिसदृश उनका मुख नीला है सीते। (वही,
— अरुणरामायण, पृ0 48

इसी प्रकार राम सीता की एक झलक पा जाते हैं और वह उनकी आँखों में अंकित हो जाती है —

पीछे दिन की सुधियाँ ज्वारों सी आ जातीं

शिव मंदिर की सुषमा मानस पर छितराती।

x x x

लगता कि विदाई पढ़ने वाले स्वयं चकित

सीता उनकी भी आँखों में अब तक अंकित। (वही, पृ0 57)

कोमलावृत्ति :— निम्नांकित उद्धरणों में कोमलावृत्ति के दर्शन होते हैं —

देवता सदृश सम्मानित नित्य पिता-माता

पूजित शिष्यों से शक्तिमान विद्याव्रता। (अरुणरामायण, पृ0 103)

राम लक्ष्मण सीता तपस्वी वेश में हैं। उनका यह रूप बहुत सुन्दर लगता है —

कितना मनमोहक है उनका तापसी वेश

लग रहे जटा के जैसे उनके शीर्ष-केश। (वही, पृ0 210)

भरत राम से मिलने चित्रकूट जाते हैं। रास्ते में निषाद मिलते हैं, वे भरत से

कहते हैं — हे भरत आपका रूप राम से मिलता है

आपको देखकर हृदय कमल-सा खिलता है। (वही, पृ0 271)

<u>परुषावृत्ति</u> (गौड़ीरीति) :—

परशुराम शिव के धनुष को टूटा हुआ देखकर अत्यन्त क्रोधित हो उठते हैं। लक्ष्मण द्वारा उत्तर देने पर वे और अधिक क्रोधित हो उठते हैं —

इस बार और भी उत्तेजित प्रभु परशुराम

छूटने लगा ज्योतित ललाट से बहुत घाम। (वही, पृ0 75)

परशुराम लक्ष्मण से अत्यन्त अप्रसन्न हैं और उनसे युद्ध करने के लिए कह रहे हैं —

शिवद्रोही तुझे युद्ध मुझसे करना होगा

इस समय यहीं यज्ञस्थल पर लड़ना होगा

मैं कैसा रिपु-वीर तुझको बतलाता हूँ

तू देख कि कैसे मैं कुठार चमकाता हूँ।

× × × ×

वैभव्य मिटेगा मेरा पौरुष अजेय

लड़ना ही है आजीवन मेरा धर्म ध्येय। (वही, पृ0 83)

---

## सप्तम अध्याय

## ध्वनि

### ध्वनि की परिभाषा :-

संस्कृत साहित्य में ध्वनि पर बड़े विस्तार से विचार किया गया है। बड़े-बड़े आचार्यों ने अकाट्य तर्कों के आधार पर साहित्य में ध्वनि का प्रस्थापन किया है। यद्यपि प्राचीन ग्रन्थों में इसका विस्तार से विवेचन नहीं मिलता, किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि ध्वनि सिद्धान्त प्राचीन नहीं है। यह सम्भव है कि प्राचीन ग्रंथ अनुपलब्ध हों। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन ने 'काव्यस्यात्मा ध्वनिरितिबुधैः यः समाम्नातः पूर्वैः' लिखकर इसी बात का समर्थन किया है।

### ध्वनि और उसके विविध अर्थ :-

संस्कृत साहित्य में ध्वनि शब्द का प्रयोग निम्नांकित अर्थों में किया गया है -

(1) ध्वनति ध्वनयति वा यः स व्यंजकः शब्दः ध्वनिः 'जो ध्वनित करे या ध्वनित करवाये, वह व्यंजक शब्द ध्वनि है।

(2) 'ध्वनति ध्वनयति वा यः स व्यंजकोऽर्थः ध्वनिः' जो ध्वनित करे या ध्वनित करवाये, वह व्यंजक अर्थ ध्वनि है।

(3) 'ध्वन्यते इति ध्वनिः' - जो ध्वनित हो, वह ध्वनि है। इसमें रस, अलंकार और वस्तु, व्यंग्य अर्थ के ये तीनों रूप आ जाते हैं।

(4) 'ध्वन्यतेऽनेन इति ध्वनिः'- जिसके द्वारा ध्वनित किया जाये, वह ध्वनि है।

(5) 'ध्वन्यतेऽस्मिन्निति ध्वनिः'- जिसमें वस्तु, अलंकार और रसादि ध्वनित हों, उस काव्य को ध्वनि कहते हैं।[1]

---

1- भारतीय समीक्षा के सिद्धान्त, डा0 त्रिगुणायत, पृ0 257

ध्वनि की व्याख्या करते हुए ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने लिखा है —

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।

व्यङ्क्तः काव्य विशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः॥ (ध्वन्यालोक 1/13)

अर्थात् जिस काव्य में वाच्यार्थ अपने को अथवा वाचक शब्द अपने अर्थ को गौण बनाकर दूसरे प्रकार के प्रतीयमान अर्थ को प्राधान्येन व्यक्त करते हैं, उस काव्य को ध्वनिकाव्य कहते हैं।

## ध्वनि के भेद

यद्यपि भारतीय काव्यशास्त्र में ध्वनि के अनेक भेद बतलाये गये हैं, किन्तु लक्षणा और अभिधा पर आधारित होने के कारण यह मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है —

(1) लक्षणामूला या अविवक्षित वाच्य ध्वनि।

(2) अभिधामूला या विवक्षित वाच्य ध्वनि।

लक्षणामूला या अविवक्षित वाच्य ध्वनि के पुनः दो भेद होते हैं —

(क) अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि

(ख) अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि।

### (क) अर्थान्तर संक्रमित वाच्यध्वनि :-

जहाँ प्रयुक्त पद अपने वाच्यार्थ के अनुपयुक्त होने से किसी दूसरे अर्थ में संक्रमित हो जाते हैं, वहाँ अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि होती है। यह ध्वनि उपादान लक्षणा में रहती है। जैसे —

कौन भाँति रहिहै बिरद अब देखिबी मुरारि।

बीधे मोसे आयके, गीधे गीधहिं तारि॥

यहाँ पर 'गीधे गीधहिं तारि' वाच्यार्थ हुआ कि हे भगवान्। आप गीध को तार

कर प्रसन्न हो गये हैं, किन्तु सहस्रों बड़े-बड़े पापियों को तारने की विरुद वाले भगवान् को गीध के तारने में क्या महत्ता हो सकती है। यहाँ यह अर्थ ग्राह्य नहीं है। अतः इसका तात्पर्य लगाया गया कि 'निम्न कोटि के पापियों को तार कर आपको गर्व हो गया है।" इसका व्यंग्यार्थ है —" हे मुरारि, अर्थात् मुर नामक राक्षस का वध करने वाले महान् वीर! आपकी विरुद गीध जैसे छोटे पक्षी के तारने से नहीं है, मेरे जैसे महान् पापी का उद्धार करने में ही आपकी वीरता की विरुद् स्थिर रह सकेगी।" यहाँ पर 'गीध' शब्द में अर्थान्तर का संक्रमण किया गया है। इसीलिए इसमें अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि मानी गयी है।

(ब) अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि :—

इसमें वाच्यार्थ असंगत होने से सर्वथा तिरस्कृत हो जाता है। केवल व्यंग्य ही प्रधान रहता है। यह प्रायः वहीं रहती है, जहाँ लक्षण लक्षणा रहती है। यह ध्वनि शब्दगत और वाक्यगत भेद से दो प्रकार की होती है —

(1) शब्दगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि :— जहाँ पर किसी शब्द विशेष के अभिधेयार्थ का लोप होता है, वहीं शब्दगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि मानी जाती है। इसका उदाहरण कामायनी की निम्नांकित पंक्तियों में दृष्टिगोचर होता है —

अंधकार में मलिन मित्र की,
धुँधली आभा लीन हुई।
वरुण व्यस्त थे, घनी कालिमा,
स्तर स्तर जमती पीन हुई।।

कुछ पदार्थ ही जम सकता है, कालिमा नहीं। इससे कवि प्रसाद ने कालिमा की कठोरता व्यंजित की है —

(2) वाक्यगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि :— इसमें 'संपूर्ण वाक्य का अभिधेयार्थ

तिरस्कृत हो जाता है, तथा उसके स्थान पर किसी अन्य व्यंग्यार्थ का अनुसन्धान कर लिया जाता है। जैसे बिहारी का यह दोहा लिया जासकता है —

तंत्री नाद कवित्त रस, सरस राग, रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग॥

डूबना, तिरना आदि तो सरोवर आदि में ही सम्भव है, तंत्रीनाद आदि में नहीं। अतः डूबने, तरने आदि पूरे वाच्यार्थ का वाच्यार्थ तिरस्कृत होकर रस से सराबोर होने के व्यंग्यार्थ का बोधक बन जाता है।

(2) विवक्षित वाच्यध्वनि या अभिधामूला ध्वनि :—

इस कोटि के ध्वनि काव्य में वाच्यार्थ विवक्षित तो रहता है, किन्तु वह व्यंग्यनिष्ठ ही होता है, स्वनिष्ठ नहीं होता।

लक्षणामूला और अभिधा मूलाध्वनि में अन्तर :—

लक्षणामूला ध्वनि में लक्षणा की स्थिति सर्वथा अनिवार्य होती है। जहाँ पर यह ध्वनि होती है, वहाँ लक्षणा अवश्य होती है और जहाँ लक्षणा नहीं होती, वहाँ यह ध्वनि भी नहीं होती। अभिधा मूला ध्वनि में इस प्रकार का नियम नहीं है। किन्तु फिर भी वह सर्वथा निरपेक्ष नहीं हो सकती। कुछ आधार हुआ करते हैं। आचार्य मम्मट ने उनमें से कुछ आधारों काउल्लेख किया है। वे इस प्रकार हैं -

वक्तृबोद्धव्यकाकूनां वाक्य वाच्यान्यसन्निधेः।
प्रस्तावदेशकालादिवैशिष्ट्यात्प्रतिभाजुषाम्॥

अर्थात् वक्ता, बोद्धव्य, काकु, वाक्य, वाच्य, अन्यसन्निधि, प्रस्ताव, देश, काल आदि के वैशिष्ट्य से प्रतिभाशाली व्यक्तियों को अन्यार्थ की प्रतीति कराने वाले अर्थ का जो व्यापार होता है, उसे व्यंजना कहते हैं। यों तो उपर्युक्त तत्त्व सभी ध्वनियों में

कारणभूत हो सकते हैं किन्तु अविवक्षित मूला व्यंजना में इनका सहयोग नितान्त आवश्यक होता है। यहाँ पर इतना ही कहना अभीष्ट है कि अभिधामूला ध्वनि के कुछ उपर्युक्त आधार अवश्य हुआ करते हैं, वह निराधार नहीं होती।

अभिधामूला या विवक्षितवाच्य ध्वनि के भेद :— आचार्यों ने इसके तीन भेद माने हैं —

(1) रस ध्वनि।

(2) अलंकार ध्वनि।

(3) वस्तु ध्वनि।

इनमें रस ध्वनि तथा अन्तिम दोनों ध्वनियोंमें अन्तर होता है। रस ध्वनि की प्रतीति वाच्यार्थ के व्यवधान-ज्ञान के बिना हो जाती है, किन्तु अन्तिम में यह बात नहीं होती। इस भेद के कारण ही कुछ आचार्यों ने अभिधामूलाध्वनि के दो स्थूल भेद बतलाये हैं ,—

(1) असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि।

(2) संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि।

(1) असंलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि :— जब वाच्यार्थ औरव्यंग्यार्थ का पौर्वापर्य-क्रम प्रतीत नहीं होता, तब उसे असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि कहते हैं। इसके आठ भेद माने जाते हैं। उनका विवेचन इस प्रकार है —

असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि के आठ भेद

(1) रस।

(2) रसाभास।

(3) भाव

(4) भावाभास

(5) भाव-शान्ति

(6) भावोदय

(7) भाव संधि

(8) भाव शबलता

(1) रस की विवेचना रस सम्प्रदाय के अन्तर्गत हो चुकी है।

(2) रसाभास :— जब रस-निष्पत्ति में या तत्प्रयोजक विभावादि में किसी भी प्रकार का अनौचित्य दोष आ जाता है, तब उसे रसाभास कहते हैं। उदाहरण के रूप में हम केशव का यह दोहा ले सकते हैं —

> केशव केसनि अस करी, जस अरिहू न कराहिं।
>
> चन्द्र बदनि मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाहिं।

यहाँ पर वयोवृद्ध महाकवि केशव की चन्द्रवदनी बालाओं के प्रति अनुराग वृत्ति की व्यंजना अनौचित्यपूर्ण होने के कारण रसाभास उत्पन्न कर रही है।

(3) भाव :— प्रधानता से प्रतीयमान निर्वेदादि संचारी भावों, देवादिविषयक रति और उद्बुद्धमात्र स्थायीभावों को भाव कहते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार भाव के तीन भेद हुए :—

(क) प्रधानरूप से प्रकट होने वाले संचारीभाव।

(ख) देवादि विषयक रति।

(ग) केवल उद्बुद्ध मात्र स्थायीभाव

(क) प्रधानरूप से प्रकट होने वाले संचारीभाव के उदाहरण के रूप में हम सूर का निम्नांकित पद ले सकते हैं। यहाँ पर शंका नाम के संचारीभाव की प्रधानता व्यंजित की गयी है —

> मधुबन देखि स्याम तन तेरो।
>
> हरिमुख की सुन मीठी बातें डरपत है मन मेरो।'

(ख) देवादि विषयक रति के उदाहरण में हम सूर का निम्नलिखित पद ले सकते हैं —

"चरण कमल बन्दौं हरि राई।"

(ग) उद्बुद्ध मात्र स्थायी भाव के रूप में तुलसी की ये पंक्तियाँ ली जा सकती हैं —

'जौं राउर अनुशासन पाऊँ। कंदुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ।

काँचे घट ज्यों डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक इव तोरी।"

<u>(4) भावाभास</u> :— भाव व्यंजना के किसी पद में जब अनौचित्य दोष आ जाता है, तब वहाँ भावाभास (असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य) नामक ध्वनि मानी जाती है —

'दरपन में निज छाँह संग, लखि प्रीतम की छाँह

खरी ललाई रोस की ल्याई अँखियन माँहि।" (काव्यदर्पण)

<u>(5) भावशान्ति</u> :— जब प्रेम से उदय होते हुए भाव को कारण विशेष से शान्त दिखायी जाये, तब भावशान्ति नामक असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि होती है। उदाहरण रूप में प्रियप्रवास का यह छन्द द्रष्टव्य है —

अतीव उत्कण्ठित ग्वाल बाल हो,

सवेग आते रथ के समीप थे।

परन्तु होते अति ही मलीन थे,

न देखते थे जब वे मुकुन्द को।"

<u>(6) भावोदय</u> :— जहाँ एक भाव के शान्त होते ही किसी दूसरे भाव का चमत्कार पूर्ण उदय दिखाया जाये, वहाँ भावोदय का होना माना जाता है। भावशान्ति के प्रसंग में उद्धृत छंद की अंतिम पंक्ति में भावोदय की स्थिति भी दिखाई देती है।

<u>(7) भावसन्धि</u> :— जहाँ पर समान चमत्कार विधायक दो भावों का एक साथ उदय दिखाया जाये, वहाँ भावसन्धि का होना बताया गया है। सूर के निम्नलिखित पद

में प्रेम भाव के अन्तर्गत झुँझलाहट का भाव भावसन्धि का उदाहरण है —

तब तू मारबोई करत।

रिसनि आगे कहै जो आवत, अब लै भाँड़े भरति।

(4) भावशबलता :— जहाँ एक ही क्रम से दो से अधिक चमत्कार कारक समान भावों का उदय हो, वहाँ भावशबलता होती है। इसके उदाहरण रूप में हम सूर का निम्नलिखित पद ले सकते हैं —

नन्द ब्रज लीजै ठोंक बजाय।

देहु बिदा मिलि जाहिं मधुपुरी जहँ गोकुल के राय।

यहाँ पर उत्सुकता, अधीरता, विरक्ति, झुँझलाहट आदि कई भावों का मिश्रण है।

(2) संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनिभेद :—

इसमें व्यंजक की प्रतीति और व्यंग्य की प्रतीति का पौर्वापर्य भाव स्पष्ट रहता है तथा व्यंजक और व्यंग्य-क्रम ऐसा रहता है, जैसा कि रणन और अनुरणन का हुआ करता है।

यह ध्वनि-काव्य शब्द, अर्थ और शब्दार्थ उभय की व्यंजना-शक्तियों से प्रादुर्भूत होने वाले व्यंग्यरूप अर्थ के कारण तीन प्रकार से होता है —

(क) शब्दशक्तिमूलानुरणनरूप व्यंग्यध्वनि :— इसमें शाब्दी व्यंजना अनुरणन सदृश व्यंग्यार्थ का बोध कराती है।

(ख) अर्थशक्तिमूलानुरणन रूप व्यंग्य ध्वनि :— इसमें आर्थी व्यंजना अनुरणन सदृश व्यंग्यार्थ का बोध कराती है।

(ग) उभयशक्तिमूलानुरणनरूप व्यंग्यध्वनि :— इसमें शाब्दी और आर्थी दोनों व्यंजनाएँ अनुरणन के सदृश व्यंग्यार्थ का बोध कराती हैं।

(क) शब्दशक्तिमूलानुरणन् रूप व्यंग्यध्वनि के भेद :— इसके दो भेद होते हैं —

(1) शब्दशक्ति से अलंकार ध्वनि।

(2) शब्दशक्ति से वस्तुध्वनि।

(1) अलंकार ध्वनि :—

जहाँ व्यंग्यार्थ अलंकार मूलक होता है, उसे अलंकार ध्वनि कहते हैं। यहाँ पर एक प्रश्न उठ खड़ा होता है। वह यह कि व्यंग्यार्थ रूप ध्वनि अलंकार कैसे हो सकती है। संस्कृत आचार्यों ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए लिखा है कि अलंकार्य ध्वनि को अलंकार ब्राह्मण-श्रमण न्याय से कहेंगे। जिस प्रकार श्रमण हो जाने पर ब्राह्मणत्व क्षीण हो जाता है, तथा वह ब्राह्मण श्रमण कहलाता है; उसी प्रकार व्यंग्यार्थ रूप अलंकार न रहने पर भी अलंकार ध्वनि कहलाता है। इसके उदाहरण में श्री गुप्त जी की निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रस्तुत कर सकते हैं —

करुणे क्यों रोती है, उत्तर में और अधिक तू रोई।
मेरी विभूति है जो, उसको भवभूति क्यों कहे कोई।'

यहाँ पर कुछ शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। जैसे उत्तर —1-जवाब, 2-उत्तर रामचरित नाटक। भवभूति —1- संसार की सम्पत्ति, 2- भवभूति नामक नाटककार यहाँ पर दो वाच्यार्थ हैं — 1 हे करुणे, तू इतना अधिक क्यों दुखी होती है। इस प्रश्न से तू और अधिक दुखी हुई। कवि कहती है कि जो मेरी सम्पत्ति है, उसे लोग संसार की सम्पत्ति क्यों कहते हैं। इसका दूसरा वाच्यार्थ है कि हे करुणा(रस) तू शोक(स्थायी) से समन्वित क्यों है? रति आदि मधुरभावों से समन्वित क्यों नहीं है? उत्तर रामचरित में इसका बहुत अधिक परिपाक हुआ है। तू (करुणा) तो साकेत की निधि है। लोग उसकी प्रतिष्ठा उत्तर रामचरित में क्यों मानते हैं? ये दोनों वाच्यार्थ असंगत हैं। इस असंगति को दूर करने के लिए व्यंग्यार्थ ग्रहण किया जाना आवश्यक है। व्यंग्यार्थ है — जिस प्रकार करुण रस भवभूति कवि की निधि है, उसी प्रकार हमारी रचना भी करुणा से ओतप्रोत है — यह अलंकार्य हुआ। प्रत्यक्ष अलंकार श्लेष है।

(2) वस्तुध्वनि :—

जहाँ व्यंग्यार्थ केवल वस्तु रूप होता है, वहाँ वस्तु ध्वनि मानी जाती है। इस ध्वनि में प्रायः द्व्यर्थक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। ये शब्द ऐसे होते हैं कि उनके पर्याय उनका काम नहीं दे सकते हैं क्योंकि दूसरे पर्याय रखने से व्यंग्यार्थ में अन्तर पड़ सकता है। वस्तु ध्वनि का प्रसिद्ध उदाहरण यह दोहा है —

चिरजीवो जोरी जुरै, क्यों न सनेह गम्भीर
को घटि ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर॥

यहाँ पर वृषभानुजा के तीन अर्थ हैं —1-वृषभानु की पुत्री राधा, 2-वृषभ अनुजा = बैल की बहन गाय। 3- वृष के सूर्य की पुत्री। इसी प्रकार हलधर के बीर के भी तीन अर्थ हैं —1-बलराम के भाई कृष्ण, 2-बैल, 3-शेषनाग( बलराम) के भाई। श्लिष्ट होने के कारण उपर्युक्त शब्द अन्य व्यंग्य अर्थों की ओर भी संकेत करते हैं। बैल और गायपरक अर्थ को दृष्टि में रखकर हम दोहे से इस प्रकार व्यंग्यार्थ ले सकते हैं —"परस्पर दोनों में बड़ा प्रेम बना रहे। प्रेम बना भी क्यों न रहे? दोनों एक ही पशुजाति के हैं। जब एक ही जाति के स्त्री पुरुष हैं, तो फिर परस्पर आकर्षण बढ़ना स्वाभाविक है।" इसी प्रकार वृषभानुजा और हलधर के क्रमशः वृष के सूर्य की पुत्री और शेषनाग अर्थ लेने पर व्यंग्यार्थ होगा —"ईश्वर करे दोनों में परस्पर प्रेम बढ़े। दोनों में कलह बढ़ने की बड़ी सम्भावना रहती है, क्योंकि प्रचण्डता और तीव्रता में दोनों एक से एक बढ़-कर हैं। अगर एक सूर्य-पुत्री होने के कारण चण्डी रूप हैं तो दूसरे शेषनाग( बलराम) के भाई होने के कारण भयंकर विषधर हैं।" चूंकि यहाँ पर व्यंग्यार्थ वस्तु रूप है, अतः यह शब्दशक्तिमूलकवस्तु ध्वनि है।

अर्थशक्तिमूलानुरणनरूप व्यंग्यध्वनि :—

आचार्यों ने अर्थशक्तिमूलक ध्वनि के स्थूल रूप से दो भेद माने हैं —

(1) अर्थशक्तिमूलक वस्तुध्वनि।

(2) अर्थशक्तिमूलक अलंकार ध्वनि।

(1) अर्थशक्तिमूलक वस्तुध्वनि :— इसके भी आचार्यों ने व्यंग्य व्यंजक भाव से छः प्रमुख प्रकार निर्दिष्ट किए हैं। इनके भी क्रमशः स्वतः सम्भवी कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध तथा कवि निबद्ध वक्तृप्रौढ़ोक्ति सिद्ध, भेद होते हैं। सब मिलकर अर्थशक्तिमूलक वस्तुध्वनि के 6 भेद होते हैं। वे इस प्रकार हैं —

(1) स्वतः सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य।

(2) स्वतः सम्भवी अलंकार से वस्तु व्यंग्य।

(3) कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध वस्तु से वस्तु व्यंग्य।

(4) कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तु व्यंग्य।

(5) कविनिबद्ध वक्तृप्रौढ़ोक्ति सिद्ध वस्तु से वस्तु व्यंग्य।

(6) कविनिबद्धवक्तृ प्रौढ़ोक्ति अलंकार से वस्तु व्यंग्य।

अर्थशक्तिमूलक वस्तुध्वनि :—

इसके उदाहरण के रूप में हम बिहारी का निम्नलिखित दोहा ले सकते हैं —

> लखि गुरुजन बिच कमल सों सीसु छुवायौ स्याम।
>
> हरि सन्मुख करि आरसी हिये लगाई बाम॥

इस दोहे में कवि ने व्यंग्यार्थ रूप में पहले तो नायक के द्वारा मिलन की प्रार्थना प्रकट की है। फिर नायिका द्वारा उसकी स्वीकृति व्यंजित की है। ये दोनों व्यंजनाएँ लोक सम्भव वस्तु होने से वस्तु ध्वनि का उदाहरण हैं। इसी प्रकार कवि कल्पित वस्तु से वस्तुध्वनि, कवि निबद्धवक्तृकल्पित वस्तु से वस्तु ध्वनि, स्वतः सम्भव अलंकार से वस्तु ध्वनि आदि के भी सैकड़ों उदाहरण ढूँढ़े जा सकते हैं।

**अर्थशक्तिमूलक अलंकारध्वनि :-**

इस ध्वनि के व्यंग्य, व्यंजक, स्वतः सम्भवी, कविप्रौढ़ोक्ति सिद्ध और कवि निबद्ध वक्तृप्रौढ़ोक्ति सिद्ध आदि भेदों से वस्तु ध्वनि के सदृश 6 भेद होते हैं। उनके नाम हैं —

(1) स्वतः सम्भवी वस्तु से अलंकार व्यंग्य।

(2) स्वतः सम्भवी अलंकार से अलंकार व्यंग्य।

(3) कविप्रौढ़ोक्तिसिद्ध वस्तु से अलंकार व्यंग्य।

(4) कविप्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलंकार से अलंकार व्यंग्य।

(5) कविनिबद्धवक्तृप्रौढ़ोक्ति अलंकार सिद्धवस्तु से अलंकार व्यंग्य।

(6) कविनिबद्धवक्तृप्रौढ़ोक्ति अलंकार से अलंकार व्यंग्य।

स्वतः सम्भव वस्तु से अर्थमूलक अलंकार ध्वनि का उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है —

> रँग राती राते हिये प्रियतम लिखी बनाय।
> काती पाती बिरह की छाती रही लगाय।

इस दोहे में जिस व्यंग्यार्थ की व्यंजना की गयी है, उससे अपन्हुति अलंकार की ध्वनि निकलती है। वह सम्भव वस्तु 'प्रियतम की पाती' से प्रकट हुई है। प्रियतम की पाती नहीं, नायिका ने मानो विरह की पाती ही हृदय से लगा ली है, यही व्यंग्य है। इससे प्रियतम के विरहाधिक्य की व्यंजना की गयी है। इसी प्रकार अन्य पाँच प्रकार की अलंकार ध्वनि के उदाहरण दिये जा सकते हैं।

**उभयशक्तिमूलानुरणन रूप व्यंग्य ध्वनि :-**

कहीं कहीं शब्द और अर्थ उभयमूलक ध्वनि के मिश्रित उदाहरण मिलते हैं। जैसे -

अनुपम चन्द्राभरन युत मनमथ प्रबल महानु।
तरल तारिका कलित यह श्यामा ललित सुहानु।

श्लेष के बल पर इसके दो वस्तुगत वाच्यार्थ निकलते हैं — एक रात्रिपरक है और दूसरा रमणीपरक। रात्रिपरक अर्थ इस प्रकार है — चन्द्रमा से विभूषित तारकों से युक्त काम को उद्दीप्त करने वाली रात्रि शोभित हो रही है। रमणी परक अर्थ लेने पर श्यामा का अर्थ रमणी लिया जाये, तो इस प्रकार अर्थ होगा — चन्द्राभूषण से अलंकृत चपल तारकों वाली रमणी कामना उद्दीप्त करती हुई शोभायमान हो रही है। यदि चन्द्र तरल और श्यामा' शब्दों के लिए पर्यायवाची शब्द रख लिये जायें तो उपर्युक्त दो अर्थ नहीं लग सकते। इस दृष्टि से तो यहाँ शब्द शक्तिमूलकता है। किन्तु 'आभरण' और 'महानु' शब्द के पर्यायवाची रख देने पर भी उपर्युक्त दोनों अर्थों में अन्तर नहीं पड़ सकता। यह अर्थशक्ति मूलकता हुई। इसीलिए इसे उभयशक्तिमूलानुरणनरूप व्यंग्य ध्वनि का उदाहरण माना गया है।

## आलोच्य महाकाव्यों में ध्वनि का स्वरूप

### 'जननायक'

**अर्थान्तर संक्रमित वाच्यध्वनि :-**

गाँधी जी अफ्रीका में अंग्रेजों के विरुद्ध आवाज उठाते हैं। वे वहाँ दलितों और शोषितों के लिए शिव की भाँति अपमान रूपी कालकूट स्वीकार करते हैं —

शिव पार्वती प्रजा को निकले, मरा हुआ डर कुछी जिलाया।
नीलकण्ठ ने कालकूट पी, विश्वपिता को अमृत पिलाया। (जन0155)

निम्नांकित उदाहरण में वाच्यार्थ विवक्षित होने पर अर्थान्तर संक्रमित हो गया है।

अभिमानी रावण ने गाँधी रूपी राम की बात नहीं मानी। इसलिए यहाँ अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है :—

राम बहुत समझाकर हारे पर रावण ने एक न मानी।

शास्त्र विज्ञ पंडित रावण की उल्टी मति से मिटी निशानी।(वही, 3।5)

<u>अलंकार ध्वनि</u> :—

गाँधी जी लन्दन जा रहे हैं। वे जहाज में बैठे हैं। जैसे ही उनकी यात्रा प्रारम्भ होती है, समुद्र में बहुत तीव्र तूफान आ जाता है। गाँधी जी सभी यात्रियों को धैर्य बँधाते हैं, मानों वे पराधीनता की जंजीरों से जकड़ी भारत माता के उद्धार के लिए भारतवासियों को ढाढ़स बँधा रहे हैं। यहाँ मुद्रा अलंकार के माध्यम से यह ध्वन्यर्थ निकल रहा है। अतएव यहाँ अलंकार ध्वनि है :—

बोला यात्री डरो न माँझी, तट पर यह मझधार चलेगा।

आज भँवर से होड़ लगी है, आज जीत का दीप जलेगा।

डगमग डगमग यान हो गया, फन फैला लहरें टकराईं।

तूफानों के लगे थपेड़े, लहरें छाती पर चढ़ आयीं।(जननायक, 2।

## 'वर्द्धमान'

<u>अलंकार ध्वनि</u> :—

कदापि [illegible] से गिरा नहीं,

न कीट द्वारा प्रणिपात ही हुआ

परंतु ज्यों ही फल पक्व हो गया,

स्वप्राण हो जीवितवृन्त से चुआ।(वर्द्धमान, पृ0332/71)

यहाँ पर एक अर्थ साधारण फल से है तथा दूसरा अर्थ जीवन रूपी फल के लिए प्रयुक्त किया गया है। यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार द्वारा दूसरे अर्थ को लिया गया है।

लक्षणामूला ध्वनि (अर्थान्तर संक्रमित वाच्यध्वनि)

दिनेश आरुण्य दिगन्त में लसा,  
विलोक मिथ्या मत ध्वान्त से छिपे,  
उषा न आयी नभ में धरित्रि में  
प्रभाव छाया जिन-धर्म-चक्र का।

कवि के अनुसार पृथ्वी पर महावीर रूपी सूर्य का प्रभाव छाया हुआ है। वाच्यार्थ 'सूर्य' अनुपयुक्त होने पर दूसरे अर्थ में संक्रमित हो गया है। अतः यहाँ अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है।

इसी प्रकार निम्नांकित उदाहरण में महावीर रूपी प्रमत्त गजेन्द्र से वाच्यार्थ स्पष्ट होता है—

अब महान प्रमत्त गजेन्द्र का  
टूट आलान हुआ तब वेग से  
बस न है यह कानन को कहीं  
रह गया अवरोध न अंत में। (वही, पृ0 103)

अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि :-

यहाँ जिनेन्द्र सूर्य के समान तेजस्वी हैं। उनका ज्ञान दिन और रात में बराबर प्रकाशित होता है। उनके राज्य में अंधकार(कुज्ञ) का कहीं स्थान नहीं है —

जिनेन्द्र ही एक द्वितीय सूर्य हैं,  
सदा प्रकाशी दिन में निशीथ में।  
न क्षीण होंगे अघ-ओघ से कभी  
न पा सकेगा कुछ अंधकार भी। (वही, पृ0 5।6-93)

अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि :-

भरा हुआ यद्यपि स्नेह-द्रव्य से
समृद्ध है पूर्ण-दशा-विशेष से,
तथापि होता मल-युक्त दीप है,
विलोक सर्वोदय पद्मबन्धु को। (वर्द्धमान, 5 40-63)

यहाँ पर दीपक का वाच्यार्थ असंगत होने पर उसे वर्द्धमान के वास्तवी दीप के अर्थ में संक्रमित किया गया है। अतः यहाँ अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है।

## 'जयभारत'

इस काव्य में कवि ने अपनी वाग्विदग्धता का परिचय दिया है। वह पात्रों द्वारा यथा समय उपयुक्त भाषा तथा वचनवक्रता, प्रकरण और ध्वनि आदि का प्रयोग करता है —

ध्वनि :- (अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि)

चौंक उठे सब सिंहनाद सुन आगत नर का
मानो भू पर उदय हुआ नूतन दिनकर का। (जयभारत, पृ0 62)

यहाँ पर सिंहनाद का वाच्यार्थ न लेकर मनुष्य की वीर वाणी का अर्थ लिया गया है। अतः यहाँ अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है।

अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि :-

परशुराम कर्ण की वास्तविक जाति को जानकर शाप दे देते हैं; किन्तु कुछ देर बाद वे स्वयं ही दुखी होते हैं और कर्ण से क्षमा माँगते हैं। तब कर्ण उत्तर देता है— दण्डपाणि समर्थ का अपराध कैसा तात

और भिक्षुक की क्षमा तो है हँसी की बात। (जयभारत, पृ0 26)

इसी प्रकार जब कृष्ण दुर्योधन के पास संधि प्रस्ताव लेकर जाते हैं; तब दुर्योधन व्यंग्योक्ति करता है —

> हरि ने जब यह कहा वहाँ छाया सन्नाटा
>
> दुर्योधन ने उसे व्यंग्य करके ही काटा —
>
> 'सात स्वरों के तीन ग्राम तो सभी कहीं हैं
>
> एक स्वर में पाँच ग्राम ये सुने नहीं हैं। (जयभारत, पृ0332)

यहाँ ध्वनि के माध्यम से पाण्डवों के पाँच ग्रामों पर आधारित सन्धि-प्रस्ताव का उपहास किया गया है।

## 'पार्वती'

**अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि :—**

जब मेना शंकर जी को वर रूप में देखती है, तो उनको बहुत क्षुब्ध होता है और वह नारद जी को अपशब्द कह डालती है —

> नारद तुमने यह क्या छल मुझसे किया।
>
> विधि ने किन कर्मों का फल मुझको दिया। (पार्वती, पृ0237)

नारद उनको अनेक प्रकार से समाश्वासित करते हैं, किन्तु रानी उनका तिरस्कार ही करती है —

> नारद ने बहु भाँति समाश्वासन किया,
>
> तिरस्कार से रानी ने शासन किया
>
> मायावी मुनि श्रेष्ठ, अधिक अब मत कहो,
>
> करके कुल का नाश दूर ही तुम रहो। (वही, पृ0 238, पा0परि0)

**अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि :—** परशुराम अपने शिष्यों से प्रयाण के समय कह रहे हैं :—

बाढ़ में सु-भूमि भी कु,भूमि बन जाती है

वैश्य और शूद्र क्या करेंगे धनुर्वेद ले?

वैश्य शब्द-वेधी स्वर से क्या शस्य काटेंगे।

और शूद्र तीर फूंक सेवा में लगेंगे क्या? (एकलव्य, पृ0 122)

यहाँ पर व्यंग्य ध्वनि काआभास हो रहा है।

<u>अर्थान्तरसंक्रमित वाच्य ध्वनि :-</u>

देख मेघ नभ में,

घूमता है वहीं जहाँ विक्रमी शार्दूल-सा

गर्जन से गूँजती गुहाएँ गिरि-गिरि की

धारासार से धरा को सींचतो धन्य करता

जीवन की मुस्कान देता तृण-तृण को

देख, तृण जानता है मेघ की अमोघता

नभचारी मेघ कैसे जाने भूमि तृण को।

मेघ की महानता में तृण अति छोटा है

देव, मुझे जानते नहीं है किन्तु देव की

दिव्य दीप्ति देखता रहा हूं दूर-द्वार में। (एकलव्य, पृ0 118)

यहाँ पर वाच्यार्थ से मेघ और तृण का अर्थ निकलता है, किन्तु ध्वनि से द्रोणाचार्य और एकलव्य में अर्थ संक्रमित किया गया है।

चरक मत स्वप्न देखो, तृण नक्षत्र भी जो

उत्तर में अटल महत्तर हैं नभ में

किन्तु वह रवि के समीप नहीं उगता

छवि में संतुष्ट और तुष्ट है विवेक में।

और सुनो सागर जो अगम अथाह है,

वहाँ जलजीव और मीन ही की गति है।

यदि गजराज चाहे उसमें प्रवेश हो,

तो क्या यह सम्भव है निश्चित असम्भव। (एकलव्य, पृ0 126)

यहाँ भी वाच्यार्थ विवक्षित होने से लक्ष्यार्थ में संक्रमित कर दिया गया है।

**'तारकवध'**

शब्दगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि :-

शान्ता के वन-गमन से सभी अयोध्यावासी अत्यन्त दुखी हैं। निम्नांकित पंक्तियों में कवि ने शान्ता के वियोग से होने वाले दुख की ध्वनि के माध्यम से व्यंजना की है —

जिसने मौक्तिक दान किया सबको सदा।

आज बनी जन-नयन-हेतु की रोहनी। (तारकवध, पृ0 175)

अर्थान्तर संक्रमित वाच्यध्वनि :-

आपस के ये कलह दुर्वेध घर भीतर के हैं।

ये सब काल समान शेष जगती भर के हैं।

कितना ही हो दीन भुजग भेदक जायेगा।

मरता भी हो सिंह मांस में रस पायेगा। (वही, पृ0 265)

यहाँ पर ध्वनि के माध्यम से दैत्यों की क्रूरता का वर्णन किया गया है।

भाव-संधि :-

वनदेवी मधु के विरह में व्याकुल होकर वियोग की सभी दशाओं से गुजरती है। यहाँ करुणा और शान्ति, दोनों की सन्धि व्यंजित है :-

रोती थी नीरज धरती थी दोनों बारी-बारी

कभी अभागी समझ स्वयं को, माथा ठोंका करती।

ज्यों त्यों प्रिय जी को समझाकर दृगजल रोका करती। (तारक०पृ०16)

<u>भाव शबलता</u> :— कार्तिकेय तारका को क्रमशः शाप दे देते हैं। अन्त में जब वास्तविकता प्रकट होती है, तब वे बहुत ही व्याकुल हो जाते हैं —

व्यर्थ आह अब मैं भरता हूँ,

जिससे प्रेम अचल हिलता था,

नित्य नवल जीवन मिलता था,

मंजुल प्राण सुमन खिलता था,

मार उसे रोदन करता हूँ। (तारकवध, पृ० 58)

<u>अर्थमूलक अलंकार ध्वनि</u> :—

पौ न फटी हाय फटी थी निशि की छाती।

चिर-आगम की भीति मालमणि टूटी जाती।

नहीं अपार कचनार कुसुम थे लाल-लाल दिखलाते

फटा कलेजा किसी व्यक्ति का रक्त बहे थे जाते। (वही, पृ० 522)

यहाँ पर प्रातः काल होने के वर्णन को कवि ने अपन्हुति अलंकार द्वारा व्यथित व्यक्ति पर आरोपित किया है।

## '<u>लोकायतन</u>'

<u>अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि</u> :— पन्त कहते हैं कि जिस कला से लोक का रंजन हो और उसका हित हो, वही कला सार्थक है। कोयल सोने के पिंजड़े में आबद्ध होकर सन्तुष्ट नहीं होती। उसे हरे भरे वन में स्वतंत्र होकर कूजन करने में ही

सुख का अनुभव होता है, इसी प्रकार कलाकार भी बन्धनमुक्त होकर अपनी कलाओं द्वारा लोकरंजन करते हैं और सन्तुष्ट रहते हैं —

लोकरंजन में जो कृतकाम
उसी शिल्पी की कला कृतार्थ
स्वर्ण पिंजर में सुखी न रंच
हरित वन में गा पिक चरितार्थ। (लोकायतन, पृ0 344)

<u>अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि</u> :—

निम्नांकित पंक्तियों में निरक्षरता की समस्या की गम्भीरता की व्यंजना की गयी है—

मूढ़ निरक्षरता के पत्थर
ऊसर भू पर कहाँ चले हल?
दरिद्रयों का पर्वत सिर पर
कला समस्या का हो क्या हल? (लोकायतन, 48)

कवि सभी शिष्यों को अहं वृत्ति छोड़ने के लिए कहता है —

अहं वृत्ति अहि को नत फन कर
गढ़ो विनय का सात्विक अचल। (लोकायतन, पृ0 58)

घृणा पंक में सना धराम्बुज
प्रेम स्रोत से कर प्रक्षालन
ओ अहं कुंठित भू मन के
स्वर्ग हवा से भरे नरक व्रण। (वही, पृ0 93)

दुष्ट अहि फण सा बन कटु दंभ
उन्हीं पर करता अत्याचार। (वही, पृ0 330)

**असंलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि :-**

माधो गुरु का दर्पदर्पी की विनम्रता से होमाग्नि की तरह प्रज्वलित हो उठता है —

वरू की स्निग्ध घृताहुति पा ज्यों
हो उठती मख वन्हि प्रज्वलित
विनत अहिंसा की नरबलि पा
पशु का दर्प हुआ उत्तेजित। (तीर्थायतन, पृ0 94)

**'झाँसी की रानी'**

**अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि :-**

कवि ने विभिन्न उपमानों के माध्यम से रानी की शूरता की व्यंजना की है —

किरणों को तिमिर घटा यदि
चाहेगी ओ छिपाना,
अरि दल पतंग बनकर यदि
चाहेगा ओ बुझाना
आँधी बनकर रण में तो
मैं तम सन्नाटा करूँगी। (झाँसी की रानी, पृ0 44)

निम्नांकित पंक्तियों में कवि ने शीत ऋतु की प्रचण्डता का उल्लेख किया है —

हिमकर का सित-वदन भी
कुछ कुछ धूमिल लगता था।
ले अंगराग ओले का
मारुत तन पर मलता था। (झाँसी की रानी, पृ0 198)

अर्थान्तर संक्रमित वाच्यध्वनि :-

माँ के तन पर भी मैला
सौ छिद्रों का कपड़ा था
वह तन वर्षांति तल पर
मानो निश्चिन्त पड़ा था। (झाँसी की रानी, पृ० 198)

यहाँ पर वाच्यार्थ विवक्षित होने पर मातृभूमि में अर्थान्तर संक्रमित हो गया है। यहाँ मातृ भूमि की दयनीय दशा की व्यंजना की गयी है।

भाव :-

गोरों को पाटल-कुसुम समझ
मधुपावलि सी मँडराती थी।
सातंक किसानों ने समझा
घनहीन तड़ित है कड़क रही।
पवि का निपात ही समझ उधर
उनकी छाती भी धड़क रही। (वही, पृ० 321)

यहाँ शंका नामक भाव का वर्णन किया गया है।

'भगवानराम'

असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि :-

जब सीता-स्वयम्वर में उपस्थित नरेश धनुष भंग न कर सके, तब राम ने अपने गुरु विश्वामित्र से धनुष तोड़ने की आज्ञा माँगी। इस पर जनक व्यंग्य करते हैं —

इसे देख सकते हैं राघव अतुल पराक्रम
क्या प्रदर्शित कर सकते हैं पौरुष निर्बल

करें धनुष का आरोपण यदि श्रीराम वीर वर

पड़े उन्हीं के गले आज वरमाला सुन्दर। (भगवानराम, पृ0123)

परशुराम शिव धनुष के भंग होने से अत्यन्त क्रुद्ध हैं और वे राम पर व्यंग्य करते हैं — अति अचिन्त्य पराक्रमी तुम हो रहे विख्यात

है न प्रति द्वन्द्वी तुम्हारा विश्व में मनुजात

द्वन्द्व युद्ध विचार से आया यहाँ मैं राम

सहन करता नहीं प्रतिपक्षी कभी बलधाम। (वही, पृ0 168)

अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि :—

तालाब में कुमुदिनी के पुष्प खिले हैं। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानों तारों सहित रजनी तालाब में स्नान करने के लिए उतरी हो —

खिले हैं अगणित कुमुद सर मध्य सित

कंज कुड्मल छिप रहे हैं संकुचित

स्नान हित मानों स्वयं रजनी ललित

अवतरित सर में हुई उडुगण सहित। (वही, पृ0 115)

भाव-सन्धि :—

वह सभा थी देख रही निस्तब्ध हृदय अनिमेष

मानो नृप ने छेड़ दिया था शान्त सकलमन शेष

उत्तेजित अभिलाष वीर रस मानो था सशरीर

जिसे शान्त करता था रघुवर स्नेह सुधा का नीर।

हुआ वर्णगत तभी सघन गम्भीर घोष स्वन

मेघ घटा मानों घिरती हो करती गर्जन। (वही, पृ0 122)

इसमें वीर और शान्त दोनों रस एक साथ उदय हो रहे हैं।

अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि :-

कवि निम्नांकित पद में भावी विपत्ति की ओर संकेत करता है -

हृदय मध्य सुधांशु के भी कटु गरल का न्यास है,

केतु का भी अंशुमाली कभी बनता ग्रास है।(भगवानराम, पृ0 7/26)

अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि :-

मन्थरा कैकेयी को उल्टा पाठ पढ़ाती है, किन्तु कैकेयी उसे डाँट देती है। इसके पश्चात् मन्थरा विषावलित्र बिलखने लगती है —

सुनते ही यह वचन मन्थरा कुपित जिमि व्याल।

फेंक आभरण दूर गरल के लगी उगलने ज्वाल॥(वही, 33/179)

कैकेयी द्वारा फेंके गये आभूषण ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो वे नीले आकाश के तारागण हों —

आतप्त आभरण समुज्ज्वल रत्नतल्प में पड़े हुए।

नील गगन में यथा दीप्त तारक मण्डल हैं जड़े हुए।(वही, पृ0 44)

भरत राम को वन से लौटाने के लिए चित्रकूट जाते हैं। मार्ग में निषाद से श्रीराम का वृत्तान्त सुनकर भरत विशिख-विद्ध गजेन्द्र की भाँति भूपतित हो जाते हैं —

वृत्तान्त दुःख प्रद मर्म विदीर्णकारी

कैवर्तनाथ गुह से सुन राम भ्राता।

ऐसे हुए पतित भू पर वेदना से

मानो गिरा विशिख विद्ध गजेन्द्र कोई॥(वही, पृ0 208)

भरत राम को हर प्रकार से लौटाने का प्रयत्न करते हैं —

सरवर जल सीमा सेतु आबद्ध होती।

पर यदि अति वर्षा वेग से सेतु टूटा॥

जल प्रलय न कोई नाथ है रोकपाता

प्रभु शरण बिना त्यों राज्य भी नष्ट होगा। (भगवानराम, पृ0329।)

मारीच रावण को समझाना चाहता है –

कर रहा राक्षस-कुलों को सिंह बन जो नष्ट

रोष उत्तेजित न उसका करो बन मति भ्रष्ट। (भगवान0पृ0330)

लक्षणामूला ध्वनि :–

राम-लक्ष्मण ने वन में जाकर ही रात्रि जागरण किया –

निर्भीक सिंह शिखरों पर भूधरों के

स्वच्छन्द भाव सुख से रहते यथा हैं।

दोनों साहस नर पुंगव बंधुओं ने

निःशंक जगकर रात्रि तथैव काटी। (भगवानराम, पृ 15।)

एकान्त देख नरव्याघ्र प्रवास-वास

आया तुरन्त दशग्रीव शृगाल पास

लक्ष्मी ही श्री रति गिरि सुता अप्सरा हो कि देवी

किंवा जागी रतिपति कला स्नेह पुत्तली थी। (वही, पृ0356)

रावण के राम की कुटी के पास एकान्त देखकर आता है। सीता रावण की अपेक्षा राम को श्रेष्ठ बताती हैं –

तू है शृगाल, हरवेश मृगेन्द्र मेरे

खद्योत कीट सम तू रविनाथ मेरे।

प्रणेता राम मृगराज सियार तू है,

है वैनतेय प्रभु नायक व्याल तू है। (वही, पृ0 360)

भय :-

यहाँ पर भय नामक स्थायीभाव का उदय होता है —

> उग्र दुराग्रह निर्मम हठ का देख प्रचण्ड स्वरूप
>
> हरि-गर्जन शंकित कुरंग सम हुए प्रकम्पित भूप। (भगवानराम, पृ0 51)
>
> छू जाता है यदि चरण से नाग प्राणान्तकारी
>
> होती है संचरित मन में भीति ज्यों विप्रता से।
>
> त्यों ही चिन्ताजनक नृप की देख दुःख दशा को
>
> आँखों से व्यथित मन में राम के भय आया। (वही, पृ0 63)

## 'जानकीजीवन'

अलंकार ध्वनि :-

बिठूर में कार्तिकी शुक्ला पूर्णिमा को जब जैसा मेला लगता है। यहाँ दूर दूर के तीर्थ यात्री आते हैं। इसी मेले में मिथिला से आगत राजर्षि जनक, ~~और~~ अयोध्या से आगत वशिष्ठ एवं राजमाताओं की समुपस्थिति में वाल्मीकि की वाणी राम के जीवन के त्यागपूर्ण उत्कर्ष की रागिनी गाने लगी। कवि ने मुद्रा अलंकार में इस वाणी का कितना भव्य चित्र अंकित किया है —

> कल्पनाएँ थीं न थीं वक्रोक्तियाँ,
>
> पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्रालोक में।
>
> सारगर्भी सत्य वाचा-तत्व से
>
> भासता वाच्यार्थ ही व्यंग्यार्थ-सा। (जानकीजीवन, पृ0 323)

यहाँ काव्यशास्त्रीय अनेक पारिभाषिक शब्द आ गये हैं, जिनसे मुद्रा अलंकार सूचित हो रहा है। परन्तु कवि के द्वारा उनका दूसरा अर्थ प्रकृति के वातावरण से

सन्नद्ध कवि की वाणी पर भी लगता है। अभिधार्थ, वाच्यार्थ, व्यंग्यार्थ के समान वातावरण की विशिष्टता के कारण ही भासमान हो रहा है। ध्वन्यालोक ध्वनि पर प्रकाश विकीर्ण करने वाला एक ग्रंथ है, परन्तु श्लेष से यहाँ दूसरा अर्थ पूर्णिमा के अभिव्यक्त आलोक से भी है। निम्नांकित छंद में रूपक अलंकार के माध्यम से बाण-विद्ध व्यक्ति की सभी चेष्टाएँ व्यक्त हो रही हैं —

काव्य की वाक्यावली बाणावली,
बेधती थी मानसों के मर्म को।
स्तब्ध श्रोता-मण्डली रोमांचिता
शोकमग्ना अश्रु से आप्लाविता। (जानकीजीवन, पृ0 323)

काव्य की वाक्यावली बाणावली है। बाण जैसे मर्म को बेध देता है, वैसे ही वाक्यावली भी श्रोताओं के हृदयों को विद्ध कर रही है। रोमों का खड़ा हो जाना और शोकाश्रुओं का गिरना उसी की परिणाम भूत चेष्टाएँ हैं।

वसन्त ऋतु में होली का पर्व भी पड़ता है। यह पर्व जीवन की मादकता का पर्व है। प्रकृति के अनुरूप जन-जीवन भी मदिर भाव से भर जाता है और रस-राग-रंग में जनता झूम उठती है। अपन्हुति अलंकार द्वारा कवि अनंग के प्रभाव का वर्णन करता हुआ लिखता है —

चोटें चली चटकती कलियाँ नहीं खिलीं।
छूटे महाप्रखर सायक पंचबाण के।
मानो चलीं अब वियोगिनियाँ वियोगियों,
कैसे सुधांशु कर ग्राहक-प्राण-प्राण के। (जानकीजीवन, पृ0 124)

अरुणरामायण

अर्थान्तरसंक्रमित वाच्य ध्वनि :- राम भरत से कहते हैं कि भरत तुमने शिव की भाँति कलंक रूपी विष का पान किया है और अपने प्रेमभाव से विश्व को अपने वश

में कर लिया है —

हे भरत प्रेम से तुमने जग को जीत लिया

शिव के समान तुमने भी तो विषपान किया।(भरतरामायण, पृ0274)

<u>अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि</u> :—

राम भरत को हर प्रकार से निर्दोष बतलाते हैं —

निर्दोष भरत गुण-सुधा पान कर बने औ

इनके उज्ज्वल यश से आलोकित सूर्य भी।(भरत0 285)

<u>काकुध्वनि</u> :— दशरथ जब सब प्रकार से कैकेयी को समझाकर हार जाते हैं, तब वे असहाय कहते हैं —

मैं हार गया निज कैकेयी शासिनी से

पूर्णिमा प्रताप नहीं उसमें वह गरल-कला

उसके कारण रघुकुल को आज मिला अपयश(भरत0 158)

<u>लक्ष्यार्थ व्यंजना</u> :—

भरत राम के वनगमन से अत्यन्त दुःखी हैं और अपने दैन्य अनेक प्रकार से प्रकाशित करते हैं — 'मैं कुल-घातक मैं भरत रंक, मैं तम-मयंक

मेरे सब उर के सर में अब पाप-पंक

जलहीन मीन-सा छटपट छटपट करता मन

हो रहा निरर्थक राम बिना सार्थक जीवन।(वही, पृ0275)

कैकेयी को अपने कृत्य पर बहुत ही ग्लानि होती है। वह अपने को पुत्र का नाश करने वाली डाकिन कहती है —

## षष्ठम अध्याय

## 'औचित्य'

औचित्य सम्प्रदाय काव्य का एक उल्लेखनीय सम्प्रदाय है। साहित्य शास्त्र पर विचार करने वाले प्रायः सभी आचार्यों ने औचित्य को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। औचित्य सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य क्षेमेन्द्र ने तो औचित्य को काव्य का प्राण सिद्ध किया है। वे काव्य के सभी आवश्यक उपादानों को औचित्य के अन्तर्गत और काव्य दोषों को अनौचित्य के अन्तर्गत मानते हैं। काव्य के प्राण रूप में प्रतिष्ठित रस ध्वनि आदि भी औचित्यानुरूप होने पर सफल काव्य का संविधान करते हैं।

### औचित्य का स्वरूप :-

औचित्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए आचार्य क्षेमेन्द्र लिखते हैं —

"उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भावः तदौचित्यं प्रचक्षते॥"

अर्थात् सदृश वस्तुओं के योग को आचार्यों ने उचित कहा है। उचित के भाव को ही औचित्य कहते हैं।

### औचित्य के भेद :-

काव्य के विविध अंगों और उपांगों के अनुरूप औचित्य के भी भेद होते हैं। 'औचित्य विचार चर्चा' में आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य के 27 प्रकार माने हैं। वे इस प्रकार हैं — पद, वाक्य, प्रबन्धार्थ, गुण, अलंकार, रस, क्रिया, कारक, लिंग, वचन, विशेषण, उपसर्ग, निपात, काल, देश, कुल, व्रत, तत्त्व, सत्त्व, अभिप्राय, स्वभाव, सारसंग्रह, प्रतिभा, अवस्था, विचार, नाम और आशीर्वाद।

<u>रसगत औचित्य</u> :— औचित्य सम्प्रदाय के सभी आचार्यों ने काव्य में रसपरिपाक का मूल तत्व औचित्य ही माना है। रस के पूर्ण परिपाक की अवस्था को आचार्यों ने पाक नाम दिया है —

तस्मात् रसोचित शब्दार्थसूक्तिनिबन्धनः पाकः।'

राजशेखर ने अपने 'कवि रहस्य' के 'काव्यपाक कल्प' नामक प्रकरण में काव्य की पाक अवस्था पर विचार किया है। कवि में उचित-अनुचित का विवेक होने पर काव्य इस स्थिति को पहुँचता है —

उचितानुचित विवेको व्युत्पत्तिः इति यायावरीयः।'

इस प्रकार रस और औचित्य में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। रस और ध्वनि से सम्बन्ध हुए बिना औचित्य का कोई महत्व ही नहीं होता। अभिनव गुप्त और क्षेमेन्द्र ने औचित्य को रस का जीवन स्वीकार किया है। किन्तु दोनों में थोड़ा अन्तर है। अभिनव गुप्त ने आत्मा और जीवित शब्दों को पर्यायवाची मानकर औचित्य से युक्त रस ध्वनि को काव्य का जीवितत्व कहा है —

उचितशब्देन रसविषयमौचित्यं भवतीति दर्शयन् रसध्वनेः जीवितत्वम् सूचयति।" पृ० 13

क्षेमेन्द्र ने आत्मा और जीवितत्व में भेद माना है। वे रस को काव्य की आत्मा और औचित्य को उसका जीवन मानते हैं। रस काव्य में प्राणप्रतिष्ठा करता है, तो औचित्य उसके जीवन को चिरस्थायी बना देता है। जिस प्रकार पारद धातु के सेवन से शरीर का यौवन चिरस्थायी हो जाता है, उसी प्रकार औचित्य से युक्त होने पर काव्य भी चिरस्थायी हो जाता है —

रसेन श्रृंगारादिना सिद्धस्य प्रसिद्धस्य काव्यस्य धातुवाद रससिद्धस्येव तज्जीवितं स्थिरमित्यर्थः। औचित्यं स्थिरमविनश्वरं जीवितं काव्यस्य तेन विनास्य गुणालंकार युक्तस्यापि निर्जीवत्वात्।"— औ०वि०च०पृ० 15

वे एक दूसरे स्थल पर भी लिखते हैं —

'औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चारुचर्वणे।

रसजीवितभूतस्य विचारं कुरुतेऽधुना।'

तात्पर्य यह है कि सहृदयों द्वारा जिस काव्य-चमत्कार का चारु चर्वण किया जाता है, उसका मुख्य रहस्य औचित्य है। औचित्य ही रस का जीवित तत्त्व है। औचित्य से रस आस्वाद योग्य बनता है और अनौचित्य ही रसाभास का कारण होता है — 'औचित्येन प्रवृत्तौ चित्तवृत्तेः आस्वाद्यत्वे स्थायिन्या रसः व्यभिचारिण्या भावः। अनौचित्येन तदाभासः, रावणस्य, सीतायामिव रतेः।'

आनन्दवर्धन ने कवि के मुख्य कर्म का उल्लेख करते हुए लिखा है —

'वाच्यानां वाचकानां च यदौचित्येन योजनम्।

रसादिविषयेणैतत् कर्म मुख्यं महाकवेः।'

अर्थात् काव्य में रस आदि विषय से सम्बन्धित वाच्य-वाचक-भाव-जनित औचित्य की योजना ही कवि का मुख्य कर्म है।[1]

## आलोच्य महाकाव्यों में औचित्य का स्वरूप

## 'जननायक'

### प्रबन्धगत और रसगत औचित्य :-

'जननायक' का कथानक स्थूल और यथार्थ भूमि पर आधृत है। एक सामयिक गाँधी-जीवन का यथातथ्य चित्रण करने के कारण इसमें कवि को काल्पनिक

---

1- शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, डा० गोविन्द त्रिगुणायत, पृ० 364

अवान्तर प्रसंगों के सन्निवेश का अवकाश नहीं मिला है। इस दृष्टि से यहाँ कथानक में घटनाओं और परिस्थितियों के वैविध्य के संयोजन की दृष्टि से भी यह काव्य चरित्र-काव्यो-न्मुख अधिक है। गाँधी जी के जीवन के सर्वांग, नाना संघर्षों और आत्मप्रतिघातों से युक्त होने पर भी इसमें महाकाव्योचित औदात्य न आ सका। यह केवल एक ऐतिहासिक ब्यौरा बनकर रह गया। कल्पनाजनित नूतन प्रसंगों के अभाव में इसका कथानक अधिक प्रभविष्णु नहीं है। कथानक में आरोह-अवरोह का अनुसरण भी नहीं है। एकरसता की बँधी सरणि पर ही यह अग्रसर होता है। अनेक अनावश्यक प्रसंग इसकी श्रीसम्पन्नता का हनन करते हैं। उचितानुचित, ग्राह्याग्राह्य प्रसंगों के चयन में कवि ने कौशल से काम नहीं लिया। मौलिक उद्भावनाओं का तो प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि समस्त घटनाएँ ज्यों की त्यों बापू की आत्मकथा से ली गयी हैं। जननायक की घटनाओं के विकास में नाटकीयता का लेश नहीं है, अप्रासंगिक और सर्वथा उपेक्षणीय प्रसंगों की भरमार है।[1] निरस और अरोचक घटनाओं की विवृति पाठक की जिज्ञासा का शमन न करके उसे एक प्रकार से अन्यमनस्क और उदास ही बनाती है। कथानक अनन्वित और अव्यवस्थित भी है। संघटन-निर्वाह का शैथिल्य और अवान्तर प्रसंगों की बाहुल विरस विवरणावली उसे महाकाव्य की सीमा से दूर रखते हैं। हाँ, इसमें नाना घटनाओं का विस्तृत विवरण अवश्य उपलब्ध होता है। इस प्रकार 'जननायक' का कथानक अत्यंत निर्बल है।

इसमें गाँधी जी के चरित्र के अतिरिक्त अन्य पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं आदि का विशद् और मार्मिक वर्णन नहीं हो सका। चरित्र-चित्रण में न वक्रता है और न व्यंजना। कवि ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की तूलिका से चरित्र का स्पर्श नहीं किया।

1- आधुनिक हिन्दी काव्य में रूपविधाएँ-डा० निर्मला जैन, पृ० 97

'जननायक' में कवि-कल्पनाश्रित ग्रीष्म की जलधारा की भाँति शुष्क अथवा क्षीण दृष्टिगोचर होती है। इसके अभाव में कथानक में सजीवता और उदात्तता नहीं आ सकी। भारत की दुर्दशा का चित्रण भी मर्मस्पर्शी न हो सका। महाकाव्योचित रसात्मकता का इसमें अभाव ही है। अनेक स्थलों पर नीरस उपदेशात्मकता वर्तमान है।[1] इतिवृत्तात्मकता, वर्णनात्मकता की प्रबलता ने और उपदेशात्मकता की विरसता ने 'जननायक' के रस पक्ष को निर्बल बना दिया है। सम्पूर्ण काव्य में घटनाओं की विवृति है और सिद्धान्तों की पुनरावृत्ति है।[2]

काव्य की भाषा में सपाटपन है और न प्रभावकता। अभिधा से ऊपर उठने की कवि ने इच्छा नहीं की। एक पंखविहीन पक्षी की भाँति भाषा रेंगती चलती है। इसमें सुगमता और सुबोधता अवश्य है। बोलचाल के शब्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग किया गया है। कवि ने उर्दू फारसी के शब्दों को भी प्रयुक्त किया है, कफन, तस्वीर कोचवान, पायदान, हाजी, [illegible] जब, गम, वफादारियाँ, जहर, आबेहयात, सब्र, मंजिल, कलम आदि ऐसे ही शब्द हैं। अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। भाषा को अलंकृत कर उसे कुछ प्रभावोत्पादक बनाने का प्रयास भी कवि ने किया है।

फिर भी 'जननायक' कोई समुन्नत और गंभीर जीवन-दर्शन देने में असफल रहा है। स्वदेशानुराग की चेतना उद्बुद्ध कराना इस प्रबन्धकार रचना का उद्देश्य है। परन्तु जीवन के शाश्वत सत्यों, युगसत्यों और भविष्य के लिए महान् संदेश की व्यंजना यहाँ अप्राप्य है।[3]

---

1- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ0 472, डा0 गोविन्दराम शर्मा,

2- आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा तथा प्रयोग-डा0 गोपालदत्त सारस्वत, पृ0 367

3- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, डा0 निजामुद्दीन, पृ0 187

**भाषागत औचित्य :-**

'जननायक' में भाषागत औचित्य का अभाव पाया जाता है। निम्नांकित पद की प्रथम पंक्ति, में तुमने और तृतीय पंक्ति में आपने शब्द का प्रयोग किया गया है। यह अनुचित है। तृतीय पंक्ति मेंभी आपने के स्थान पर तुमने' शब्द का प्रयोग होना चाहिए।

लिखा कि तुमने पकड़ लिये हैं भारत अनमोल सितारे।
भारत माता की छाती पर [illegible] तुम्हारे।
आपस की मित्रता आपने पल में खेल समझकर तोड़ी
फूट इकट्ठा का भारत में तुमने जा चिनगारी छोड़ी(जन०289)

इसीप्रकार निम्नांकित पद की द्वितीय पंक्ति में 'जलता-बलता' शब्द का प्रयोग भी अनुचित है -

भारतमाता तुमको प्रणाम कह गया दीप जलता-बलता
छिप गया सूर्य दिन होने में, छिप गया दीप जलता-बलता।'

**'अंगराज'**

**प्रबन्धगत औचित्य :-**

अंगराज में पाण्डवों कोअपराधी बतलाकर उनके विरुद्ध विद्रोह की बातें कही गयी हैं। यह चिरपोषित लोकधारणा के सर्वथा प्रतिकूल है।[1]

महाभारत में द्रौपदी का पंचपतित्व कुंती वचनानुकूल औरव्यासअनुमत तथा धर्मसम्मत है।[2] किन्तु अंगराजकार ने द्रौपदी पर कामुकता का आरोप लगाया

---

1- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, डा०शिवानुरूपिन , पृ० 105

2- महाभारत, आदिपर्व, /189

है। इसे कवि का बौद्धिक विलास माना जायेगा।

अंगराज में जिस प्रकार द्रौपदी की कामुकता और पाण्डवों की आच-रण-भ्रष्टता का चित्रण किया गया है, वह कवि की असंस्कृतिक और हीन दृष्टि का परिचायक है। अर्जुन का वनवास नियम-भंग का कारण है, लेकिन कवि की असंगत कल्पना ने इसे युधिष्ठिर के शारीरिक अपकर्ष का कारण माना है। ऐसी अकल्याणकारी कल्पना काव्य की शोभा को हतप्रभ बनाने वाली है। ब्राह्मण की गौओं की रक्षा के लिए अर्जुन को वनवास स्वीकार करना पड़ता है। वह गौओं की रक्षा अधर्म से बचने के लिए करता है, लेकिन अंगराजकार ने यहाँ अपना दूसरा ही अर्थ सिद्ध किया है। ऐसी अनर्-गलतम उद्भावनाएँ काव्य की औचित्यसम्पन्नता को भंग करने वाली हैं।[1]

## 'वर्द्धमान'

### प्रबन्धगत औचित्य :-

वर्द्धमान निश्चित रूप से एक ऐतिहासिक महापुरुष हैं। परन्तु प्रस्तुत महाकाव्य में यदि हम भगवान महावीर की जीवन सम्बन्धी समस्त घटनाओं का, तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक अथवा धार्मिक परिस्थितियों का क्रमवार इतिहास खोजना चाहें; तो हमें निराश होना पड़ेगा। यहाँ इतिहास तो केवल डोर की तरह है, जो कल्पना की पतंग को भावनाओं के आकाश में खुली छूट देने के लिए प्रयुक्त है।[2] कई एक स्थानों पर इसी कारण ऐतिहासिक प्रसंग रूपी डोर भी टूट गये हैं और कल्पना-पतंग उन्मुक्त उड़ान भरने लगी है। इस प्रकार कवि ने ऐतिहासिक सत्य की अपेक्षा (संभवतया कवि-कर्तव्य के कारण) काव्यगत सत्य का ही अधिक पक्ष ग्रहण किया है।[3]

---

1- आधुनिक हिन्दी काव्य में रसविचार, डा०निर्मल जैन, पृ० 102

2- वर्धमान, आमुख पृ० 1-2, प्र०सं० 1951 काशी।

3- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, पृ०265, डा०निशासुदर्शन।

कुछ ऐतिहासिक तथ्यों के अतिरिक्त काव्य का समग्र कथानक कल्पनाश्रित है। कहीं कल्पना अमर्यादित भी हो गयी है। 'वर्द्धमान' एक उपदेशात्मक ग्रंथ प्रतीत होता है, इसलिए उसका कथानक अधिक व्यवस्थापरायण और सुगठित नहीं है। कथा के कुछ उपलक्ष्यमात्र हैं। जैन धर्म के सिद्धान्तों का वर्णन प्रधान है। अंतिम सर्ग में कथा बिल्कुल दर्शनी-सी जान पड़ती है। आरम्भ में भी घटनाओं में तीव्र घात-प्रतिघात अथवा किसी प्रकार का संघर्ष अप्राप्य है। कवि ने अनेक स्थलों पर घटना के अभाव में अवान्तर प्रसंगों की उद्भावना और वर्णन-विस्तार का परिचय दिया है। यह प्रयास कुछ स्थलों पर अप्रासंगिक है। राजा सिद्धार्थ की रतिक्रीड़ा, वर्णन में इसी प्रकार का अनपेक्षित विस्तार है। इसके अतिरिक्त विराग-भाव, स्वप्न-दर्शन, धर्म-चर्चा तथा अलौकिक घटनाओं के प्रसंग में धार्मिक रंग गाढ़ा हो गया है और ये सबका नीरस और शिथिल जान पड़ते हैं।'[1] कथानक में नाट्य-संधियों का निर्वाह भले ही किया गया हो, परन्तु उसमें महाकाव्योचित संघटना और गतिशीलता, मार्मिक घटनाओं की योजना, अंतःप्रेरणा और उचित प्राणवत्ता के कारण स्पृहणीय रोचकता का अभाव है।

कवि का नायक महाकाव्योचित गरिमा एवं उदात्तता का स्पर्श नहीं कर सका। उसका जीवन द्वन्द्वातीत है। उसमें अलौकिकता का अतिरेक है, अतः तादात्म्य भी कठिन है। यदि अनूप शर्मा ने सिद्धार्थ और त्रिशला पर अधिक ध्यान केन्द्रित न कर महावीर के जीवन और चिन्तन-विकास पर अधिक ध्यान दिया होता, राग और विराग के अन्तर्द्वन्द्व को अधिक गहराई से प्रस्तुत किया होता, जैसा कि 'बुद्धचरित' में मिलता है; तो 'वर्द्धमान' अधिक मर्मस्पर्शी होता। महावीर की अतिमानवीयता काव्य के लिए उपयुक्त नहीं हो सकी।'[2]

---

1- आधुनिक हिन्दी काव्य में रूपविधाएँ, डा० निर्मला जैन, पृ० 95

2- अनूप शर्मा, कृतियाँ और कला — डा० प्रेमनारायण टंडन: पृ० 152

महाकाव्य के लिए जिस मनीषी भावुकता की अपेक्षा होती है, उसका यहाँ अभाव है। ऐसे स्थलों का प्रादुर्भाव कवि-कल्पना द्वारा, प्रतिभा द्वारा संभव न हो सका।

'वर्द्धमान' जिस उद्देश्य और दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने के लिए रचा गया है; उसमें वह निःसन्देह सफल काव्य माना जा सकता है। इस काव्य का उद्देश्य है वर्द्धमान के चरित्र का यशोगान करना और उनके द्वारा प्रचलित जैन धर्म के सिद्धान्तों का निरूपण करना। धर्म या नैतिकता की अभिव्यंजना काव्य के लिए शोभनीय तो अवश्य है[1]; परन्तु जब वह काव्य में अन्तर्भूत न हो — किसी घटना-विशेष अथवा परिस्थिति विशेष से विलग हो और स्वतंत्र रूप की अधिकारिणी बन सकती हो, तो वह निःसन्देह शोचनीय है। फिर वह काव्य काव्य न होकर धर्मग्रन्थ बन जाता है। यहाँ कवि ने जैन धर्म का प्रचार करना अपना उद्देश्य माना है।[2] यह काव्य की दृष्टि से उचित नहीं माना जा सकता है।

## 'देवार्चन'

**चरित्रगत औचित्य :-**

कवि ने तुलसीदास के चरित्र को आँकने का प्रयास तो अवश्य किया है, किन्तु उसमें कवि को सफलता नहीं मिल सकी। कहीं कहीं तो कवि ने मनोवैज्ञानिकता का हनन कर तुलसीदास को काम-कुंठित में ग्रस्त दिखलाकर उसे काव्य को अस्वाभाविक बना दिया है। कवि के अनुसार नायक पत्नी-परायणता या लोक-संयम का

1 A poetry of indifference towards moral idea is a poetry of indifference towards life.
Mathew Arnold - Essays in criticism - Page 86

2- वर्द्धमान, पृ0 578-585

उस अवस्था में भी नहीं कर सका, जब उसका इकलौता बेटा शीतला के प्रकोप में फँसा है और वह गुरु की आज्ञा का पालन करता है। परन्तु पुत्र के प्राणान्तसमाचार से शोक-विह्वल हो वह रत्ना के रूप को देखकर कामान्ध हो जाता है। यह प्रसंग नायक के चरित्र को अत्यन्त निम्न बना देता है। औचित्य की दृष्टि से यह प्रसंग निन्द्य है।

देवार्चन में कवित्व की उत्कर्षता भी नहीं दिखलायी पड़ती है। देवार्चन में विस्तार है, किन्तु गहनता नहीं, वर्णनात्मकता है, किन्तु व्यंजनात्मकता नहीं। कथानक तो है, परन्तु उसमें सम्यक् संकलन-निर्वाह नहीं है। यहाँ ग्रामीण संस्कृति और नारी जागरण की झाँकियाँ तो हैं, परन्तु उनमें रमणीयता नहीं है।[1]

## 'रावण'

### चरित्रगत औचित्य :-

इसके कथानक में पर्याप्त मौलिकता है। कैकसी का वर-अन्वेषण, मेघनाद का सुलोचना के विरह में पीड़ित और चन्द्रदूत द्वारा प्रिया का सन्देश भेजना, विभीषण का चारित्रिक उत्कर्षापकर्ष, रावण-पुत्र अरिमर्दन द्वारा लंका में स्वतंत्र राज्य की स्थापना आदि प्रसंग पूर्णतः नवीन एवं मौलिक हैं।

रावण में पात्रों का चरित्र-चित्रण स्वाभाविक रूप में हुआ है। जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में अवतरित होने से उनके चरित्र में जो उत्थान-पतन, उत्कर्ष-अपकर्ष और आन्तरिक द्वन्द्व उभरे हैं, उनसे काव्य को अत्यधिक बल प्राप्त हुआ है। पूर्ववर्ती और परवर्ती रामकाव्यों में रावण को अधम अत्याचारी और व्यभिचारी पात्र

---

1- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, डा० निजामुद्दीन, पृ० 192

के रूप में चित्रित किया गया है, परन्तु प्रस्तुत महाकाव्य में उसे समादृत धीरोदात्त के नायक की भूमिका प्रदान की गयी है, जिसमें रचनाकार को अभिलषित सफलता प्राप्त हुई है। कवि ने रावण के अतिरिक्त अन्य पात्रों को भी विविध परिस्थितियों में विकसित किया है।

'रावण' में भावात्मक स्थलों की महाकाव्योचित अभिव्यंजना नहीं है। सीताहरण के उपरान्त वियोगी राम का मर्मस्पर्शी चित्रण नहीं किया गया। शूर्पणखा के रूपविकृत होने की दशा भी प्रभावोत्पादक नहीं। मन्दोदरी की अनासक्तता को मार्मिक बनाया जा सकता था; परन्तु ऐसा नहीं हो पाया। यहाँ चन्द्रदूत जैसा प्रसंग भी साधारण बनकर रह गया है।

परन्तु 'रावण' में किसी महदुद्देश्य का संपादन नहीं हो सका। रावण का उत्कर्ष और विभीषण का अपकर्ष प्रदर्शित कर कवि ने नवीन दृष्टि का परिचय तो अवश्य दिया है; परन्तु उसमें जीवन की व्यापकता, चारित्रिक महनता, भावात्मक प्रसंगों की मार्मिकता अनुपलब्ध है। भाषा में औदात्य नहीं। भावानुभूति में भी महाकाव्योचित औदात्य नहीं है।[1]

## 'जयभारत'

**प्रबन्धगत औचित्य :-**

'जयभारत' का कथानक सुनियोजित नहीं है और न ही उसमें क्रम-पूर्ण अन्विति और पारस्परिक पार्श्व-बन्धन का निर्वाह है। दुर्वासा, यक्ष आदि के प्रसंग सुसम्बद्ध नहीं हैं। कथानक के इस शैथिल्य का कारण कवि की विविध मनःस्थितियों का परिणाम है। 'जयभारत' न एक समय की रचना है और न उसमें एक विशिष्ट

---

1- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, पृ0 89 डा0 निजामुद्दीन।

मनः स्थिति का चित्रण है। इसकारण उसमें कथा का संघटन नहीं है। सुविन्यस्त कथा-वस्तु का यहाँ अभाव है।[1] महाकाव्य के कथानक के लिए जिस ईप्सित घनत्व, संगुम्फन और संश्लिष्टता की अपेक्षा होती है, उसका यहाँ अभाव है। कथा आगे बढ़ती है; किन्तु उसमें उत्थान-पतन, घात-प्रतिघात, से जो तनाव, जिज्ञासा और कौतूहल सर्वत्र बना रहना चाहिए, वह यहाँ नहीं है।[2]

गुप्त जी ने चरित्र-निरूपण में सांस्कृतिक आदर्शों को प्रमुखता तो अवश्य दी है; परन्तु पात्रों के चारित्रिक वैशिष्ट्य का सुविकास नहीं हो सका है। सांस्कृतिक जागरूकता ने चरित्रों के सम्यक् उद्घाटन में बाधा डाली है। इस दृष्टि से 'जय-भारत' में चरित्र-चित्रण का उत्कृष्ट रूप नहीं मिलता।

'जयभारत' में भावुक स्थलों का विधान अधिक मात्रा में नहीं किया गया। धीवरतनुजा सत्यवती का चित्रण अवश्य प्रभविष्णु है।

जयभारत का अंगीरस वीर रस है, जिसका पर्यवसान शान्त रस में हुआ है। युद्ध वर्णन को कवि ने 'जयभारत' में त्वरित गति से उल्लिखित किया है।[3]

'जयभारत' प्रौढ़ कवि की प्रौढ़ रचना अवश्य है। प्रस्तुत काव्य कवि के साहित्यिक क्रम-विकास और प्रतिनिधि रूप की सुन्दर अभिव्यंजना करता है। इतने बृहदाकार काव्य का प्रवाहमयी शैली में निर्माण करना सहज बुद्धि का प्रयास नहीं है। डा० नगेन्द्र ने लिखा है कि कुंतक ने प्रकरण-वक्रता और प्रबन्ध-वक्रता के जिन रमणीय रूपों का विवेचन किया है, प्रायः उनके सभी रोचक उदाहरण मैथिलीशरण गुप्त के कथाकाव्यों, विशेष में मिल जाते हैं।"[4] पर जयभारत' में यह वक्रता कम है।

---

1- मैथिलीशरण गुप्त, व्यक्ति और काव्य, डा० कमलाकान्त पाठक, पृ० 46
2- आधुनिक हिन्दी काव्य में रूपविधाएँ, डा० निर्मला जैन, पृ० 128
3- जयभारत, पृ० 404
4- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, पृ० 46 (8 अगस्त, 1965)

गुप्त जी की शैली नाटकीयता एवं गीत्यात्मकता के कारण रोचक अवश्य है, किन्तु 'जयभारत' महाकाव्य में यही उसका दुर्बल पक्ष बन गयी है।[1] एकाध स्थान पर संवादों में कुछ रोचकता और नाटकीयता आ गयी है।[2] अलंकारों का संपूर्ण वैभव भी यहाँ अप्राप्य है।

अपने समग्ररूप में 'जयभारत' महाकाव्योचित गुण-गरिमा से विरहित एक वृहदाकार रचना है। उसमें उदात्त काव्य-शिल्प का अभाव है। 'जयभारत' एक उच्च काव्यकृति न होकर 'महाभारत' का पद्यात्मक रूपान्तर है। उसमें कथा-संगठन होने पर भी प्रबन्ध-कौशल का अभाव है।[3]

## 'पार्वती'

### प्रबन्धगत शैली औचित्य :—

तारकासुर की मृत्यु के पश्चात् उसके तीनों पुत्र तारकाक्ष, विद्युन्माली और कमलाक्ष ने कठिन तप कर परम शक्ति अर्जित की। उन्होंने लोहे, चाँदी और सोने के तीन पुरों का निर्माण कराया। इसमें कवि कामायनी से प्रभावित जान पड़ता है।[4] पार्वती में तीनों पुरों के निवासियों का वर्णन है। अयसपुर के निवासी माया और कर्मजाल में भ्रमित होकर दुःखी रहते हैं।[5] रत्नपुर के निवासी अहंकारी होकर बल की पूजा करते हैं।[6] कांचनपुर के निवासी श्रद्धायुक्त होकर धर्म का पालन करते हैं।[7] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कामायनीकार ने तीनों लोकों के निवासियों

1- मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, डा0उमाकान्त, 182
2- जयभारत, पृ0 146-47, 3- [illegible] (वर्ष 1, अंक 1) पृ0 22
4- कामायनी रहस्यसर्ग, पृ0 262
5- वही, पृ0 263-270 6- पार्वती, पृ0 413-433
7 - पार्वती, पृ0 455

में कुछ न कुछ दोष बतला दिए हैं,[1] और अन्त में अद्भुत योग से उन दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया है।[2] किन्तु पार्वतीकार ने त्रिपुर के निवासियों में भी दिव्य गुणों की स्थिति दिखला दी है, जिन्हें हम धर्म, भक्ति या ज्ञान के नाम से जानते हैं। तब फिर त्रिपुर का नाश दिखलाकर क्या धर्म, भक्ति और ज्ञान की अवहेलना नहीं की गयी?

## 'मीरा'

### प्रबन्धगत औचित्य :-

इसके कथानक में महाकाव्योचित कल्पना और गहनता का सम्यक् समावेश नहीं हो सका। कई एक सर्ग नितान्त हल्के और कथा-प्रवाह की तीव्रता से शून्य हैं। चौथे सर्ग में सखियों का हास-परिहास हृदय-हारी नहीं। पाँचवाँ सर्ग अनभिलषित रूप में विस्तृत है। छठें सर्ग में दार्शनिकता का गाम्भीर्य नहीं। सातवें सर्ग में कथाप्रवाह एकदम शिथिल पड़ गया है। कल्पनाएँ भी सजीव नहीं हैं। कपोत का प्रसंग साधारण बनकर रह गया है। अतः मीरा का कथानक दुर्बल और असंघटित है।[3]

मीरा के अतिरिक्त किसी पात्र का चरित्र-चित्रण सुन्दर नहीं। पतिदेव का विलासी रूप तो है, किन्तु उसका परिष्कृत अंकन नहीं किया गया। मीरा के चरित्र में अधिक आरोह-अवरोह हैं।

## 'एकलव्य'

### प्रबन्धगत और चरित्रगत औचित्य :-

एकलव्य 'महाभारत' की अतिसंक्षिप्त प्रासंगिक कथा पर आधारित है। एकलव्य की संक्षिप्त आनुषंगिक कथा को कवि ने नयी उद्भावना, परिवर्तन और

---

1- कामायनी, पृ० 271, 2- पार्वती, पृ० 273

3- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, डा० निजामुद्दीन, पृ० 193

परिशोधन के द्वारा रोचक बना दिया है। परिवर्तन और परिशोधन कवि ने एकलव्य का चारित्रिक उत्कर्ष प्रदर्शित करने के लिए ही किये हैं, जो हमारी परम्परागत निष्ठा को लेशमात्र भी कलुषित नहीं करते। अछूतोद्धार का आन्दोलन इस काव्य का प्रेरणा-स्रोत है।[1]

'एकलव्य' में नायक का चरित्र-निरूपण अधिक विशदता से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है। एकलव्य के जीवन-वृत्त पर आधारित होने के कारण यह एक चरित्र प्रधान प्रबन्धात्मक रचना है। एकलव्य की जिज्ञासा, गुरुभक्ति, एकान्तसाधना, नम्रता, वीरता और मातृभक्ति ने उसके त्यागमय व्यक्तित्व को भव्यता एवं उत्कर्षता प्रदान की है।

'एकलव्य' में द्रोण के चरित्र को भी कुछ नूतन तूलिका से संस्पर्शित किया गया है, परन्तु उसके मूल व्यक्तित्व को 'महाभारत' से असंपृक्त नहीं किया गया है। वह अधिक संकीर्ण हृदय और व्यवहार में कठोर नहीं है, वहाँ उसमें अधिक औदार्य है। यज्ञसेन उसे तिरस्कृत और अनादृत करता है। द्रोण आर्थिक अभावों से त्रस्त होकर भीष्म के यहाँ आश्रय लेता है। यहाँ वह अर्जुन को अद्वितीय धनुर्धर बनाने की प्रतिज्ञा कर बैठता है। यही प्रतिज्ञा 'एकलव्य' में गुरु दक्षिणा माँगने की सार्थकता स्वतः सिद्ध कर देती है।

प्रस्तुत प्रबंध में मार्मिक प्रसंगों की अवतारणा भी सराहनीय है। ममता, स्वप्न और दक्षिणा सर्ग इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। 'ममता' सर्ग में ममत्व की छाया पुलकित करने वाली है।

---

1- हिन्दी साहित्य का विकास दर्शन, डॉ० शिवनाथ, पृ० 119

## तारकवध'

**प्रबन्धगत औचित्य :—**

कवि ने इस महाकाव्य को एक प्रयोग माना है।[1] यह एक प्रतीकात्मक रचना मानी गयी है।[2] इसमें पार्वती का आख्यान है। फिर भी तारकवध और पार्वती काव्य के आख्यानों में कुछ अन्तर है। पार्वती के समान 'तारकवध' का कार्तिकेय भयंकर युद्ध नहीं करता। जो जितने देव प्रिय हैं, उतने ही दानव।[3] वह एक साथ रूद्र, शंकर, अमर-उद्धारक और तारक-मारक है। यहाँ तारकासुर की आसुरी वृत्तियों और पाशविक मनोवृत्तियों का विवेचन हुआ है। प्रकारान्तर से मानवता ने दानवता पर परम विजय प्राप्त की है। यही इसका नवीन एवं मौलिक रूप है।

तारकवध का काव्य-शिल्प भी दुर्बल है। कवि का उद्देश्य इसे लोकप्रिय महाकाव्य बनाना था; परन्तु भाषा की अपेक्षित सुकुमारता, स्वाभाविक अलंकृत शैली, कोमलता, मार्दवता, मांसलता और प्राणवत्ता के अभाव में यह एक अनुत्कृष्ट एवं असफल रचना है। यह पलाम प्रतीकों की दुरूहता और जटिलता से भी आक्रान्त है। नये प्रयोग और रहस्यगर्भित प्रतीक के मोह ने इसमें कृत्रिमता और जड़ता भर दी है। नवोन्मेषशालिनी कल्पना द्वारा जैसे आकर्षक चित्र-विचित्र वस्तुओं के समक्ष उतारे जा सकते हों, वे यहाँ दुर्लभ हैं। कहीं-कहीं नवीनता का दुराग्रह है,[4] लेकिन उसमें प्राणवत्ता और सजीवता नहीं। मुहावरों का भी प्रयोग है। संस्कृत शब्दों को भी यत्र तत्र प्रयुक्त किया गया है। पत्नी के स्थान पर 'पत्नीनी', वत्सी के स्थान पर वात्सिनी जैसे अस्वाभाविक प्रयोग भी किये हैं।[5]

---

1- तारकवध, पृ०2। (लेखक के दो शब्द, (प्रथम संस्करण)

2- वही, प्राक्कथन, पृ० 1-2

3- वही, पृ० 170-283 4- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य, डा० निजामुद्दीन, 139

## 'बाणाम्बरी'

**प्रबन्धगत औचित्य :-**

'बाणाम्बरी' का कथानक बाण के उदात्त एवं गरिमाशील जीवन पर आधारित है, अतः सहज ही महाकाव्योचित गरिमा अभिव्यक्त है। काव्य का नायक बाण ही है। बाण की की गुण-गरिमा, पाण्डित्य, साहस और शौर्य पर दृष्टिपात करने पर उसका नायकत्व सर्वकालीन प्रतीत होता है। प्रस्तुत महाकाव्य में काव्य के आन्तरिक और बाह्य — दोनों ही पक्षों की उत्कृष्टता है। भावुक स्थलों की अवतारणा महाकाव्योचित है।

यह महाकाव्य वस्तुतः अपूर्व है और शब्दशिल्प का निर्मल दर्पण है। बाणाम्बरी में अलंकारों की छटा ऐसी आकर्षक है, जैसे निर्झर के पीछे दीपकों की आभा झिलमिलाती आकर्षक लगती है। पौराणिक वृत्त अनेक प्रथम बार पुष्कल मात्रा में उपमान के रूप में यहाँ सुतरां कुशलता से प्रयुक्त हैं। यहाँ शाब्दिक चमत्कार नहीं, अवदात काव्यत्व है।[2] गीतयोजना में भी आकर्षण और सजीवता है। यहाँ द्रुत छन्द का प्रयोग अत्यधिक है। इस महाकाव्य में प्रथम बार पत्रात्मक शैली का नया प्रयोग भी अभिनन्दनीय है।

'बाणाम्बरी' का उद्देश्य महत् और उन्नत है। यहाँ भारतवर्ष का अतीतकालीन राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चित्र प्रस्तुत किया गया है।[3] भारत का

---

1- बाणाम्बरी, पृ0163,

2- मांसली, अपाय मिल्ले उर्मिला की रात,
कमल कम्पित जल में नित विकल दिव्य घात। मधुनिपात। (बाणाम्बरी, पृ0104)

3- वैदिक ब्राह्मण बौद्ध जैन संस्कृति रस प्लावित धरणी।
किरण काव्यमय कमलपत्र-शोभित सुनील पुष्करिणी।
व्याप्त विविधता किन्तु एकता की केन्द्रित अभिलाषा।
दिव्य ज्ञान से पूर्ण महासागर सी भारत-भाषा। (बाणाम्बरी, पृ0 306)

अति प्राचीन मनुष्य-सभ्यता-अन्तर्गत ऋग्वेद।
वर्णित जिसमें प्रकृति और जीवन रहस्य का भेद। (वही, पृ0 308)

भौगोलिक चित्र राष्ट्रीय भावना को उदित करता है। तत्कालीन ऐतिहासिक परिस्थितियों की झाँकी भी मिल जाती है। कवि अरुण ने बाण के चरित्र का सम्यक् उद्घाटन कर सांस्कृतिक भावनाओं को बल प्रदान किया है। अपने शब्दरूप में 'बाणाम्बरी' ईषद् अभावों के होने पर भी सुष्ठु महाकाव्य है। महाकाव्योचित रसात्मक-रूपात्मक अभिव्यंजनाओं की रचना करने में कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

## 'लोकायतन'

### प्रबन्धगत औचित्य :-

छायावाद के एक उन्नत रजत-शिखर को हमने बालातप की परिवर्तन-शील नाना रंगानुभूतियों से अनुरंजित होते देखा है। वह रजत-शिखर कविवर पंत हैं। पंत के काव्य में कहीं उषा-कालीन सुकुमारता और भावोर्मियों की चंचलता है, कहीं प्रचण्ड किरणों की उष्णता है, कहीं प्रगति-चक्रवाल का नैरन्तर्य है और कहीं सांध्य गगन की नाना रूपवती छवि, विश्वकल्याण और समागम के संधि स्थल के रूप में विभिन्न विचारधाराओं का सामंजस्य प्राप्त होता है। विभिन्न विचारधाराओं और सांस्कृतिक दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करने का अनुष्ठान 'लोकायतन' में परिसम्पन्न हुआ है। 'आज हम वाल्मीकि तथा व्यास की तरह एक ऐसे युग शिखर पर खड़े हैं, जिसके निचले स्तरों में धरती के उद्वेलित मन का गर्जन टकरा रहा है और ऊपर स्वर्ग का प्रकाश, अमरों का संगीत तथा भावी का सौन्दर्य बरस रहा है। ऐसे संघर्ष-युग में सांस्कृतिक संतुलन स्थापित करने के प्रयत्न को मैं जाग्रत चेतन मानव का कर्तव्य समझता हूँ।'[1] यहाँ लोकायतन में कवि की यही चिराकांक्षा पूर्ण हुई है।[2]

---

1- साहित्य संदेश, आधुनिक काव्यांक, 1954, पृ0 346

2. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य - पृष्ठ २०८

लोकायतन में स्वाधीनता के पूर्व से लेकर उत्तर स्वप्न तक का विशाल भारतीय जीवन अन्तर्भुक्त है। पन्त जी युग-जीवन के यथार्थ के प्रति जागरूक हैं। युग के भौतिक और आध्यात्मिक द्वन्द्वों को ही कवि ने परखा है। इस दृष्टि से यह पहला महाकाव्य है, जिसमें अपने युग की समग्रता समाहित है। इसका प्रतिपाद्य गांधीयुग का भौतिक आध्यात्मिक विकास माना जायेगा। प्रमुख रूप से राष्ट्रीय संघर्ष का संयोजन और वैज्ञानिक परिवेश में आध्यात्मिक मूल्यों को भौतिक मूल्यों के स्थान पर सन्निवेशित किया गया है। अतः इसका महत्त्व दो दृष्टियों से अधिक है। एक तो वर्तमान जीवन का अपने युग की विभिन्न पार्श्वभूमि-संचलित घटनाओं और परिस्थितियों का चित्रण वैज्ञानिकता, भौतिकता और आध्यात्मिकता की पृष्ठभूमि में किया गया है, दूसरे सामयिक युगगाथा का, कल्पना के विविध-रंगीन तंतुओं द्वारा कथानक का एक मौलिक पैटर्न तैयार किया गया है। महाकाव्य में युगगाथा का कल्पनाजनित उत्तुंग भवन विनिर्मित कर, गतानुगतिकता से विमुक्त नये प्रयोग का उद्घाटन करना है। अतः लोकायतन का नामकरण औचित्यपूर्ण है।

## 'झाँसी की रानी'

### प्रबन्धगत एवं चरित्रगत औचित्य :-

आलोच्य कृति में झाँसी की रानी 'लक्ष्मीबाई का सर्वांग जीवन-चरित्र ऐतिहासिक पृष्ठभूमि सहित चित्रित किया गया है। इसमें तेईस खण्ड हैं, जिन्हें 'हुंकार' से अभिहित किया गया है। लेकिन अंतिम सर्ग को 'महाप्रयाण' का अभिधान दिया गया है। जो घटना-विशेष की दृष्टि से न्यायोचित ही है। कथानक अधिकांशतः रानी की जीवन गाथा से सम्बद्ध है, अतः इसमें जीवन की अनेकरूपता और विविध परिस्थितियों की अभिव्यक्ति महाकाव्योचित नहीं है।[1] इतना अवश्य है कि कथानक की घटनाओं में जो महानता और गम्भीरता महाकाव्य के लिए वांछनीय होती है, उसका यहाँ अभाव है।

काव्य में लक्ष्मीबाई का चित्रण एक भारतीय वीरांगना के रूप में किया गया है, जो अवश्य ही श्लाघ्य है। रानी के प्रभविष्णु चरित्र के अतिरिक्त काव्य में अन्य किसी पात्र के चरित्र को व्यक्त करने का अवकाश कवि को नहीं मिल सका। अतः इस दृष्टि से यह एक चरित्र-काव्य प्रतीत होता है, महाकाव्य जैसा औदात्य और वैविध्य यहाँ चरित्रों में अनुपलब्ध है।

## 'महाभारती'

### प्रबन्धगत औचित्य :-

काव्य के नामकरण के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है कि यद्यपि इस प्रबन्ध पद्म में मनीषिणी वाणी का स्वरूप-अवतरण भी हो गया है, परन्तु विशाल भारत की सम्पूर्णता को ही महाभारती समझना अधिक साहित्यसंगत होगा। प्रस्तुत काव्य के नायक विश्वामित्र हैं। कवि ने महाभारती में विशाल भारत की वैदिक एवं पौराणिक संस्कृति का समावेश करने के उद्देश्य से अनेक प्रमुख कथानकों का संयोजन किया है, जिनका परस्पर सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सका। यथा — शारदा कथा, शंकर पार्वती और पुरूरवा-उर्वशी कथा। अतएव कथानक विशृंखलित हो गया है। तथापि यह काव्य हमें नवीन दृष्टि प्रदान करता है।

प्रस्तुत काव्य में कवि के मौलिक विचारों के दर्शन होते हैं। किन्तु कुछ स्थलों में इतिहास-विरुद्ध तथ्यों को अन्यथा प्रसंगों के साथ जोड़ा गया है, जो अनुचित है। यथा — शकुन्तला के प्रत्याख्यान में वशिष्ठ की उपस्थिति एवं द्वेषभावना को कारण मानना अनैतिहासिक तथा अपौराणिक तथ्य है। इस प्रकार के प्रसंगों की उद्भावना पाठकों को विभ्रमित कर देती है।[1]

---

1- छायावादोत्तर हिन्दी प्रबन्धकाव्यों का सांस्कृतिक अनुशीलन, डा० विश्वम्भरदयाल अवस्थी, पृ० 86

'[illegible]'

'भगवानराम'

प्रबन्धगत औचित्य :-

कवि ने लिखा है कि रामचरित मानस पर अवलम्बित कुछ हृदय स्पर्शी दृश्य जो लोक प्रचलित है, इस काव्य में नहीं पाये जा सकते हैं। जैसे — रावण-अंगद संवाद तथा संजीवनी लाते हुए हनुमान का भरत से अयोध्या में मिलाप। लक्ष्मण शक्ति का लोक प्रचलित रूप भी इसमें नहीं आ सका। रावण-वध के पश्चात् राम के औदासीन्य से क्षुब्ध होकर सीता का सतीत्व-तेज-प्रदर्शन तो बुद्धिसंगत है, किन्तु लक्ष्मण द्वारा चिता-निर्माण अनावश्यक प्रतीत होता है।

कवि ने लिखा है कि भगवती सीता चिता में नहीं प्रविष्ट हुईं, अपितु वे योगाग्नि द्वारा शुद्ध हुईं। किन्तु मेरे मत से वाल्मीकि रामायण में नारद ने वाल्मीकि से संक्षेप में जिस रामायण का उल्लेख किया है, उसके अनुसार श्रीराम के परुष वचनों को सुनकर सीता ने अग्नि में प्रवेश किया, न कि प्रस्तुत कवि के अनुसार वे योगाग्नि में जलीं। योगाग्नि तो अपने आप प्रकट हो जाती है, उसमें प्रवेश करने की बात कैसे सार्थक होगी?

'जानकीजीवन'

कथागत औचित्य :-

जानकीजीवन की कथावस्तु और वाल्मीकि रामायण की कथावस्तु की तुलना करने पर दोनों में निम्नांकित अन्तर ज्ञात होते हैं —

(1) प्रस्तुत काव्य में लवकुश का लक्ष्मणादिक से युद्ध करना दिखाया गया है जबकि वाल्मीकि रामायण में युद्ध करना नहीं दिखाया गया, अपितु वाल्मीकि की आज्ञा से

लवकुश श्रीराम के यहाँ जाकर रामायण का गान करते हैं।

(2) वाल्मीकि रामायण के अनुसार भगवती सीता शुद्धि की परीक्षा देती हुई पृथ्वी में अन्तर्भूत हो गयीं, जबकि प्रस्तुत काव्य में वे भगवान राम के साथ यज्ञ में सम्मिलित हुईं। इस परिवर्तन द्वारा कवि ने काव्य को सुखान्त बना दिया है, जो भारतीय प्रवृत्ति के अनुकूल है।

प्रस्तुत काव्य में कवि की मौलिकता के दर्शन होते हैं। जिस समय सीता निर्वासित हुई थीं, उस समय कौशल्यादि माताएँ अयोध्या में नहीं थीं। वे वशिष्ठ जी के साथ श्रृंगी ऋषि के यज्ञ में, सम्मिलित होने के लिए उनके आश्रम चली गयीं थीं। यज्ञ-समाप्ति पर जब रानियाँ लौटकर अयोध्या आयीं, तब उन्हें बहुत विषाद हुआ। उन्होंने श्रीराम के इस कार्य की भर्त्सना की। कवि ने कोमल हृदया माताओं को सीता-निर्वासन के प्रसंग से पृथक् रखकर मानवीयता की रक्षा की है और माताओं के चरित्र को ऊपर उठाया है।

## 'अरुणरामायण'

### प्रबन्धगत एवं चरित्रगत औचित्य :-

वाल्मीकि रामायण के परशुराम बारात के जनकपुर से विदा होने पर मार्ग में श्रीराम आकर से मिलते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने प्रसन्नराघव नाटक का आधार लेकर परशुराम को धनुष टूटने पर जनकपुर में उपस्थित कर दिया है, इससे एक ओर श्रीराम के गौरव की वृद्धि हुई है और दूसरी ओर राजाओं के असन्तोष का भी शमन हुआ है। किन्तु अरुण रामायण में परशुराम-उपस्थिति धनुष-भंग के पहले ही दिखायी गयी है और उन्हें भी धनुष-भंग के निर्णय से सहमत दिखाया गया है।[1] इससे जहाँ एक ओर उनकी गुरुभक्ति की अल्पता का द्योतन होता है, वहीं

1- अरुणरामायण, पृ055 बालकाण्ड

दूसरी ओर उनको भी इस गुर्वपराध में सम्मिलित कर अनुचित किया गया है। इसी तरह कवि ने मंथरा के कुबड़ी होने में श्रीराम के चापल्य को कारण माना है,[1] जो किसी भी दृष्टि से बुद्धिगम्य नहीं है।

श्री रामाविक की बालक्रीड़ाओं का वर्णन करते समय कवि ने श्रीराम की मर्यादापुरुषोत्तमता का ध्यान नहीं रखा। कवि ने लिखा है कि एक दिन खेलखेल में श्रीराम ने दशरथ का मुकुट उतार लिया। बालक्रीड़ा में भी श्रीराम द्वारा ऐसा करना सम्भव नहीं था। कवि के इस विचार से सहमत होना हमारे लिए सम्भव नहीं है।

राम को कैकेयी द्वारा वन जाने का आदेश मिलता है। राम तो सहर्ष तैयार हो जाते हैं, किन्तु लक्ष्मण उत्तेजित हो उठते हैं और कैकेयी को अकथ्य बातें कह डालते हैं। यह अनुचित है —

कौशल्या विस्मित मौन किन्तु लक्ष्मण क्रोधित
उनके मन में उच्चरित क्रूर कैकेयी धिक्।
तू माता नहीं, प्रेतिनी है— तू डाकिन है
नारी स्वरूप में तू जहरीली सी नागिन है।
× × ×
कैकेयी तेरा हृदय पाप से बजबज है
तेरी कुबुद्धि के रेंग रहे कलुषित कीड़े
निकलेंगे पिल्लू ही यदि कोई उर चीरे।
जी करता है अपना तीर चला दूँ मैं —
आज ही तुझे सुरधाम स्वयं पहुँचा दूँ मैं।(अरुणरामायण, पृ0 175)

---

1- अरुणरामायण, पृ0 118

# नवम अध्याय

## शब्द-शक्ति

### शब्द-शक्ति की परिभाषा और भेद :—

जिस शक्ति या व्यापार के माध्यम से शब्द के अर्थ का बोध होता है, उसे शब्द-शक्ति कहते हैं। यह तीन प्रकार की होती है —(1) अभिधा (2) लक्षणा (3) व्यंजना। इन शब्द-शक्तियों से क्रमशः वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ का बोध होता है।[1]

### अभिधा :—

शब्द की जिस शक्ति के द्वारा शब्द का साधारणतया प्रचलित मुख्य या संकेतित अर्थ समझा जाता है, उसे अभिधा शब्द-शक्ति कहते हैं।[2] जो शब्द साक्षात् संकेत से अपने अर्थ को इंगित करता है, वह वाचक कहलाता है।[3]

### लक्षणा —

जहाँ मुख्यार्थ के बाधित होने पर उससे सम्बन्धित अन्य अर्थ प्राप्त होता है, जो रूढ़ि या प्रयोजन की विवक्षा के अनुसार होता है, उसे लक्षणा शब्दशक्ति कहते हैं।[4] लक्षणा शब्द-शक्ति द्वारा तीन व्यापार होते हैं —

---

1- अर्थो वाच्यश्च लक्ष्यश्च व्यङ्ग्यश्चेति त्रिधा मतः
 वाच्योऽर्थोऽभिधया बोध्यो लक्ष्यो लक्षणया मतः ॥
 व्यङ्ग्यो व्यञ्जनया ताः स्युस्तिस्रः शब्दस्य शक्तयः ।(सा०द०2/2,3)

2- तत्र संकेतितार्थस्य बोधनादग्रिमाभिधा।(साहित्य० 2/12)

3- साक्षात्संकेतितं योऽर्थमभिधत्ते स वाचकः ।(काव्यप्रकाश 2/2)

4- मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो ययान्योऽर्थः प्रतीयते।
 रूढेः प्रयोजनाद्वासौ लक्षणाशक्तिरर्पिता।'(साहित्यदर्पण 2/5)

(1) मुख्यार्थ का बाधित होना।

(2) मुख्यार्थ से सम्बन्धित दूसरा अर्थ प्राप्त होना।

(3) इस प्राप्त अर्थ का रूढ़ि या प्रयोजन के आधार पर गृहीत होना।

लक्षणा के दो भेद होते हैं —

(1) रूढ़ि या रूढ़ा लक्षणा (2) प्रयोजनवती लक्षणा।

(1) रूढ़ि या रूढ़ा लक्षणा :—

जहाँ किसी शब्द के नियत या संकेतित अर्थ से भिन्न अर्थ (लक्ष्यार्थ) बहुत दिनों की रूढ़ि या परम्परा से नियत हो जाता है, वहाँ रूढ़ा लक्षणा होती है।

(2) प्रयोजनवती लक्षणा :—

मुख्यार्थ के बाधित होने पर जब किसी विशेष प्रयोजन या विशिष्ट लक्ष्य के लिए लक्षणा का प्रयोग करना पड़ता है, तब उसे प्रयोजनवती लक्षणा कहते हैं। प्रयोजनवती लक्षणा के दो भेद होते हैं —

(क) गौणी प्रयोजनवती लक्षणा

(ख) शुद्धा प्रयोजनवती लक्षणा

(क) गौणी प्रयोजनवती लक्षणा :— जहाँ मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ में सादृश्य का सम्बन्ध होता है, वहाँ गौणी प्रयोजनवती लक्षणा होती है।

(ख) शुद्धा प्रयोजनवती लक्षणा :— जहाँ मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ में सादृश्य के अतिरिक्त अन्य कोई सम्बन्ध, आधार और आधेय अथवा अंग और अंगी का होता है, वहाँ वह लक्षणा होती है।

व्यंजना :— शब्द शक्तियों में व्यंजना श्रेष्ठ मानी जाती है। आचार्य विश्वनाथ ने व्यंजना शब्दशक्ति की परिभाषा देते हुए कहा है कि अभिधा तथा लक्षणा के कार्य करके विरत हो जाने पर अन्य अर्थ का बोध कराने वाली वृत्ति को व्यंजना कहते हैं —

विरतास्वभिधाद्यासु ययार्थो बोध्यते परः।

सा वृत्तिर्व्यंजना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च।(साहित्य०2/12-13)

अभिधेयार्थ और लक्ष्यार्थ से भी विलक्षण तृतीय अर्थ व्यंग्यार्थ का बोध प्रकरण-भेद से होता है। इसीलिए वक्तृबोद्धव्य-वैशिष्ट्य, व्यंग्यार्थ-प्रतीति का प्रमुख साधन है। व्यंजना के दो भेद होते हैं —(1) शाब्दी व्यंजना (2) आर्थी व्यंजना।

शाब्दी व्यंजना :— इसकी परिभाषा देते हुए साहित्यदर्पणकार ने लिखा है —

अनेकार्थस्य शब्दस्य वाचकत्वे नियन्त्रिते।

एकार्थेन्यधीहेतुर्व्यंजना साभिधाश्रया॥(सा०द०पृ० 75)

अर्थात् अनेकार्थवाची शब्द के अर्थ-विशेष में नियंत्रित होते हुए भी जब उससे अप्राकरणिक अर्थ की प्रतीति हो जाती है, तब उस अर्थ-प्रतीति को शाब्दी व्यंजना कहते हैं। यह दो प्रकार की होती है —

(1) अभिधामूला शाब्दी व्यंजना (2) लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना।

(1) अभिधामूला शाब्दी व्यंजना — आचार्य मम्मट ने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है —

अनेकार्थस्य शब्दस्य वाचकत्वे नियन्त्रिते।

संयोगाद्यैरवाच्यार्थधीकृद् व्यापृतिरंजनम्।(काव्यप्रकाश, पृ०2/19)

अर्थात् जब अनेकार्थक शब्दों के किसी एक अर्थ का आधान क्रमशः संयोग, वियोग, विरोध, अर्थ, प्रकरण, लिंग, अन्य-सन्निधि, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, व्यक्ति, स्वर आदि के अनुसार किया जाता है, तब उस अर्थ विशेष का आधान करने वाली शक्ति को अभिधामूला शाब्दी व्यंजना कहते हैं। जैसे —

चिरजीवो जोरी जुरै क्यों न सनेह गंभीर

को घटि ये वृषभानुजा वे हलधर के बीर।

यहाँ पर 'वृषभानुजा' और 'हलधर' में अभिधामूला शाब्दी व्यंजना है। क्योंकि इनका व्यंग्यार्थ है कि ये वृषभ अर्थात् बैल की बहन हैं और वे हलधर अर्थात् बैल के भाई हैं।

जोड़ी बड़ी उपयुक्त है।

(2) लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना :—

जहाँ व्यंग्यार्थ की प्रतीति लक्ष्यार्थ के कारण होती है, वहाँ लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना मानी जाती है। जैसे 'गंगायां घोषः' गंगा में घोषों की बस्ती, इस प्रसिद्ध उदाहरण में 'गंगा तट' के लक्ष्यार्थ की प्रतीति, शैत्य और पावनत्व के कारण होती है। उनका बोध जिस शक्ति से होता है, उसे लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना कहते हैं।

आर्थी व्यंजना :— व्यंजना का दूसरा प्रसिद्ध भेद आर्थी व्यंजना है। कुछ आचार्य तो आर्थी व्यंजना वाला भेद स्वीकार नहीं कर व्यंजना को सदैव आर्थी ही मानते हैं। किन्तु यह मत बहुत मान्य नहीं समझा जाता। आजकल जो मत प्रतिष्ठित है, उसके अनुसार व्यंजकत्व शब्द और अर्थ दोनों में होता है। शाब्दी और आर्थी का अन्तर केवल प्राधान्य को दृष्टि में रखकर किया जाता है। शाब्दी में व्यंजकता अर्थ की अपेक्षा शब्द में अधिक रहती है और आर्थी में अर्थगत अधिक होती है। यह वक्तृ-वैशिष्ट्य, बोद्धव्य-वैशिष्ट्य, काकु, वाच्यवाच्य, अन्य सन्निधि, प्रस्ताव देश, काल, अन्यविध आदि भेद से दस प्रकार की होती है। चूंकि व्यंजकता सभी अर्थों में होती है। इस आधार पर आर्थीव्यंजना के तीन प्रमुख भेद किये गये हैं —

(1) वाच्य सम्भवा (2) लक्ष्य सम्भवा (3) व्यंग्य सम्भवा।

(1) वाच्य सम्भवा आर्थी व्यंजना :—

जब वाच्यार्थ से किसी अन्य अर्थ की सन्निधि होती है, तब वहाँ वाच्य सम्भवा आर्थी व्यंजना होती है। इसमें वाच्यार्थ से उत्पन्न होने वाले ऐसे व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है, जिससे वक्ता का सही भाव प्रकट हो जाये, जैसे — संध्या हो गयी' इस वाक्य का मुख्यार्थ हुआ कि दिन की अंतिम बेला आ गयी।

इस वाक्य का यह तात्पर्य हुआ कि अंधेरा होने लगा। किन्तु वक्ता-भेद से इन दो अर्थों के अतिरिक्त इस वाक्य के अनेक अर्थ हो सकते हैं।

लक्ष्य सम्भवा आर्थी व्यंजना :—

जब लक्ष्यार्थ में व्यंजना की प्रतीति होती है, तब उसे लक्ष्य सम्भवा आर्थी व्यंजना कहते हैं। जैसे — किसी मूर्ख से कोई कहे — 'आप तो बड़े समझदार हैं' यहाँ 'समझदार' शब्द से मूर्ख भाव की व्यंजना लक्ष्यार्थ -सम्भवा हुई।

व्यंग्यार्थ सम्भवा आर्थी व्यंजना :—

जहाँ एक व्यंग्यार्थ के बोध के लिए दूसरे व्यंग्यार्थ का आश्रय लिया जाता है, वहाँ यह व्यंजना होती है। जैसे — 'दोपहरिया खिल उठी।' यहाँ पर दोपहरिया फूल के खिलने से दोपहर में काम करने का संकेत है।

व्यंग्यार्थ के तीन प्रकार :— व्यंग्यार्थ तीन प्रकार का बतलाया गया है — वस्तुरूप, अलंकाररूप और रस रूप।

वस्तु व्यंजना :— जहाँ वस्तु मात्र की व्यंजना प्रधान होती है, वहाँ वस्तु व्यंजना की स्थिति मानी जाती है। जैसे — 'उषा सुनहले तीर बरसाती, जय लक्ष्मी सी उदित हुई।' यहाँ एक साथ उषा के उदय और कालरात्रि के अवसान दो वस्तुओं की व्यंजना है। दूसरी ओर आशा सर्ग की पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृतिचित्रण की भूमिका व्यंजित की गयी है।

अलंकार व्यंजना :— जिस व्यंजना में अलंकार की प्रधानता होती है, उसे अलंकार व्यंजना कहा जाता है। जैसे —

उठे स्वच्छ मनु ज्यों उठता है, क्षितिज बीच अरुणोदय कान्त।
लगे देखने लुब्ध नयन से, प्रकृति विभूति मनोहर शान्त।।

यहाँ पर उत्प्रेक्षा — वाच्य है। वही उत्प्रेक्षा लुब्ध नायक के आरोप की व्यंजना भी

प्रकट करती है। इसीलिए यहाँ अलंकार व्यंजना मानी गयी है।

रस व्यंजना :— जहाँ पर कोई रस या भाव होता है, वहाँ रस व्यंजना मानी जाती है। जैसे —

कहत नटत रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैनन ही सों बात।।

यहाँ पर संयोग श्रृंगार व्यंग्य है।

## आलोच्य महाकाव्यों में शब्द-शक्तियाँ

### 'जननायक'

जननायक में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना : इन तीनों शब्द-शक्तियों के दर्शन होते होते हैं।

अभिधा :— काव्य के अधिकांश स्थलों में अभिधा शब्दशक्ति का आधार ग्रहण किया गया है —

हिन्दुस्तान हमारा घर है भारतवासी दास नहीं हैं।
राजा वह है जो हृदयों पर राज करे जनता का होकर।
राजा रहे प्रजा के आश्रित, सूरज ज्यों धरती अम्बर पर।।

लक्षणा :— निम्नांकित प्रसंगों में लक्षणा शब्द-शक्ति का आधार ग्रहण किया गया है।

पराधीन भारत की जनता की दीन दशा का चित्रण करते हुए कवि कहता है —

यात्रा कठिन नाव जर्जर है फन फैलाती बाढ़ आई।
धरती अम्बर में कम्पन है, चारों ओर घटाएँ छाई।
ऊपर मेघाच्छादित अम्बर सागर रूद्र रूप धारे है।
घोर अँधेरा पार न मिलता, जन जनता हिम्मत हारे हैं।

कवि ने ब्रिटिश वायसराय को बिल्ली तथा भारतीयों को चूहा कहा है —

भारत के कुछ नेताओं से वायसराय मिले दिल्ली में।

चूहों को घर पकड़ बचाऊँ चाह यही थी उस बिल्ली में। (जन0320)

इसी प्रकार अंग्रेजों को विषधर सर्प कहा गया है —

ऊपर से गोरे अन्दर से काले बड़े कम्पनी वाले।

हमने दूध पिलाकर जब तक अपने घर में विषधर पाले। (पृ0320)

यहाँ के विश्वासघाती लोगों को जयचन्द और विभीषण की उपाधि दी गयी है —

भारत में जयचन्द बहुत थे भारत में 'थे बहुत विभीषण'

जहाँ विषैली फूट वहाँ पर प्रतिफल जाते हैं सुन्दर क्षण। (वही, 327)

व्यंजना :— इसी तरह कहीं-कहीं व्यंग्य का सहारा लिया गया है, जिससे भाषा में रसात्मकता आ गयी है।

कृपलानी ने कहा दूर से — रंग बहुत अच्छे भर लाये।

यह पतंग का कागज जिसको काट काटकर दीप बनाये। (वही, 414)

अच्छाई सरकार बन गई पहले आगे लीग न आई

झाँक झाँक कर खिड़की से पीहर को चल पड़ी लुगाई।

पीछे-पीछे 'नेहरू' दौड़े जा पे ओ मनाकर घर में।

ज्यादा समझदार लोगों के क्या झगड़ा भी होता घर में। (वही, पृ0 434)

## 'वद्र्धमान'

वद्र्धमान महाकाव्य में अभिधा और लक्षणा शब्दशक्ति का प्रयोग किया गया है —

अभिधा :— समस्त काव्य में प्रसाद-गुण सम्पन्न अभिधा शक्ति का प्रयोग किया गया है। कवि ने जीवन की व्याख्या बहुत ही सुन्दर ढंग से की है —

वस्तुतः जीवन सिन्धु-सम है

मनुष्य जैसे अपनी तरी यहाँ

समीप निमूलक पंथ ज्ञान है,

सुदूर है भाग्य-तीर-वीचियाँ। (वद्र्धमान, पृ0 307-08)

<u>लक्षणा :—</u>

रात और दिन का कार्यव्यापार शतरंज का खेल है, जिसमें सभी प्राणी पैदल सिपाही और राजा की भाँति व्यवहार करते हैं और खेल के अन्त में फिर एकत्र हो जाते हैं —

अहर्निशा की शतरंज है खिली
नरेश - प्यादे सब खेल-वस्तु हैं,
गये चलाये कुछ देर के लिए
हुए इकट्ठे फिर एक ठौर में। (वही, पृ0 305-83)

सूर्य बाजीगर की तरह अपनी किरणों को फैलाकर पृथ्वी और आकाश को प्रकाशमय बना देता है —

दिनेश बाजीगर तुल्य भूमि पै
स्व-रश्मियों की लकड़ी घुमा रहा
अरण्य-कान्तार अर्थात् व्योम भी
समस्त एकीकृत हो गये तभी।

<u>व्यंजना :—</u> वर्द्धमान को गृहस्थी के प्रपंचों में उसी प्रकार बाँधने का ~~प्रयत्न~~ प्रयत्न किया गया था, जिस प्रकार हाथी को जंजीर से बाँधा जाता है। किन्तु जब जंजीर ढीली हो जाती है, तब हाथी जंगल की ओर भाग जाता है, उसी प्रकार वर्द्धमान भी घर छोड़कर विरक्त हो जायेंगे, यहाँ इस तथ्य की व्यंजना की गयी है —

अब महान् प्रमत्त गजेन्द्र था
दृढ़ आलान हुआ श्लथ देखिए,
चल न दे यह कानन को कहीं
रह गया अवरोध न अंत में। (वही, पृ0 400-103)

## 'रावण'

<u>व्यंजना</u> — इस काव्य में रावण के चरित्र को ऊँचा उठाया गया है। कवि कहता है कि यदि शूर्पणखा का विरूपीकरण यदि रावण को शत्रु से प्रतिशोध लेने के लिए उद्विग्न और उत्तेजित नहीं करता, रावण शत्रु की स्त्री का अपहरण कर उसे अपमानित न करता, तो हम उसके बल शौर्य और विक्रम पर प्रश्न-चिन्ह लगा बैठते। जनकनन्दिनी के अपहरण में यही नीति व्यक्त है। रावण सीता को राजबन्दिनी बनाकर रखता है और उसके कुलत्व को दृष्टि में रखते हुए उसकी उचित व्यवस्था करता है। फिर रावण ने सहसा सीता-हरण भी नहीं किया। हरण कार्य से पूर्व वह बड़ी उधेड़बुन में पड़ जाता है। उसके ऊहापोह की कवि ने अच्छी व्यंजना की है —

> होयगो अपमान निंदा करै सकल समाज
>
> छत्रियन में बैठि हैं तो अवसि ऐहै लाज
>
> जाति-जन-अपमान सों हियहोत व शोक अघोर
>
> रहत नाहे युद्ध को कछु और न कछु ओर छोर। (रावण, पृ0 127)

विभीषण के चरित्र को कवि ने देशद्रोही और भ्रातृद्रोही के रूप में कलुषित और कलंकित किया है। शत्रु पक्ष की ओर से उसे युद्ध करता हुआ देख मेघनाद भी उसकी भर्त्सना करता है —

> हाय तात यह काम तुम्हारा
>
> कियो सकल राक्षस कुल छारा।
>
> राज्य-लोभ तुम्हरे हिय आयो
>
> कुल-गौरव तुम सकल गँवायो। (रावण, पृ0 13, 19)

युद्धोपरान्त लंका का राज्य प्राप्त होने पर मंदोदरी भी उसे फटकारती है और उसे देश, राष्ट्र और जाति का द्रोही बताती है। महावानर तो उसके कुकर्मों को निरख कर क्रुद्ध हो उसका संहार करना चाहता है। उसके दोष अमिट हैं, कितनी ही

सफाई देकर वह निर्दोषी नहीं बन सकता ,—

काहे बनत दूध के धोये तुम साधु बड़ ज्ञानी।

तुम सारी करतूतनि की है जाहिर जगत कहानी। (राक्ष, 15-41)

'जयभारत'

अभिधा :— जयभारत महाकाव्य अभिधा शब्दशक्ति और प्रसाद गुण से सम्पन्न है। विचारों को सरल शब्दों में व्यक्त किया गया है —

सुनकर मंत्री से सब बातें शान्तनु ने ली लम्बी साँस।

फिर कराहते से बोले वे गड़ी हृदय में मानो गाँस।

लक्षणा :— यों तो कवि ने इस शब्द शक्ति का प्रयोग कम ही किया है, किन्तु कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं — जयद्रथ द्रौपदी का अपहरण (वनवासकाल में) करता है। द्रौपदी परकटी पक्षिणी की तरह निःसहाय हो जाती है —

वह चकित मृगी-सी रह गई आँखें फाड़ बड़ी बड़ी,

पर कटी पक्षिणी व्योम से जैसे _यों भू पर पड़ी-पड़ी। (जयभारत 246)

व्यंजना :— कवि ने इस शब्दशक्ति का प्रयोग अधिक किया है। युधिष्ठिर के द्वारा संधि-प्रस्ताव सुनकर भीम भड़क उठते हैं —

छातियों से भर भीम व्यंग्यपूर्वक बोले —

क्यों न सरल व्यवहार करें हम भोले।

इसी प्रकार दुर्योधन को चित्रसेन द्वारा बंदी बनाये जाने पर चित्रसेन व्यंग्य करता है—

अरे, तू ही दुर्योधन है,

दुष्टस्वाभिक जो दुर्गम है,

अनुज जिसका दुःशासन है,

प्रकट जिसका पामरपन है।

आज इस पृथ्वी का स्वामी,

बना फिरता है तू कामी।

पकड़ रखना तू इसका हाथ,

सती होगी यह तेरे साथ। (जयभारत, पृ० 203)

जब युद्ध की सभी तैयारियाँ हो चुकने के बाद युधिष्ठिर कृष्ण से युद्ध न करने की बात कहते हैं तथा दुर्योधन से पाँच गाँव लेकर ही संधि को तैयार होते हैं, तब द्रौपदी अपने अपमान की याद दिलाकर सभी को धिक्कारती है —

पर पाँच गाँवों के धनीये दीन क्यों कहलायेंगे।

निज बन्धुओं का चित्त चौपर खेलकर बहलायेंगे। (जयभारत, 326)

फिर खेलना क्या दुख सुख से भूला ही भूलना।

भूले भले भोले सभी ये लाल तुम मत भूलना। (वही, 317)

श्रीकृष्ण हस्तिनापुर संधि के प्रस्ताव का सन्देश लेकर जाते हैं। उनकी बातों को सुनकर दुर्योधन क्रोधित हो उठता है —

आज यह परमार्थ-कथन है कैसा भोला।

दुर्योधन सक्रोध बीच में ही उठ बोला —

यदि वे ऐसे कृती, भयातुर होते हैं क्यों?

होकर भी दिग्मान्य धरा पर रोते हैं क्यों? (वही, पृ० 325)

कृष्ण दुर्योधन पर व्यंग्य करते हैं —

बहुजन बल की बात ज्ञात है ~~कुटेल~~ मुझे तुम्हारी।

सचमुच ऐसी बड़ी सफलता की बलिहारी। (वही, पृ० 326)

इसी प्रकार कर्ण-कुंती संवाद में भी व्यंजना शब्दशक्ति के अनेक उदाहरण दृष्टव्य हैं —

तो इतना कहकर ही क्या तुम निरपराधिनी होती हो?

इससे अधिक मूल्य तो अपना भी मुँह ढँककर रोती हो? (वही, 342)

**'पार्वती'**

व्यंजना :— जयन्त त्रिपुरों के अत्याचारों का वर्णन करते हुए कहता है कि कांचनपुर में धर्म और ज्ञान की सामान्य वस्तुओं की भाँति विक्रय होता है। वहाँ अर्थ स्वामी है। सामान्य जनों के आवास पंक के समान हैं। वहाँ सदैव पाप और वैभव के उपायों की ही गवेषणा की जाती है। इस प्रकार त्रिपुर पाप और वैभव के मूर्तिमान् स्वरूप बन गये हैं, यहाँ इस तथ्य की व्यंजना की गयी है —

कांचनपुर में ज्ञान-भक्ति औ धर्म ज्ञान सब बन विक्रेय।
अर्थाभाव में अन्वित करते जीवन के सब सुन्दर श्रेय।
सोने के महलों के पद में पड़े झोपड़े पंक समान
वैभव के पापों की निधि का करते केवल अनुसन्धान। (पार्वती 2 सर्ग, 473)

कवि रजतपुर के वर्णन के प्रसंग में धर्म पर व्यंग्य करते हुए कहता है कि प्राणियों को धारण करने के कारण धर्म की संज्ञा सार्थक होती है, किन्तु रजतपुर में धर्म भार बन गया है और धर्म-पीठ के रूप में प्राणियों का आर्तनाद व्यक्त हो रहा है —

धर्मपीठ बन गये प्रकृति की लीला के प्रासाद
पुण्यतीर्थ बन गये पाप के अतिरंजित अनुवाद।
धारण का अधिकार छोड़कर धर्म बन गया भार।
धर्म पीठ में करता जग का अन्तर हाहाकार।

रानी मेना वरवेश में शिव को देखकर मूर्छित हो जाती है। मूर्छा दूर होने पर वह नारद तथा हिमाचल के प्रति व्यंग्य करती हुई कहती है कि रूप, कुल, गुण में क्या शिव ही सर्वोत्तम समझे गये थे, जिनसे मेरी सुकुमारी और सुंदर कन्या का विवाह निश्चित किया गया है —

अखिल विश्व में ये ही अद्भुत वर मिले।

जिनसे कुल के भाग्य-सुमन सत्वर खिले।

रूप, बन्धु, कुल, अलंकार, गृह सम्पदा।

सब कुछ अद्भुत शत योग्य हैं सर्वदा। (पार्वती, पृ0 240)

'मीरा'

अभिधा :— यह मानव-जीवन संघर्षों से युक्त है, जो जितना अधिक संघर्ष झेलता है और कष्ट सहता है, उसे उतना ही अधिक जीवन-रस प्राप्त होता है —

यह जीवन है संघर्ष भरा

जो जितना घर्षण करते हैं

जीवन-उपवन में अमृत का

उतना ही वर्षण करते हैं। (मीरा, पृ0 103)

लक्षणा :— मीरा के पति की मृत्यु के पश्चात् उसके देवर उसे घर की सीमा में बाँधना चाहते हैं, किन्तु मीरा सिंहनी की तरह बन्धनमुक्त हो जाती है। मीरा के उत्तर से राणा साँगा भयभीत हो जाता है —

पिंजड़े की सीमा बाधा से सिंहनी मुक्त

उसकी दहाड़ से हुआ अधिप सभीति-युक्त

बहने वाली धारा को कोई कभी रोके?

हत्यारा दल चुप मरज रहा जो ताल ठोंके। (मीरा, पृ0 230)

व्यंजना— वस्तु व्यंग्यध्वनि —

सखियाँ मीरा को उपदेश देते हुए व्यंग्य करती हैं —

कर रही सखियाँ वधू का व्यंग्यमय उपदेश

देश जैसा वेश रखना है पराया देश

तुम इन्हें आराम देना एक सेवा-कार्य,

मन इनकी चिन्तना ही और कुछ न विचार्य। (मीरा, पृ0 68)

जब मीरा पति की बात पर नराज हो जाती है, तब पति उनकी मान मनुहार करते हैं और फिर हास्य व्यंग्य करने लगते हैं —

पागल तो कितने ही देखे

पर तुम उन सबकी माता हो।

तुम जग-जननी हो, माता हो

तुम महामूर्ख-निर्मिता हो। (वही, पृ0 109)

तब मीरा भी हास्य करती हुई कहती है —

ऐसे लोभ-रसी पुरुषों की

बातों पर कोई ध्यान धरे

वह पागल है डर या ताऊ

ऐसी 'गिगिटल्सतान' करे। (वही, पृ0 109)

'एकलव्य'

अभिधा :— राजकुमारों को द्रोणाचार्य द्वारा सिखायी गयी विद्या का प्रदर्शन किया जाता है। मंच तैयार किया जाता है —

तुम न्याय में पवित्र बल-भूषित हो,

भूमि कांति-भांति के सु-छत्र किए धारण।

राजमांडली की भांति राजसी ही राग से,

स्वर्ण मंच मानो अलंकार के सुवेश में। (एकलव्य, पृ0 99)

द्रोणाचार्य अपने पुत्र अश्वत्थामा के साथ रंगस्थल में आते हैं —

मानों अंग अंग के निखार बने पास के

देख जिन्हें नेत्र नई ज्योति देख लेते थे।

पक्षि-शावकों के लघु पंख लघु चोंचों से

बैठी और उनको गिरा तो कर तल में। (एकलव्य, पृ० 123)

एकलव्य द्रोणाचार्य से धनुर्वेद की शिक्षा लेना चाहता है, तब उसके पिता उसे समझाते हैं —

वे हैं आर्य, हम सब शूद्र हम सब शूद्र हैं।

आर्य और शूद्र कैसे गुरु शिष्य होंगे रे?

तेल अपने में क्या मिला सकेगा पानी को। (एकलव्य, पृ० 83)

एकलव्य अर्जुन से व्यंग्य करता है —

केवल विशिष्ट व्यक्तियों को मास देने में?

फूल फूलते हैं वे न घोषणायें करते,

साधु ही सुगन्ध के विशेष अधिकारी हैं।

और जो असाधु हैं समीप जाके उनके

जो सुगन्धि है वही दुर्गन्धि बन जायेगी। (वही, पृ० 222-23)

## 'तारकवध'

<u>अभिधा</u> :— इस काव्य में अधिकतर अभिधा शब्दशक्ति का ही प्रयोग किया गया है —

आकर पवन झकोर तरंग चली ज्यों

उमँगी रविकर परस सरोज-कली ज्यों।

त्यों मनोज से चलित कान्त उर कर दो।

चलने ही की चाह हृदय में भर दो। (तारकवध, पृ० 299)

नृपति भी चले संग महामुनिवर के राये।

द्रुत तारकमय बढ़े मृगपति ज्यों छवि छाये।

गिरि प्रान्तर वह दिशा सकल वनस्थित विपीड़ित

ज्यों हो निर्जल ताल चलित उत्पल दलच्युत। (वही, पृ० 359)

<u>लक्षणा</u> :— दशरथ शान्ता के जाने से अत्यन्त व्याकुल हैं। यहाँ लक्षणा की ध्वनि निकल रही है — लोक लाभ हित की कन्या के इस प्रकार जाने से।

हम मणिहीन भुजंगम जैसे होंगे दीवाने से।(तारकवध, पृ0 131)

शान्ता कह रही है —

भुजगनाथ -भामिनी बदलती केंचुल जैसे,

चोला अपना आज बदलती हूँ मैं वैसे।(वही, पृ0 196)

शिव को देखकर सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं —

लोहा से सुवर्ण हो पाता पारस सुपरस पाये।

दर्शनीय के दर्शन ही से नित्य सुवर्ण हो आये।
दीनबंधु को देख सामने सकल विचार बिलाया।
~~दर्शनीयके~~
हृदय कमल संकुचित पड़ा था सहज विकच हो आया।(वही, 400)

शान्ता के वन जाने का समाचार सुनकर माताएँ अत्यन्त व्याकुल हो जाती हैं। दशरथ उन्हें समझा रहे हैं। वे उत्तर देती हैं —

पेट भरेगा नहीं चन्द्र के चूर्ण से

प्राणदायिनी कभी न हीरे की कनी।

बेटी वन को चली चलेंगे प्राण भी,

कैसे जीवन रहे गयी मणि की फनी।(तारकवध, पृ0 167)

<u>व्यंजना</u> :— नारद मुनि दशरथ और कौशल्या को शान्ता के वन भेजने के लिए समझा रहे हैं — यदि वनिता हाट भला कब तब कमी?

अधिकों से भी न पाओगी कमी।(तारकवध, पृ0 157)

## लोकायतन'

**अभिधा** :— इस दृष्टि में परमेश्वर की इच्छा से ही सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न होते हैं। हमारे प्राण, मन और बुद्धि उसी से प्रेरित होते हैं। वह मन का मन और इन्द्रियों का प्रकाशक है। उसी अमृत परमेश्वर से हमें ऊर्जा प्राप्त होती है —

जिसकी इच्छा से प्राण बुद्धि मन प्रेरित
जिससे नित वाणी श्रोत चक्षु उन्मेषित
वह मन का मन, इन्द्रिय की इन्द्रिय अविदित
उस अमृत तत्व से जीवन-मन संपोषित। (लोकायतन, पृ0 237)

**लक्षणा** — हरि वंशी आदि माधो गुरु का विरोध करते हैं —

चुप न रहेंगे हम बलि अपने
बड़े प्रबल मुँह में बांधे कूप। (लोकायतन, पृ0 55)
बहु झई के सर्प, दर्प फणधर
गुरु ही है उनकी गति अवलंबन। (वही, पृ0 513)
नव पीढ़ी का असन्तोष पावक
धधकाता नव असुर हवि का घृत
उच्छृंखलता की समिधा सुलगा,
रुद्ध वह ज्वाला होती जीवित। (वही, पृ0 514)

**व्यंजना** :— माधो गुरु गांधी जी पर व्यंग्य करते हुए कहता है —

स्यारों का वनरोदन सुनकर
सिंह छोड़ देंगे क्या जंगल?
अंग्रेजी साम्राज्य बला क्या
डला नमक का वे चाबें नल?

है पके खेत के पाट कृषक

जैसे रहा बैठ भूतल पर। (झांसी की रानी, पृ0 217)

व्यंजना :- कवि प्रातःकाल का मनोहारी चित्रण करते हुए कहता है कि प्राची रूपी नायिका ने स्वर्णकलश लाकर स्थापित कर दिया और वह सुन्दरता रूपी तालाब में स्नान कर अपने घर की ओर लौट आ गयी। यहाँ व्यंजना यह है कि प्रातःकाल होने पर पूर्व दिशा में सूर्योदय हुआ और सूर्य के अरुणिम प्रकाश से प्राची दिशा सुषमा युक्त हो गयी —

त्यों ही प्राची ने रखा

सोने का कलशा लाकर।

चल दी निज रम्य भवन को

छवि-सर में मुदित नहाकर। (वही, पृ0 183)

'मगधभारती'

अभिधा :- प्रस्तुत काव्य में सरल भाषा का प्रयोग कम ही हुआ है। तथापि सरल भाषा से युक्त अभिधा शब्द शक्ति के उदाहरण इस प्रकार हैं —

वे पितृतुल्य कर गए भाव,

वात्सल्य विभा से मैं विभोर

जब जब उठती स्मृति की सुगन्ध

सुख का न ओर दुख का न छोर। (मगधभारती, पृ0 343)

मृग-शिशु को देती स्वयं कुशा,

बछड़ों को देती हरित घास

× × ×

छत पर आ जाते कपोत

कुछ उड़ जाते हैं बाहों पर

जाती हूँ जब आश्रम वन में,

रोकते कलापी पाखें पर। (महाभारती, पृ0 345)

शकुन्तला अपनी दशा पर विचार करती है —

हाय री नारी, तेरा हृदय

बहुत ही कोमल बहुत विशाल

भोगती तू ही अतिशय व्यथा —

और रचती राखी का जाल।

× × ×

असम्भव तेरे बिना सुदेवि।

सफल मानव-जीवन की पूर्ति। (वही, पृ0 379)

<u>लक्षणा</u> :— निम्नांकित उदाहरणों में लक्षणा के दर्शन होते हैं —

मेरे निविड़ नभ में सहसा नवधूमकेतु

लिखित भविष्य का संकल्पित वह स्नेहसेतु। (वही, पृ0 144)

पुरुषाग्नि ज्वाल में जला विकल कामना-कुसुम

निष्पन्न हो गया धीरे-धीरे यौवन द्रुम। (वही, पृ0 149)

<u>व्यंजना</u> :— विश्वामित्र वशिष्ठ से नन्दिनी गाय की याचना करते हैं, किन्तु वशिष्ठ विश्वामित्र को नन्दिनी धेनु देने के लिए सहमत नहीं होते हैं। इस पर विश्वामित्र कहते हैं कि मैं देखूँगा कि ब्रह्मतेज में कितनी शक्ति है? यहाँ व्यंग्य यह है कि मैं वशिष्ठ के बल की परीक्षा लूँगा :—

षोडशानुभव में ब्रह्मतेज का मूल्यांकन।

देखूँगा उस दिन अग्नि में कितनी तीव्र धूप। (वही, पृ0 200)

'भगवानराम'

अभिधा :— रावण मारीच के पास जाकर अपनी योजना बतलाता है, तब मारीच उसे समझाता है —

त्याग दो कुविचार मन को करो अपने शान्त
नीति पथ का अनुसरण कर रहो वैभव-कान्त
पाप परदारा हरण से अन्य है न जघन्य
तुम स्वपत्नी निरत होगे नित्य सुख पर्जन्य। (वही, पृ०34।-472)

लक्षणा :—

महाराज दशरथ के नेत्र राम के मुखचन्द्र को देखकर चकोर की भाँति अनुरागयुक्त हो जाते हैं। जिस प्रकार धूप से मलीन कुमुद वर्षा-जल को प्राप्त कर शीतलता और तृप्ति का अनुभव करते हैं, उसी प्रकार दशरथ के नेत्र भी श्रीराम को देखकर सुख और सन्तोष का अनुभव कर रहे हैं :—

महाराज के लोलुप लोचन छवि आसक्त चकोर,
चन्द्रानन पीयूष पानकर हुए विमोह विभोर
खिले नृपों के कुमुद-विलोचन पाकर हर्ष, प्रसाद।
घर्म-तप्त पर्जन्य देखकर पाते हैं जिमि ह्लाद। (वही, 14/70)

कैकेयी दशरथ से दो वरदान माँगती है। वह दशरथ रूपी हाथी को वरदानों की जंजीर से बाँधकर कटुवचन रूपी अंकुश से प्रहार करती है —

वर शृंखला सत्य दृढ़ बंधन पुन मर्याद प्रख्यात
कुवचन अंकुश घात कृपालित हुआ गजेन्द्र नृपाल। (वही, 55/332)

मंथरा के समझाने पर क्रोधयुक्त नागिनी की भाँति कैकेयी उसके अनुसार कार्य करने को तैयार हो जाती है —

नागमाण्डलिक की सुबीन से निकला मादक राग,

लगा नाचने फन फैलाकर मंत्रमुग्ध सा नाग।

कैकेयी ने कहा करूँ मैं कैसे वांछित कार्य

पुत्र राम का वन निर्वासन कर न सकेंगे आर्य। (वही, पृ० 40/227)

पाशबद्ध कर चुकी व्याधिनी मृग को अपने कौशल से।

घातक वार प्रहार करने को उद्यत हुई निठुर छल से। (48/277)

व्याधिनी की भाँति कैकेयी अपने कौशल से राजा दशरथ को अपने वश में कर लेती है।

रूढ़ा लक्षणा :— जनकपुर जाते समय मार्ग में श्रीराम को ताड़का मिलती है। विश्वामित्र विष्णु का दृष्टान्त देकर उन्हें रामको ताड़का का वध करने के लिए कहते हैं —

है अधर्म पर नारि वध्य समुचित संशासन

जनरक्षा कल्याण मात्र नृप धर्म सनातन।

हुए विष्णु भी भृगुपत्नी वध से न कलंकित

तथा विरोचनजा निपात से शक्र न शंकित (वही, पृ० 56)

व्यंजना शब्दशक्ति :— जनक श्रीराम से व्यंग्य करते हुए कहते हैं —

कैसे देख सकते हैं राघव अतुल-पराक्रम

तथा प्रदर्शित कर सकते हैं पौरुष निर्भय

कर धनुष का आरोपण यदि श्रीराम वीरवर

पड़े उन्हीं के गले आज वर माला सुन्दर। (वही, 123)

इसी प्रकार परशुराम श्रीराम से व्यंग्य करते हैं —

अति अचिन्त्य पराक्रमी तुम हो रहे विख्यात

है न प्रतिद्वन्द्वी तुम्हारा विश्व में अज्ञात

द्वन्द्वयुद्ध विचार से आया यहाँ मैं राम

सहन करता नहीं प्रतिपक्षी कभी बलवान। (वही, पृ० 168)

लक्ष्मण सूर्पणखा से कह रहे हैं ——

यह तुम्हारा रूप यह सौन्दर्य

देखता है लोक सब आश्चर्य

मिलेगा जिसको तुम्हारा राग

सूर्य ही उसका करेगा त्याग। (भगवानराम, 310-260)

'जानकीजीवन'

अभिधा :— कवि भगवान श्रीराम के वनवास की अवधि के समाप्त होने पर अयोध्या-वासियों की श्रीराम के प्रति दर्शनोत्कण्ठा का वर्णन करते हुए कहता है कि अयोध्यावासी श्रीराम के वियोग में उसी प्रकार दुखी हैं, जिस प्रकार रात्रि में कोक और कोकी दुखी होते हैं। वे श्रीराम का उसी प्रकार ध्यान कर रहे हैं, जिस प्रकार कोका कोकी विरह दुख की निवृत्ति हेतु सूर्य का ध्यान करते हैं —

बीते चौदह वर्ष थे अवधि के ज्यों कष्ट के कल्प से

प्राणाधार उदार के मिलन के आतंक-आधार थे।

प्राणी-व्याकुलरूप-से अवध के मानों निशाकाल में,

कोकी कोक सशोक हों, विकल हों वह्नेश के ध्यान में। (जानकी0पृ025)

लक्षणा :— वनवास की अवधि के समाप्त होने पर अपनी निज निन्दा करती हुई कैकेयी सीता से कहती है कि क्रूर विचार वाली मुझ अभागिनी को प्रकृत्या मृदुल स्वभाव वाली स्त्री का शरीर क्यों मिला? यदि मैं स्त्री के रूप में उत्पन्न हुई तो सूर्यवंश जैसे उदात्त कुल की रमणी क्यों हुई? यदि संयोग से मैं सूर्यवंश की भामिनी हुई, तो मैं जननी क्यों बनी? यदि मेरे पुत्र न उत्पन्न होता तो स्वार्थवश मैं राम और सीता को वनवास क्यों देती? यहाँ कवि ने लक्षणा शब्दशक्ति के माध्यम से कैकेयी की कुटिलता का वर्णन किया है —

बेटी मैंने मृदुलतम क्यों नारि का जन्म पाया।

पाया भी तो नरपति-कुल की भामिनी क्यों हुई मैं।

होती भी तो जनक-कुल से भूषिता ही न होती

देती तो क्यों विकट इतने क्लेश यों मैं सभी को। (जानकी 84/7)

व्यंजना — लक्ष्मण सेना के साथ बिठूर पहुँचते हैं, पर वहाँ विनाश एवं नैराश्य के अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं दिखाई देता। श्यामवर्ण पलाश्व सामने बैठा हुआ था और कुछ दूर पर दो किशोर बाल-वीर धैर्य की मूर्ति के समान उन्हीं की ओर बढ़ते हुए आ रहे थे। कवि ने लक्ष्मण और युगल वीर बालक लव और कुश का जो संवाद इस स्थल पर अंकित किया है, वह अत्यन्त व्यंग्यपूर्ण है। रामचन्द्र रूपी चन्द्र और लक्ष्मणरूपी सूर्य के लिए लव और कुश को राहु और केतु बना दिया गया है। लक्ष्मण लव और कुश को जब बाण का लक्ष्य तथा 'श्रृंगाल वृन्द' का भक्ष्य बनने के लिए कहते हैं, तब लव और कुश उत्तर देते हैं —

आया दयालु देव विजय सीख के रहा

अश्वोपलब्ध में कुतुक भीख दे रहा।

सन्नद्ध हो समृद्ध क्रुद्ध युद्ध के लिए

आरूढ़ अश्व से विरुद्ध युद्ध के लिए। (भगवानराम 384-68)

इन शब्दों को सुनते ही शेषावतार लक्ष्मण का मुख लाल हो गया। उन्होंने अपना हाथ निषंग से तीर निकालने के लिए बढ़ाया ही था कि लव और कुश की ओर से मूर्च्छास्त्र का प्रयोग हो गया। लक्ष्मण मूर्छित होकर गिर पड़े और दिग्दिगन्त के प्राण थर्रा उठे। लक्ष्मण की सेना को पराजित कर दोनों वीर बालक सीता के पास पहुँचे। साकेत के घर-घर में विषाद का वातावरण फैल गया।

## 'अरुण रामायण'

__अभिधा__ :— कवि अभिधा शब्द-शक्ति के माध्यम से कैकेयी द्वारा वनवास की आज्ञा सुनकर श्रीराम की प्रसन्नता और कर्तव्य-निष्ठा का वर्णन करते हुए कहता है कि श्रीराम वन जाने की आज्ञा सुनकर प्रसन्न हो गये और उनके मुखमण्डल की वैसी ही शोभा हो गयी, जैसे प्रातःकाल होने पर खिले हुए कमल की शोभा होती है —

सुनकर प्रसन्नता व्याप्त राम मुख मण्डल पर
ज्यों प्रात पद्म प्रस्फुटित शरद निर्मल जल पर
कुछ और विकसता व्याप्त दिव्य प्रिय लोचन में
तन से प्रफुल्लता अधिक राम के रोम-मन में। (अरुण०पृ० 168)

__लक्षणा__ :— कवि ने कैकेयी को पाषाणी कहा है —

ऐसी पाषाणी जो अब तक देखा न कहीं
उर्वरा भूमि पर भी ऐसी बंजरा मही? (वही, पृ० 32)

मंथरा हर प्रकार उपाय द्वारा कैकेयी को उकसाती है —

बस एक वाक्य सुनकर मन्थरा बनी नागिन
क्रोधाग्नि लपट मन ही मन बढ़ती थी पल-छिन। (वही, 125)
दायित्व निभाना है इस चिन्तित दासी को
देना है सुधा नीर सिंचिनी प्यासी को। (वही, 126)
विश्वास आज पर कर कल का न भरोसा है।
खा ले थाली में जो कुछ आज परोसा है। (अरुण० 143)

भरत और शत्रुघ्न अपने ननिहाल से लौट आते हैं। शत्रुघ्न मन्थरा की करतूत सुनकर उसके एक लात मारते हैं। मन्थरा बिल्ली की भाँति वहाँ से भागती है —

बिल्ली सी वह भागने लगी पर लगी लात
वह भूल गयी ठोकर लगते ही कुछ बात।

चूहे सी चूँ चूँ चिल्लाती हाँफती हुई।

या व्यस्त कुत्ती सी थर थर काँपती हुई। (अरुणरामायण, पृ0 250)

<u>व्यंजना</u> :— लक्ष्मण जी परशुराम पर व्यंग्य कर रहे हैं —

हे क्या मुनिवर आप ही एक योद्धा महान?

इस पृथ्वी पर आपही एक हैं प्रणवान्।

× × × ×

रण में भंग इस समय आपके आने से

गीत आनन्द अब वाक्य कृपाण-चलाने से।

हे परशुराम फिर बोल उठे आकुल लक्ष्मण

अपना परिचय आपने स्वयं ही दिया आज

आपकी बात को सुन-सुनकर अर्पित समाज

× × × ×

डरती हैं वेद-ऋचाएँ तपसी मानस से

हो रहा पतित विवेक सचित क्रोध-रस से। (अरु0 76)

× × × ×

है वाक्य वीरता का संतुलन आप में ही

आपके समान प्रचण्ड वीर हैं कहीं नहीं। (वही, पृ 77)

मंथरा प्रासाद के ऊपर खड़ी हुई विचार कर रही है कि जो रानी कौशल्या पूजा पाठ इत्यादि में रत रहती है, क्या उसे भी यह अन्याय नहीं प्रतीत होता —

क्या नहीं जानती वह कि भरत भू-अधिकारी?

पूजा निमग्न क्या न्याय मयी है वह नारी? (वही, 124)

दशरथ कैकेयी के कपट को देखकर उसे बुरा भला कहते हैं —

कपटी होती है अति आकर्षक नारी क्या,

साँप को छिपाकर रखती है फुलवारी क्या?

तेरे कारण रघुकुल मर्यादा हुई भंग

तेरी आँखों में कब से जहरीली तरंग। (वही, 148)

अंगद रावण के दरबार में जाता है। यहाँ रावण भेदनीति का आधार ग्रहण कर अंगद को अपने पक्ष में करना चाहता है। अंगद रावण की क्रूरता और नीतिमत्ता पर व्यंग्य करतेहुए कहता है —

तुम वही कि जिसका मुकुट रात में स्वयं गिरा
तुम वही कि जिसके सिर पर यम का जलद घिरा।

इसी प्रकार लक्ष्मण मेघनाद पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं —

है बाप तुम्हारा छली और तुमबली आज
होता है अरे बाज का बेटा नहीं बाज॥

---

# नवम अध्याय

## काव्य-गुण

### काव्यगुण की परिभाषा :— और उसके प्रमुख भेद :-

काव्य के शोभावर्द्धक अनिवार्य तत्वों में काव्य-गुणों का महत्वपूर्ण स्थान है।[1] काव्यगुण शरीर के शौर्य, दाक्षिण्य आदि गुणों की भाँति रस के अनिवार्य धर्म कहे गये हैं।[2] भ नाट्यशास्त्र में काव्य के दस गुण बतलाये गये हैं।[3] वामन ने शब्द के दस और अर्थ के दस, इस प्रकार बीस काव्य गुणों का उल्लेख किया है। भोज ने शब्द और अर्थ दोनों के चौबीस-चौबीस गुण बतलाये हैं। इस प्रकार काव्य-गुणों की संख्या 48 [illegible] तक पहुँच गयी है। किन्तु प्रमुख रूप से ओज, प्रसाद, माधुर्य इन तीन काव्य गुणों को ही मान्यता प्रदान की गयी है।[4]

---

1- काव्यशोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः। काव्यालंकारसूत्र 3/1/1

2- ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः॥ (काव्यप्रकाश, 8/66)

3- श्लेषः प्रसादः समता समाधिर्माधुर्यमोजः पदसौकुमार्यम्।
अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यस्य गुणा दशैते।
(नाट्यशास्त्र 16/96)

4- माधुर्यमोजोऽथ प्रसाद इति ते त्रिधा। (साहित्यदर्पण, पृ0 8/1)

<u>ओजगुण</u> :—

ओजगुण में चित्त को स्फूर्ति से उत्तेजित करने की क्षमता होती है। ओजगुण की प्रतिष्ठा के लिए द्वित्वयुक्त वर्णों, संयुक्त वर्णों 'र' का संयोग, ट,ठ, ड,ढ वर्णों का प्रयोग समासाधिक्य तथा कठोर वर्णों की बु प्रचुरता आवश्यक होतीहै।[1] ओजगुण की प्रकाशिका परुषावृत्ति है।[2]

<u>प्रसादगुण</u> :— सूखी लकड़ी में व्याप्त अग्नि की भांति प्रसादगुण के रूप में सहृदय-हृदय की निर्मलता चित्त में व्याप्त हो जाती है। इस गुण की स्थिति सभी प्रकार की रचनाओं में होती है। प्रसाद गुण के अभिव्यंजक शब्दों के अर्थ श्रवणमात्र से ही व्यक्त हो जाते हैं।[3] इसमेंकोमलावृत्ति होती है।[4]

<u>माधुर्य गुण</u> :— सहृदय-हृदय की द्रवीभूतता को माधुर्य गुण कहते हैं। इससे हृदय में आनन्द की अनुभूति होती है। यह माधुर्य गुण श्रृंगार, करुण और शान्त रस में अनुगत रहता है। ट,ठ,ड और ढ आदि कर्णकटु वर्णों को छोड़कर क से लेकर म तक के वर्ण

---

1- ओजश्चित्तस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वमुच्यते।
वीर बीभत्स रौद्रेषु क्रमेणाधिक्यमस्य तु।
वर्गस्याद्यतृतीयाभ्यां युक्तौ वर्णौ तदन्तिमौ।
उपर्यधो द्वयोर्वा सरेफौ ट ठ ड ढैः सह।
शकारश्च षकारश्च तस्य व्यंजकतां गताः।
तथा समासो बहुलो घटनौद्धत्यशालिनी॥ (साहित्यदर्पण, 8/4-7)

2- ओजः प्रकाशकैस्तु परुषा।। (काव्यप्रकाश, सूत्र 109)

3- चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च॥
शब्दास्तद् व्यंजका अर्थबोधकाः श्रुतिमात्रतः। (साहित्यदर्पण, 8/7-8)

अपने अपने वर्गों के अन्त्य वर्ण से मिलकर श्रुति मधुर ध्वनि की सृष्टि किया करते हैं।[1] इसमें उपनागरिका वृत्ति होती है।[2]

## आलोच्य महाकाव्यों में काव्यगुणों की स्थिति

### 'जननायक'

माधुर्य गुण :— यह महाकाव्य आरम्भ से अन्त तक अंग्रेजों के अत्याचारों और साम्प्रदायिक दंगों के वर्णनों से भरा हुआ है। अतएव माधुर्य गुण के दर्शन बहुत कम प्रसंगों में होते हैं। निम्नांकित पंक्तियों में गाँधी जी के जन्म और उनके दर्शनों के लिए उत्सुक जनता की भावनाओं के वर्णन में माधुर्य गुण की अभिव्यक्ति हुई है —

जिस दिन जन्म लिया मोहन ने,
× × × ×
बाजा गूँज-गूँज कर गाये। (जननायक, पृ0 28)

मन में मनमोहन के बस के
सब दर्शन को दुनिया तरसी। (वही, पृ0 63)

गाँधी जी अफ्रीका में हैं, उनकी मा को अचानक याद सताती है —

स्मृति की पलकों पर प्यार लिये
बरसे किसकी स्मृति के मोती?

---

1- चित्तद्रवीभावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते।
सम्भोगे करुणे विप्रलम्भे शान्तेऽधिकं क्रमात्॥
मूर्ध्नि वर्गान्त्यवर्णेन युक्ताष्टठडढान् विना
रणौ लघू च तद्व्यक्तौ वर्णाः कारणतां गताः।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा मधुरा रचना तथा। (साहित्यदर्पण, पृ0 8/2-4)

2- माधुर्यव्यंजकैर्वर्णैरुपनागरिकोच्यते। (काव्यप्रकाश, पृ0 9/108)

जिसकी कविता कहती कहती

सरित धन में करुणा रोती।

× × × ×

भूल गये मुझे क्या करुना निधि,

लुट रहा जग रात अंधेरी

क्यों बन वायु न प्राण गये तुम

जीवन बोझ बन पाव न मेरी। (वही, पृ0 111)

ओजगुण :— अंग्रेजों के अत्याचार देखकर दिल दहल जाता था, किन्तु गाँधी जी फिर भी चुपचाप सह रहे थे। कुछ नवयुवकों ने क्रांति कर दी। इसी तरह स्त्रियों ने भी अपनी अपनी आवाज उठायी —

मर्दानी सिंहनी बोल उठी यह मौत नहीं जिसको आती है

उसको जिसकी चिता देश के स्वाभिमान पर जल जाती है।

चाहे मशीन गेन पिस्टौलों से कोई जिन्दा हमें जलाये।

किन्तु हमारी अवगार पर रक्त-रंग ध्वज लहराये।

हम भारत माँ की बेटी हैं मातृभूमि का मान न देंगी।

जल थल नभ बल सत्याग्रह कर अपनी स्वतंत्रता ले लेंगी।

गूँज उठी हुंकार विजयश्री, गाँधी का भाग्य लहराया।

मानो पाकर प्रखर चन्द्रमा ज्वार हृदय सागर में आया। (जन0पृ0 165)

प्रसादगुण :— जननायक काव्य एक प्रसाद गुण सम्पन्न काव्य है। इसकी भाषा सरल एवं सुबोध है —

गाँधी के शासन-सरोज पर 'पेथिक' भौंरे से मँडराये

सत्य साधना के पराग से भौंरे चरण कमल में आये।

सारी दुनिया ने यह देखा पेथिक गाँधी भाई-भाई।

मधुकर मुग्ध हुआ भावों पर-निर्धन ने पारस निधि पाई।

तथैव कर्मागम से मनुष्य का

अवश्य होता विनिपात अंत में। (वही, पृ0 391-66)

<u>माधुर्य गुण</u> :—

कवि ने त्रिशला के सौन्दर्य का बड़ा मनोहारी वर्णन किया है। माधुर्य गुण के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

सु-आनना सुन्दर-चन्द्र कान्त सी

सुकेशिनी नील-शिखा समान थी

सु-पाद से अरूण पद्म-राग सी

सु-शोभिता रत्नमयी सुभीरू थी। (वही, पृ0 49-55)

अलक्त बिम्बाधर-श्री सरस्वती

सुहासया दीप्ति-कर्णिका-प्रभा

सु-चारू वेणी यमुना-प्रवाह सी

नृपाल द्वारा शुभ सौई राग थी। (वही, पृ0 52-69)

मनोज भ्रू कार्मुक के समान थी,

कटाक्ष भी थे इषु-तुल्य तीक्ष्ण ही

नृपाल के चंचल-चित्त-वेध में,

नृपालिका शील-वधू समान थी। (वही, पृ0 65-121)

<u>'जयभारत'</u>

<u>प्रसाद गुण</u> :— जयभारत एक प्रसाद गुण सम्पन्न महाकाव्य है। द्रौपदी सहित पाण्डव विराट के यहाँ छिपे हुए हैं। द्रौपदी साधारण वेश में रहती है, किन्तु फिर भी वह अपने आपको छिपा नहीं पाती। भला कहीं शैवाल में कमल की कली छिप सकती है—

यद्यपि दासी बनी वसन पहने साधारण

मलिन वेष द्रौपदी फिर रहती थी धारण।

× × × ×

अलि लिपटा भी शैवाल में कमल कली है सोहती

घन-सघन-घटा में भी घिरी चन्द्र कला मन मोहती। (जयभारत, 242)

माधुर्य गुण :— युद्ध में दुर्योधन और अर्जुन कृष्ण के पास युद्ध में सहायता के लिए जाते हैं। कृष्ण का सौन्दर्य देखिए —

ओढ़े मनोहर पीतपट वे दिव्य रूप निधान थे,

प्रत्यूष आतप युक्त यमुना कूल-सदृश सु[illegible]मान थे।

वर बाल कुन्तल-मण्डल वलित यों सोहते अभिराम थे।

घेरे हुए ज्यों सूर्य को घन सघन शोभा-धाम थे।

नीलारविन्द समान तनु की अति मनोहर कान्ति थी

गलहार के गजमौक्तिकों में नीलमणि की भ्रान्ति थी। (वही, 298)

ओज गुण :— जयभारत का कथानक महाभारत पर आधारित है। कौरवों ~~और~~ पाण्डवों में युद्ध होता है। अतः इस महाकाव्य में ओजगुण के दर्शन स्थान-स्थान पर होते हैं। युद्ध में दोनों दल सन्नद्ध हैं। घटोत्कच की वीरता से कर्ण भी हतोत्साहित है—

भय कहते हैं किसे कर्ण न था जानता

छक्के से छुड़ा दिये परन्तु घटोत्कच ने।

मानो भीम ने रण ही आके बढ़ाने से,

कौरवों की सेना ध्वंस करने को आ गये। (वही, पृ० 390)

'पार्वती'

माधुर्य गुण :— निम्नांकित पंक्तियों में माधुर्य गुण के दर्शन होते हैं —

अर्पित की भू ने कुसुमों में अन्तर की निधि सारी,

अम्बर ने अनन्त दीपों में शुचि आरती उतारी

अन्तरिक्ष ने घन कलशों का अर्घ्य अनन्त चढ़ाया।

जीवन ने अनन्त रागों में मंगल-वन्दन गाया (पार्वती, पृ० 11)

निर्झरिणी - सी अमृत बरसती सस्मित कोमल वाणी

करती स्वर संपूत वीणा के जिससे वीणा-पाणी

पूत प्रसन्न भाव भरती थी अमृत दृष्टि कल्याणी

खुलती थी स्वजनों के उर में रस की मंजुवाणी। (वही, 63)

जग उठा हर्ष औ विस्मय सबके उर में

हो उठे गीत मंगल के अन्तःपुर में

शोणितपुर के सब आनन्दित नर नारी

बोले जयलक्ष्मी यह आकांक्षित हमारी।' (वही, पृ० 381)

उत्सव का नव आमोद चतुर्दिक छाया

फैली थी कौन अपूर्व पर्व की माया,

थी कल्पलतायें फूल रहीं घर-घर में

खिल उठे कल्पतरू पद पद दिव्य नगर में। (वही, पृ० 383)

<u>ओजगुण</u> :— निम्नांकित पंक्तियों में ओजगुण के दर्शन होते हैं —

उठी कर्षा भुजायें फड़क मुनि की रोष जगा।

प्रलय के सूर्य सा दीपित परशु कर में उठाया।

चले संकेत पा गुरू का सभी विद्याधिकारी

चमत्कृत हो उठी साम्बर की यह प्रकृति सारी। (तारकवध, पृ० 316)

देव कुमार आज थे हो घन पौरुष के प्रलयंकर ज्वाल

युद्ध भूमि में गरज रहे थे बनकर निज अरियों के काल।

देख शत्रु के भग्न कण्ठ से बहते नूतन रक्तप्रपात

बढ़ता मन में ओज सौगुना शुभ प्रतिशोध पर्व में स्नात। (तारक0 359)

'मीरा'

ओजगुण :— मीरा पति द्वारा की गयी निंदा से अत्यन्त क्रुद्ध हो उठती है और ओजपूर्ण शब्दों में उत्तर देती है। इसी प्रकार वह पति की मृत्यु के बाद सामाजिक मान्यताओं पर कुठाराघात करती है —

पिंजड़े की सीमा कारा से नागिनी मुक्त

अपनी बाढ़ से हुआ अधिपत्यभीति-मुक्त

बढ़ने वाली धारा को कोई सका रोक?

हत्यारा का चुप गरज रहा जो ताल ठोंक। (मीरा, पृ0 230)

प्रसादगुण :— कवि मीरा और कवि दोनों को एक ही समान सौम्य बतलाता है —

चाँद गगन में चढ़ा आया था

सुन्दर था, शान्त था,

सौम्य रूप था दोनों का

हृदय पिघल जाता था। (वही, पृ0 97)

माधुर्य गुण :— निम्नांकित पंक्तियों में माधुर्य गुण की अभिव्यक्ति हुई है —

अनिलभर जब मलयरों के मार देता बाण

सुख अलौकिक प्राप्त कर तल्लीन होते प्राण

नाचती जब नागिनी सी दिव्य भू की रेणु

मिल स्वरों में मन्त्रपेरा प्रिय बजाता वेणु। (मीरा, पृ0 91)

गुनगुन रहे है गायन को

कितने ही खग लय में विभोर

की धूमधाम , नूतन हलचल

गुंजित था वन का ओर-छोर। (मीरा, पृ० 196)

'एकलव्य'

ओजगुण :— भीम और दुर्योधन के गदायुद्ध के प्रसंग में ओजगुण की अभिव्यक्ति हुई है —

भयावह हुआ गदा-द्वय के संघात से

फैल गया चारों ओर वज्र का निनाद सा,

नभ में उड़ी अनेक लम्बी चिनगारियाँ

जैसे शब्द गति में साकार हुआ वेग। (एकलव्य, पृ० 106)

प्रसादगुण :— एकलव्य काव्य की भाषा सर्वत्र प्रसादगुण सम्पन्न है। एकलव्य का काव्य-सौष्ठव भी सुन्दर है। भाषा में प्रवाह और मार्दव है।

लघु मुस्कान से उन्होंने वह चीटिका ले

जल की फुहारों के समक्ष जान यों पड़ा

जैसे किसी पन्नग का कटा हुआ फन हो। (वही, पृ० 16)

एकलव्य वन जाते समय अपने मित्र नागदन्त से अपनी माँ के लिए संदेश भेजता है—

मेरी खोज की न कभी चिन्ता करें अब वो

सबके समीप हूँ उन्हीं की आ वन्दना में

पल्लव भले ही मूल से हो दूर वृन्त से

किन्तु जुड़ा है रस उसकी शिराओं में। (वही, पृ० 141)

माधुर्य गुण :— कवि प्रातःकाल का वर्णन कर रहा है। खिले हुए फूल ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो वे मन्द स्मिति से पुलक हुए हों। लताएँ इस प्रकार झूमती हैं, जैसे बाल

पुत्र के सुन्दर चरित्रों की गाथा सुनकर प्रसन्न हो जाती है —

फूल खिले मानों वे मधुमास खिले मुख हैं
पढ़ते सुगन्ध के हैं छन्द अलि कण्ठ से।
झूम झूम उठती लता है, जैसे सुत के
सुन सुचरित माता पुलकित होती है। (एकलव्य, पृ0 97)

## तारकवध

<u>प्रसादगुण</u> :— शान्ता तारकासुर की बन्दिनी है। शान्त हिलोरें लेता हुआ सागर अपनीतरह विरह-दुःख से पीड़ित प्रतीत हो रहा है —

अपने प्रियतम रत्न विरह से पीड़ित होकर
उच्च स्वर में यही पूछता रहता रोकर
कब तक मैं निस्सार रहूँगा सार गँवाकर
कब होगा फिर नाम सत्य मेरा रत्नाकर।

<u>ओजगुण</u> :— जब शान्ता के बन्दिनी होने का समाचार दशरथ को प्राप्त होता है, तब वे सेना लेकर युद्ध के लिए चल पड़ते हैं। इस रणयात्रा का ओजपूर्ण वर्णन किया गया है —

सिंह गर्जन में रत सेना चतुरंग चली
या कराल यमराज लप लप रणधर
ज्वलित हुताशन की ज्वाला में ढले हुए
चले उपसंहार करने को उन्हें जिनकी
जीवन की अंतिम घड़ी की बाट जोहती
या प्रचण्ड पावक के अंगारक राशि-राशि

भीषण अपार दीप्त तुल घन ओर

लपलप जीभ करते

प्रबल प्रभंजन की पाकर सहायता

लपकारी नवमय वेगवान लपके। (तारकवध, पृ0 352)

पीछे पीछे मत्त

योद्धा चले योगल के जैसे पकड़रीन पाये

सन्नद्ध रथ पर

अंधकार मग्न निशा—

उर को बिदारकर

प्रलय के मेघ जैसे चले ले अपार वारि

त्यों ही चले दानव के योद्धागण अस्त्र शस्त्र ले सजे। (तारकवध, 351)

<u>माधुर्य गुण</u> :— अयोध्या में भीषण अकाल के पश्चात् बादलों की घटा घिरी हुई है। सभी के नेत्र तृप्त हो गये हैं —

एक दिवस घनघटा घिरी नभ में घहराकर

लगे नाचने मोर दरस प्रियतम का पाकर।

चमक उठी चपला लोचनों को चौंधाती।

बूँदें छूटीं रसा-तृषा उर को सरसाती। (तारकवध, पृ0 357)

घटा देखकर मोर नाच उठते हैं। इस प्रकार चारों तरफ का वातावरण मधुर हो जाता है।

<u>'लोकायतन'</u>

<u>ओजगुण</u> :— निम्नलिखित पंक्तियों में ओज गुण की अभिव्यंजना हुई है —

बादल के दल के बदले

बरसें दारुण पावक कण

शुचि स्वाति स्नात मोती की

अब करें शुभ्र तिमि धारण। (तारकपथ, पृ0 120)

प्रसाद गुण :— काव्य की निम्नांकित पंक्तियाँ प्रसाद गुण से सम्पन्न है —

पीत वर्ण रेशमी हिमातप

अंगों की आभा सा कोमल

डालों में रज गंध समीरण

जिसका चंचल मन अयाचित।

झरते पांडुर तरूदल मर्मर

धूलि धूसरित विवश दिगंतर

ताम्र कलश सा रश्मि हीन रवि

वन गंधों से अकुल अंतर। (लोकायतन पृ0 41)

संघ में यद्यपि किसी को तत्व का ज्ञान नहीं था, तथापि सर्वाहरि के आदेशों का पालन करते है —

ज्ञात था नहीं किसी को तत्व,

समझ उसको हरि का आदेश

सृजन श्रम में रहते सब लग्न

समर्पित हरि के लिए अशेष। (वही, पृ0 256)

माधुर्यगुण :— लोकायतन की निम्नांकित पंक्तियों में माधुर्य गुण के दर्शन होते हैं —

शेष नाग के ऊर्ध्व शीश पर शोभित

उदित हुई भू हरित जलधि-अंचल धृत

नील शीश का रत्नकत्र धर सिर पर

पवन डुलाता चँवर पुष्प रज सुरभित। (वही, पृ0 24)

पार्वती और सीता के मिलन से वातावरण मधुर हो जाता है —

मिलीं उमा वैदेही प्रिय सखियों सी

शुभ्र चंद्रिका स्वर्ण उषा हों शोभित। (वही, पृ0 25)

(

## 'झाँसी की रानी'

ओजगुण :— झाँसी की रानी वीर रस युक्त एवं ओजगुण प्रधान महाकाव्य है। अतएव उसके अधिकांश स्थलों में ओजगुण की अभिव्यंजना हुई है।

अंग्रेजों के आने की बात सुनकर रानी सिंहिनी के सदृश तड़प उठती है और अंग्रेजों से सामना करने के लिए वीर वेश धारण करती है। यह दृश्य ओज पूर्ण है —

यह सुनकर रानी उछल पड़ी,

सिंहिनी सदृश वह तड़प उठी।

और हृदय-रक्त की प्यास-अग्नि

लेकर बिजली सम कड़क उठी। (झाँसी की रानी, पृ0 247)

रानी की तलवार प्रलय-घटा के बीच बिजली के समान चमकती है —

हो गया व्योम में धुआँ धुआँ

तलवार चमकती थी चमचम

ज्यों महाप्रलय की घटा-बीच

चपला करती हो चम-चम-चम। (वही, पृ0 289)

युद्ध में चारों ओर ओजपूर्ण वातावरण उत्पन्न हो जाता है —

हे दैव न भय है मुझको अब

रिपुदल की विकट कटारों का।

मुझको है भावन चलाना अब

आंग्लदल के अत्याचारों का (वही, पृ0 165)

है समय मिला रणचण्डी को
जी भर कर रक्त पिलाने का।
बढ़-बढ़कर खप्पर वाली को
अरि-सिर माला पहनाने का। (झाँसी की रानी, पृ0 211)

रानी तलवार से शत्रुओं की गर्दन हवा के वेग से काट रही है। चारों ओर खून ही
की खून दिखायी दे रहा है —

रानी अरि-गर्दन काट काट
उड़ रही पवन में फर-फर-फर
लप लप करती असि जिह्वा से
शोणित पढ़ता था तर-तर-तर (वही, पृ0 239)

<u>प्रसाद गुण</u> :— 'झाँसी की रानी' नामधेय काव्य के निम्नांकित उद्धरण में प्रसाद गुण के दर्शन होते हैं —

वह मनु चन्द्र की कला-सदृश
प्रतिदिन बढ़ती ही जाती थी
जन-जन के हृदय-कमल में वह
नित सरस-सुरभि बरसाती थी। (वही, पृ0 176)

<u>माधुर्य गुण</u> :— निम्नलिखित पंक्तियों में माधुर्य गुण की अभिव्यक्ति हुई है —

चंचल चपला की कौंध लिए
घनमय अम्बर घहरात ज्यों
लेकर मादव के पुष्प-दान
वन-वन तरु, भारु मुस्कात ज्यों,
वैसे ही मेरे मन्द साधु
व्यथा का लेकर मधु-भाव।

जाती स्वतंत्रता देवी की

कर रहे अर्चना भरे भाव। (झाँसी की रानी, पृ० 64)

सरसिज के कोमल-आनन में

जैसे हिमकण लहराता हो,

पावन मंदिर की प्रतिमा पर

ज्यों केतु पवन फहराता हो,

ध्वनि से मिलकर ज्यों मधुर राग

कानों में मधु बरसाता हो।

× × ×

वैसे ही दुर्गा का सुन्दर

उर में वरदान विकसित था।

जिससे मिलने को सुरसरि का

पावन उद्गार तरसता था। (वही, पृ० 65)

लक्ष्मीबाई और नाना साहब में घोड़ा दौड़ाने की होड़ लगती है। जिस प्रकार वन में बादल छा जाता है, उसी प्रकार वे अपने कला-प्रदर्शन में जुट जाते हैं —

इतना कहकर नाना साहब

जुट गए कला की बानी पर

जैसे बादल उल्लास-भरा

जुट जाता है वनरानी पर। (वही, पृ० 80)

मनु बड़ी हो गयी है अतः मातापिता उसके योग्य वर के लिए देवी से प्रार्थना करते हैं — ज्यों मिले सती को हे शंकर

रति ने मनोज को अपनाया

राधा को जैसे मिले श्याम

सीता ने रघुवर को पाया। (वही, पृ० 97)

घन प्रतिध्वनित सिंह की सुनकर निज निनाद अपार

होता है उद्ग्रीव जनकर प्रतिपक्षी संहार।

युद्ध प्रेरणा सुन विपक्ष की निर्भय क्षत्रिय वीर,

प्राण मोह का त्याग समुद्यत होता है रणधीर। (भगवान0 173)

प्रसाद गुण :— प्रस्तुत काव्य में संस्कृत निष्ठ भाषा का प्रयोग अधिक किया गया है, तथापि कहीं कहीं प्रसाद गुण सम्पन्न सरल भाषा के भी दर्शन हो जाते हैं। निम्नांकित उदाहरण में प्रसाद-गुण की छटा दिखलायी देती है —

सज्जित हुई विवाह वेदिका कुछ क्षण में

मण्डप ही आ गया उतर गृह प्रांगण में

पीत श्वेत कदली स्तम्भों की पंक्ति बनी

विलुलित हुई वन्दिनी माला सुरभि सनी। (भगवानराम, पृ0 152)

माधुर्य गुण :— भगवान राम के जन्म से अयोध्या में चारों ओर आनन्द छा जाता है। सभी नर-नारी प्रसन्न हो जाते हैं। इस प्रसंग में माधुर्य गुण की व्यंजना हुई है—

भक्ति उन्मादिनी पिकी अविरल कूकती

फिर प्रसन्न कान्ता अन्तर्प्राण कम्पन फूंकती

राम जन्मानन्द मग्न छा गयी है मोदरत

है प्रणय उन्मत्त लहरी मानि का उर गूंजती। (वही, पृ0 34)

प्रभात में ज्यों रवि की प्रभा से

प्रफुल्ल होता कुल पंक का है

मनोज त्यों ही उनकी सुआभा

सखी सभी के मन की विकासी।

जानकीजीवन'

ओजगुण :— बीसवें सर्ग में युद्ध का दृश्य मोहक है और राम की सेना को किसी सेना का नहीं, वरन् दो कुमारों का सामना करना पड़ता है। एक ओर लव हैं, दूसरी ओर चन्द्रकेतु और उनकी सेना है। ओजगुण का जो रूप कवि ने यहाँ उपस्थित किया है, वह वस्तुतः श्लाघनीय है —

देखी स्वसैन्य नष्टभ्रष्ट चन्द्रकेतु ने
की क्रुद्धाकर्षित दृढ़ एक धनु केतु ने।
छोड़ा निशात बाण सर्पराजसा चला
तत्काल वह्निबाण से पुण्यात्मा जला। (जानकीजीवन, पृ0 376)
तीक्ष्णातितीक्ष्ण सूक्ष्म से सवाग्नि बाण से,
कल्याण प्राप का न भाग गिरे भाव से।
ज्यों चन्द्रकेतु चन्द्र केतु ग्रस्त हो गया,
चन्द्रोदयपरान्त चन्द्र अस्त हो गया। (वही, पृ0 376)

प्रसाद गुण :— कल्याण की कामना करने वाले मनुष्य का धर्म यह है कि वह भ्रम और संशय का परित्याग कर सदैव शुभ कर्म करे। जब कर्म के फलाफल की कामना समाप्त हो जाती है, तभी उसको भगवान् की प्राप्ति होती है —

इसलिए भ्रम-संशय त्याग के
तज फलाफल की सब कामना।
सतत तत्पर हो शुभ कर्म में
सुलभ हो शुभ संगम स्वामि का। (वही, पृ0 166)

माधुर्य गुण :— सीता स्वयंवर में राम जब धनुष तोड़कर खड़े हो जाते हैं, तब चारों ओर का वातावरण रसमय हो जाता है —

श्रीराम तोड़कर धनुष खड़े थे ऐसे,

शृंगार वीर मिल गये एक में जैसे।

थी मुख पर मृदु मुस्कान दृष्टि थी नीचे,

है कौन महाकवि जो कि चित्र यह खींचे। (जानकीजीवन, पृ0 56)

श्री सीता ने जयमाल कण्ठ में डाली

ज्यों इन्द्रचाप ज्यौं व्योम-बीच छविशाली।

पुष्पों की वर्षा हुई जनक मुस्काये

जैसे कि सिद्धि की स्वयं साधना पाये। (वही, 57)

तुलसी के मन अनुराग रंग भर आया,

लिखते-लिखते ही प्रेम शिथिल की काया

उनके दृग में सीताराम-विवाह समाया

सुख का समूह आनन्द रूप ले छाया। (वही, पृ0 59)

राम का रूप कवि को इतना अधिक आकृष्ट करता है कि वह कहीं उनके रूप और कहीं अनुभूतियों द्वारा उनके गुणों का चित्रण करने लगता है। राम के धवल धाम का चित्रण करते हुए कवि कहता है —

परम उच्च हिमालय शृंगसा अमल मानस सा छविराम था।

कल कलेवर विस्तृत वास्तु का धवल धाम सुशोभित राम का। (वही 154-6)

नवम सर्ग में राम के मुख का कलावलित चित्रण देखिए —

सुमुख की मृदुता मुस्कान में

मृदुलता प्रतिबिम्बित चित्त की।

वचन की अनुलोपम माधुरी

मधुरिमा महिमा मृदुकूल की। (वही, पृ0 158-11)

प्रसाद गुण :—

राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ स्वयंवर में सम्मिलित होने के लिए जनकपुर जा रहे हैं। मार्ग में सभी नर-नारी उन्हें देखकर प्रसन्न हो रहे हैं। इस प्रसंग में प्रसाद गुण की छटा पाठक के हृदय को मुग्ध कर देती है —

ओ राजकुमारों रथ न यहाँ लाए हो क्या?
अच्छा ही हुआ कि रथ पर तुम इस समय नहीं
उस पर होते तो रहते क्या तुम अभी यहाँ?
अश्व के चरण बढ़ते जाते आगे सत्वर
सचमुच तुम कितने रूपवान हो रहे रघुवर। (वही, पृ0 43)
हंसिनी हंस के संग मृणाल मरोड़ रही
देखो-देखो दोनों पंकज के तोड़ रही
पंखों की खुली हुई छाया हिलती जल में
मेरे तो दोनों लोचन दोनों उत्पल में। (वही, पृ0 281)

माधुर्य गुण :—

राम लक्ष्मण जनकपुर के बाहर एक वाटिका में फूल चुनने जाते हैं। वहाँ सीता गौरी पूजन के लिए जाती हैं। सीता रामको देखती हैं। दोनों की दृष्टि मिलती है। दोनों एक दूसरे को देखकर चकित हो जाते हैं —

सहसा लोचन उस ओर जहाँ श्रीराम मुदित
आँखें आँखों को देख देखकर हुई चकित
इतने सुंदर इतनी सुंदरी सुप्रेम महत्
जानी पहचानी सी आभा में अभारत
था ही अब तो दृग मिलन कि दोनों में संयम
इतनी विह्वलता कि किंचित् नहीं दृष्टि में भ्रम। (वही, पृ0 45)

उद्यान वहाँ था बड़ा मनोरम है भाई

फूलों की सुषमा चारों ओर वहाँ छाई।

× × ×

खिलखिला रहा है पद्म सरोवर भी सुन्दर

सुन्दर ही सुन्दर वहाँ यहाँ सर्वत्र वस्तु

कितने सुन्दर लगते सरोज के पत्र वस्तु (अद्भुतरामायण, पृ० 46)

बीते दिन की सुधियाँ प्यारी सी आ जातीं

शिव मंदिर की सुषमा आनन पर छितराती

× × ×

लगता कि दिखाई पड़ते चौतरे बने चकित

सी ना उनकी भी आँखों में अब तक अंकित। (वही, पृ० 57)

राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न; चारों भाइयों की बारात सजधज कर रास्ते पर निकली है, जिसे देखकर सब नर-नारी आनन्दित हो रहे हैं —

इन अनुपम दूल्हे दूल्हों को विलोककर मुग्ध नयन

मन पर करते हैं आकर्षण केकिरव-सुमन

वाद्य की मधुर-मंगल धुन सुन आनन्दित मन

उस क्षण से भी और अधिक सुन्दर यह क्षण।

× × ×

वर को निहार कर सुंदरियाँ लोचन-विभोर

हैं चार चन्द्र लेकिन असंख्य चितवन चकोर। (वही, पृ० 91)

---

## ग्यारहवाँ अध्याय

## भाषा-शैली

### भाषा का महत्व :-

प्रत्येक काव्य को काव्यत्व प्रदान करने वाली प्रमुख सहायिका उसकी भाषा होती है। यही कारण है कि भारतीय विद्वानों ने भाषा को काव्य का शरीर मानकर उसे सौष्ठव प्रदान करने वाले हेतुओं पर गम्भीरता से विचार किया है। क्षेमेन्द्र ने 'औचित्य विचार चर्चा' में भाषा के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए पद-औचित्य, वाक्य औचित्य, प्रबन्धार्थ औचित्य, ~~कारक-औचित्य~~, आदि पर विचार किया है। पाश्चात्य विद्वान् लेसिंग ने भाषा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि साहित्य का काव्य भाषा में नहीं होता, वरन् भाषा का ही होता है। इसी प्रकार कहा गया है कि मधुरतम शब्दों का पूर्ण सुव्यवस्थित रूप ही काव्य है। अरिस्टोटल ने इसी भाषा के औचित्य को Appropriateness of Language कहा है। लांजाइनस ने भी अपने ग्रन्थ ( Sublime ) में काव्य और भाषा के सम्बन्ध में विचार करते हुए शब्दौचित्य का उल्लेख किया है।

काव्योपयुक्त भाषा कतिपय विशिष्ट गुणों से अलंकृत होती है। उसकी उपयुक्तता शब्द-सौन्दर्य के सामंजस्य-विधान पर आधारित रहती है। इसी सामंजस्य विधान को दूसरे शब्दों में भाव और भाषा का सम्बन्ध कह सकते हैं। काव्य के भाव तत्व, कल्पना तत्व और बुद्धि तत्व का सम्बन्ध कवि की आन्तरिक क्रियाओं से होता है। इन आन्तरिक क्रियाओं द्वारा निर्मित काव्य रूप को प्रत्यक्ष उपस्थित करने का कार्य भाषा द्वारा ही सम्पन्न होता है। अतः कवि की कल्पना, भावना और विचारों को यथातथ्य रूप में प्रकट करने में ही भाषा की सफलता है।

1- भारतीय समीक्षा के सिद्धान्त, डा० गोविन्द त्रिगुणायत, प्रथम भाग, पृ० 111

## शैली

काव्य में शैली मनोगत भावों को मूर्तरूप प्रदान करने का सहज साधन है। शैली काव्य के बाह्य रूप को अलंकृत करने के साथ उसके आन्तरिक रूप को भी विकसित करती है। भाव-सौन्दर्य की सार्थकता शैलीगत सौन्दर्य पर ही निर्भर करती है। प्रत्येक लेखक की अन्तर्तम भावनाओं और व्यक्तित्व के अनुसार शैली अपना विशिष्ट महत्व रखती है। इस प्रकार शैली के दो प्रमुख तत्व हैं— एक व्यक्तित्व तत्व और दूसरा वस्तु तत्व। एक आन्तरिक है दूसरा बाह्य। पाश्चात्य और प्राच्य दोनों साहित्य शास्त्रों में इन दोनों तत्वों पर विस्तार से विवेचन हुआ है। यहाँ हम शैली के सम्बन्ध में विचार करेंगे।

### पाश्चात्य विद्वानों द्वारा शैली का विवेचन :-

पाश्चात्य साहित्य में शैली शब्द का निम्नांकित तीन अर्थों में प्रयोग हुआ है। मरे ने The problem of Style में इन तीनों अर्थों का उल्लेख किया है—

(1) अभिव्यक्ति की व्यक्तिगत विशेषताएँ, जिनसे किसी लेखक विशेष को सरलता से पहचाना जा सके।

(2) अभिव्यंजना के विधान।

(3) साहित्य की उच्चतम सिद्धि।

किन्तु शैली के उपर्युक्त तीनों ही अंग एकांगी प्रतीत होते हैं। वास्तव में इन तीनों अर्थों से समन्वित परिभाषा ही श्लाघनीय शैली की ओर संकेत कर सकती है, क्योंकि श्रेष्ठ शैली में ये तीनों ही गुण विद्यमान रहते हैं। उचित गुणों से युक्त शैली ही रचना को साहित्यिक रूप प्रदान करती है। अतः शैली पर निम्नलिखित शीर्षकों में विचार कर सकते हैं—

(1) शैली और व्यक्तित्व।

(2) शैली की वैधानिक विशेषताएँ।

(3) शैली के विकास की स्थितियाँ।

शैली की इन तीनों विशेषताओं को हडसन ने क्रमशः वैयक्तिक पक्ष, कला पक्ष और ऐतिहासिक पक्ष कहा है।

शैली और व्यक्तित्व :— लेखक की व्यक्तिगत विशेषताएँ, जो शैली में प्रतिबिम्बित होती हैं, उन्हें हडसन ने तीन कोटियों में नियोजित किया है —

(1) बौद्धिक तत्व

(2) भाव तत्व

(3) सौन्दर्यात्मक तत्व

इससे स्पष्ट होता है कि शैली लेखक की बुद्धि, भाव और कल्पना को प्रकाशित करती है।

(क) शैली का बौद्धिक तत्व :—

प्रत्येक रचना में बुद्धि तत्व का प्रयोग उसे जन साधारण की रुचि के अनुकूल वैधानिक रूप प्रदान करने के लिए किया जाता है। बुद्धि के कुछ प्रमुख गुण होते हैं, जो प्रत्येक उच्चकोटि की रचना के विधायक अंग हैं। इनमें से तीन आवश्यक गुण हैं —

(अ) यथार्थता

(ब) स्पष्टता (प्रसादगुण)

(स) उपयुक्तता (औचित्य)

हडसन शैली में इन तीनों गुणों का प्रयोग अनिवार्य मानते हैं। भावानुरूप शब्दों के उचित प्रयोग से यथार्थता, वाक्य-विन्यास में उपयुक्त शब्दयोजना

से स्पष्टता तथा उपयुक्तता, वाक्य विषय और उसके विन्यास; दोनों के सामंजस्य में निहित रहती है।

इन तीनों बौद्धिक विशेषताओं में से मरे ने The problem of Style में यथार्थता को सबसे अधिक महत्व देते हुए शैली में इसकी स्थिति अनिवार्य मानी है। शैली में यह बुद्धिगत यथार्थता कई रूपों में व्यक्त हो सकती है —

(अ) भावों और विचारों की यथार्थ प्रेषणीयता —'मेरी' शैली की भाषा की यह विशेषता मानती है, जिसके सहारे लेखक भावों और विचारों का यथार्थ प्रेषण करने में समर्थ होता है। इस प्रकार शैली में प्रेषण-विधान प्रमुख गुण है।

(ब) भावात्मक अभिव्यक्ति की उपयुक्तता :—

इस भावात्मक अभिव्यक्ति को उपयुक्त रूप देने का कार्य लेखक कलात्मक मूर्त्त विधान या बिम्बविधान के सहारे किया करते हैं। कलात्मक मूर्त्त विधान को मेरी ने Crystallisation कहा है। मरे ने भावात्मक अभिव्यक्ति की यथार्थता को ही सबसे अधिक महत्व दिया है? भावगत यथार्थता का समावेश करने की अनेक रीतियाँ हैं। इन सभी रीतियों को मूर्त्त-विधान के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

यथार्थ मूर्त्त-विधान की योजना के लिए कवि अप्रस्तुत विधान का प्रयोग करते हैं। यह कई रूपों में किया जा सकता है। इनमें से दो प्रमुख हैं —

(1) अलंकार रूप में।

(2) प्रतीक रूप में।

(स) भावगत यथार्थता या उपयुक्तता :—

उन्होंने ने यथार्थता पर विचार करते हुए भाव को मूर्तरूप प्रदान करने के लिए शब्दों के उपयुक्त प्रयोग पर ही बल दिया है। उपयुक्त शब्द-चयन द्वारा ही शैली में उसके अन्य गुणों का विकास देखा जा सकता है।

शब्दों की उपयुक्त योजना के लिए पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य में रूप विधायिनी शक्ति को विशेष महत्व दिया है।

इस प्रकार वर्ण्य विषय को प्रत्यक्षानुभूति के योग्य बनाना ही कुशल कलाकार का कार्य होना चाहिए। काव्य में इस कार्य की सफलता सुन्दर और उपयुक्त शब्द-विधान पर बहुत कुछ अवलम्बित है।

**(ब) शैली का भाव तत्व ,:—**

काव्य में बुद्धि मूलक तत्वों के अतिरिक्त कुछ हृदय मूलक तत्व भी होते हैं। हडसन ने Emotional Element और Aesthetic Element को इसी हृदयमूलक विशिष्ट तत्व के अन्तर्गत रखा है। कवि की भावनाएँ कुछ विशिष्ट गुणों से युक्त होने पर ही सफल मूर्त्त विधान कर सकती हैं। भावना पर भी व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ता है। अतः भाव को सौम्य रूप प्रदान करने के लिए भावाभिव्यंजन में निम्नलिखित विशेषताएँ आवश्यक हैं —

(अ) प्रवेग

(ब) शक्ति

(स) रम्यात्मकता

**(द) सौन्दर्य तत्व :—**

काव्य एक कला है। अतः कवि में सौन्दर्यानुभूति भी किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है। सौन्दर्य के विविध स्तर होते हैं। उच्चकोटि की सौन्दर्य-सृष्टि के लिए हडसन ने सौन्दर्य तत्व की निम्नलिखित विशेषताएँ बतलायी हैं —

(1) संगीतात्मकता

(2) आन्तरिक सौन्दर्य

(3) बाह्य सौन्दर्य

(4) आकर्षण

शैली में अपेक्षित बुद्धितत्व, भाव तत्व और सौन्दर्य तत्व इन तीनों का सम्बन्ध लेखक की प्रतिभा और व्यक्तित्व से होता है। लेखक की वैयक्तिक विशेषताओं के अनुरूप ही इन तत्वों का रूप-विधान होता है।

इस कथन के अनुसार शैली में जो बौद्धिक, भावात्मक और सौन्दर्यात्मक सभी विशेषताएँ लेखक की प्रतिभा और चरित्र सम्बन्धी विशेषताओं से प्रच्छन्न रूप से संयुक्त बनी रहती हैं। अतः शैली का वैज्ञानिक अध्ययन लेखक के व्यक्तित्व के अध्ययन में भी सहायक होता है।

इससे स्पष्ट है कि शैली के विधान और लेखक के व्यक्तित्व में घनिष्ठ सम्बन्ध है। मरे शैली को व्यक्तिगत अनुभूति की एक अभिव्यंजना मानते हैं। प्रत्येक लेखक की अनुभूति भिन्न कोटि की होती है। उसके अनुसार ही उसकी रचना का स्वरूप भी होता है। इस प्रकार व्यक्तित्व की छाप शैली का एक सहज स्वाभाविक गुण है।

इतना होते हुए भी शैली में व्यक्तित्व की प्रधानता अच्छी नहीं है। श्रेष्ठ शैली में व्यक्तित्वहीनता तथा व्यक्तित्वप्रधानता दोनों को महत्व दिया गया है। वास्तव में दोनों के सामंजस्य द्वारा ही उत्तम शैली का निर्माण किया जा सकता है। उसमें व्यक्तित्व का भी आभास मात्र ही यथेष्ट होता है। मरे ने व्यक्तित्वहीनता और व्यक्तित्व प्रधानता के सम्बन्ध में लिखा है —" शैली की पराकाष्ठा व्यक्तित्व के [illegible] अति प्रतिबिम्बन और अति अप्रतिबिम्बन के समन्वय में देखी जाती है। उसमें व्यक्तिगत और विविध भावों का सम्मिश्रण होता है। वास्तव में शैली में व्यक्तिगत अनुभवों का ही मूर्तरूप दिखाई पड़ता है।[1]

---

1- भारतीय समीक्षा के सिद्धान्त डा० गोविन्द त्रिगुणायत, पृ० 102

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा शैली तत्व की मीमांसा :—

शैली में व्यक्तिगत विशेषताओं के अतिरिक्त कुछ वैधानिक विशेषताएँ भी होती हैं। काव्य की अभिव्यंजना का शैली एक विशेष प्रकार की होती है। शैली की सार्थकता काव्य में अन्तर्भूत भाव या बिम्बांकन करने में है। यह बिम्बांकन पर ही आधारित है। शैली को सजीव बनाने के लिए लेखक अपनी रुचि के अनुसार भिन्न भिन्न शैलियों का अनुगमन करते हैं। शैली के इन विभिन्न रूपों पर कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने अपना विवेचन किया है, जो इस प्रकार है —

प्लेटो :— प्लेटो ने शैली के तीन भेद बताए हैं — सहज, प्रभावात्मक, विचित्र और मिश्र। प्लेटो तीसरी कोटि की शैली को श्रेष्ठ मानते हैं। ये व्यक्तित्व वादी हैं तथा शैली को लेखक के व्यक्तित्व की छाया मानते हैं।

अरिस्टोटिल :— इन्होंने वैधानिक रूप से दो प्रकार की शैलियाँ मानी हैं —

(1) साहित्य शैली (2) वादात्मक शैली।

अरिस्टोटिल ने शैली में दो गुण और चार प्रकार के दोषों का उल्लेख किया है। उसके दो गुण प्रसाद और औचित्य हैं तथा चार दोष निम्नांकित हैं :-

(1) समासों का प्रयोग

(2) अप्रचलित शब्दों का प्रयोग

(3) अनौचित्यपूर्ण विशेषणों का प्रयोग

(4) शैली का वर्ण्य-विषय से घनिष्ठ सम्बन्ध न होना।

शोपेन हर :—

शोपेन हर ने शैली पर दार्शनिक दृष्टि से विचार किया है। उसने शैली में तीन गुणों की स्थिति पर बल दिया है — (1) वैभव (2) सौन्दर्य और (3) इन दोनों के समन्वय से समुद्भूत सामग्री। शैली की कोटियों पर इन्होंने विचार नहीं

किया है। स्थूल रूप से उन्होंने शैली के दो ही भेद बतलाये हैं।

आलोचना :—

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा किये गये शैली के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि इन विद्वानों ने दो तत्त्व स्वीकार किये हैं — एक वस्तु पक्ष तथा दूसरा व्यक्तिपक्ष। इन दोनों को क्रमशः बाह्य और आन्तरिक पक्ष कह सकते हैं। शैली के आन्तरिक पक्ष के अन्तर्गत शैली में अभिव्यक्त रचनाकार की व्यक्तिगत सफलताओं और दुर्बलताओं की व्याख्या की जाती है और फिर उनसे शैली के स्वरूप में जो परिवर्तन आते हैं, उनकी अभिव्यक्ति कर दी जाती है। शैली के बाह्य पक्ष के अन्तर्गत अलंकार गुण आदि की स्थिति का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार पाश्चात्य शैली-तत्त्व-विवेचन में वस्तु और व्यक्ति इन दोनों पक्षों का सन्तुलन रहता है। प्रधानता की दृष्टि से व्यक्ति तत्त्व की महत्ता दिखाई देती है।

## भारतीय विद्वानों द्वारा शैली पर विचार

### संस्कृत में शैली तत्त्व की मीमांसा :—

शीलमेव स्वार्थे ष्यञ् ङीप् च लोपः अर्थात् शील शब्द में ष्यञ् और ङीप् प्रत्ययों के योग से शैली शब्द बना है। संस्कृत में शैली शब्द का प्रयोग उस अर्थ में कहीं नहीं मिलता, जिस अर्थ में आज पाश्चात्य साहित्य में वह रूढ़ है। मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक भट्ट ने इसका प्रयोग किया है, किन्तु वह स्वभाव-विशेषता का वाचक है, अंग्रेजी शब्द 'स्टाइल' का पर्याय नहीं।

संस्कृत काव्यशास्त्र में शैली से मिलते-जुलते कई शब्द मिलते हैं — जैसे — रीति, वृत्ति, प्रवृत्ति, मार्ग आदि। रीति, वृत्ति और प्रवृत्ति तीनों के स्वरूपों में परस्पर बड़ा भेद है। आचार्य राजशेखर ने इन तीनों के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है —"वेषविन्यासक्रमः प्रवृत्तिः विलासविन्यासक्रमो वृत्तिः वचनविन्यासक्रमो रीतिः।"

अर्थात् साहित्यवधू की वेशभूषा से प्रवृत्ति की, उसके विलास से वृत्ति की और वाणी-विन्यास से रीति की उत्पत्ति होती है।

<u>रीति और शैली</u> :— रीति शब्द 'रीङ् गतौ' धातु में क्तिन् प्रत्यय के योग से बना है। इसका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ हुआ मार्ग। साहित्य में रीति शब्द लेखक विशेष की रचना में पाये जाने वाले काव्यगुण तथा विशिष्ट पद रचना के अर्थ में रूढ़ हो गया है। वामन ने लिखा भी है —

"विशिष्टा पद रचना रीतिः। विशेषो गुणात्मा।" -(काव्यालंकार।/27-8)

अर्थात् माधुर्य आदि गुणों से युक्त विशिष्ट पदरचना को रीति कहते हैं और रीति का प्राण गुण है। गुणों का सम्बन्ध काव्य के प्राण से बताया गया है। आचार्य मम्मट ने स्पष्ट लिखा है —

'ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।

उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः।(काव्यप्रकाश 8/66)

अर्थात् गुण रस के प्रधान धर्म, उसके प्रमुख उत्कर्षक तथा अचल भाव से उसमें स्थित रहने वाले तत्त्व हैं। गुणों से वृत्तियों का भी सम्बन्ध है।

'यः काव्ये महतीं छायामनुगृह्णात्यसौ गुणः।'

अर्थात् गुण उसे कहते हैं, जो काव्य में विचित्र चमत्कार उत्पन्न कर देते हैं। काव्य में विचित्र चमत्कार वक्रोक्ति के कारण भी आता है। गुण यदि उसके चमत्कार की व्यंजना करते हैं, तो वक्रोक्ति उसके वास्तव चमत्कारों की व्यवस्था करती है। आनन्दवर्धन ने लिखा है —

वक्रोक्तिरूपा संघटना।"

यह संघटना रीतिमूलक ही होती है। उन्होंने 'पद संघटना रीतिः' भी लिखा है। अतः रीति के अन्तर्गत वक्रोक्ति को समेटा जा सकता है। वक्रोक्ति का आधार अलंकार भी होते हैं। दण्डी ने लिखा है —

'श्लेषः सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम्।'

(काव्यादर्श, 2/263)

अर्थात् वक्रोक्ति में श्लेष का चमत्कार प्रधान रहता है। दण्डी ने श्लेष को समस्त अलंकारों का वाचक माना है। रीति का सौन्दर्य औचित्य पर आधारित रहता है; क्योंकि रीति के जो नियामक तत्त्व हैं, उनका औचित्यपूर्ण होना आवश्यक होता है। औचित्य से विरहित गुण अलंकार और वक्रोक्ति सबका सौन्दर्य क्षीण हो जाता है। अतः रीति के नियामक तत्त्वों में हम औचित्य को ले सकते हैं।

इसी प्रसंग में पाक-चर्चा भी कर सकते हैं। पाक की व्याख्या करते हुए आचार्यों ने लिखा है —

तस्मात् रसोचितशब्दार्थसूक्तिनिबन्धनः पाकः।'

इसमें रस के औचित्यपूर्ण परिपाक की अवस्था को ही पाक की संज्ञा दी गयी है।

इस प्रकार रीति के अन्तर्गत हम रस, गुण, वक्रोक्ति अलंकार, औचित्य और पाक इन सबकी मीमांसा कर सकते हैं। अतः संस्कृत का रीति शब्द पारिभाषिक होते हुए भी किसी भी रचना के उन तमाम तत्त्वों के विवेचन को समेट सकता है, जो शैली के वस्तुपक्ष के अन्तर्गत आते हैं। शैली के व्यक्तिपक्ष के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। डा0 डे साहब ने रीति में शैली के व्यक्तिपक्ष की बोधकता स्वीकार नहीं की है। किन्तु डा0 नगेन्द्र ने उनके इस मत का खण्डन किया है। (देखिए हिन्दी काव्यालंकार सूत्र वृत्ति की भूमिका, पृ0 56)। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि रीति-विवेचन सर्वथा व्यक्तिपक्ष से रहित नहीं हो सकता। यदि वह व्यक्तिपक्ष से रहित होता, तो गुण, अलंकार, वृत्ति, वक्रोक्ति आदि के चयन-प्रयोग में कोई अन्तर ही न होता, किन्तु ऐसी बात नहीं दिखाई देती। 'भिन्नरुचिर्हि लोकः' की तरह इसके प्रयोगमें वैविध्य दिखलायी पड़ता है। इसीलिए दण्डी ने लिखा है —

तद्भेदास्तु न शक्यन्ते वक्तुं प्रति कवि स्थिताः।'

अर्थात् कवि की अपनी एक अलग शैली होती है, जिसका प्रवर्तक उसका व्यक्तित्व

होता है। शारदातनय ने तो कवियों को नई रीतियों के प्रवर्तन की प्रेरणा भी दी है। उन्होंने लिखा है कि वे कवि सचमुच अंधे हैं, जो दूसरे की रीतियों का अंधानुसरण करते हैं। उन्हें तो अपने लिए नवीन मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

अंधास्ते कवयो येषां पन्थाः क्षुण्णः परैर्भवेत्।
परेषां तु यदाक्रान्तः पन्थास्ते कवि कुञ्जराः।"

(पं० बलदेव उपाध्याय के भा०सा०शा० से उद्धृत)

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि भारतीय रीति शब्द आधुनिक शैली का पर्यायवाची है। सम्भवतः यही कारण है कि प्राचीन काल में शैली शब्द के प्रयोग के प्रचलन की आवश्यकता नहीं हुई।

भाषा के विवेचन के बिना शैली का अध्ययन पूर्ण नहीं कहा जा सकता। रस, गुण, वृत्ति, वक्रोक्ति, अलंकार, औचित्य, ध्वनि आदि शैली का प्राण-पक्ष तथा भाषा उसका शरीर पक्ष है।

इसके अन्तर्गत हम शैली के व्यक्तिपक्ष, शैली के भाषा पक्ष तथा शैली के वस्तु पक्ष पर विचार करेंगे।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम शैली, रचना विशेष के उस पक्ष को कहेंगे; जिसमें रचनाकार की व्यक्तिगत विशेषताएँ, उसके रचना सौन्दर्य, उस चमत्कार और अभिव्यक्ति-सौष्ठव का अध्ययन विशेष होता है।

**शैली का व्यक्तिपक्ष :—**

इस पक्ष का विवेचन भारतीय विद्वानों ने प्रायः नहीं किया है। पाश्चात्य विद्वानों ने इसका सूक्ष्म अध्ययन किया है जिसका कथन पीछे किया जा चुका है।

**शैली का वस्तुपक्ष :—** इसके अन्तर्गत रस, गुण, वृत्ति, अलंकार, वक्रोक्ति, औचित्य, आदि के सौन्दर्य का उद्घाटन किया जाता है। इन सब तत्वों की अलग-अलग काव्य सम्प्रदायों के अन्तर्गत विशद व्याख्या की गयी है।

इस पद की चमत्कार योजना पर संक्षेप में विचार किया जायेगा।

रमणीयता काव्य का प्राण माना गया है। पंडित राज जगन्नाथ के अनुसार —

'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।

रमणीयता च लोकोत्तरचमत्कारः।"

यह चमत्कार शब्दगत और अर्थगत दोनों में होता है। भारतीय आचार्यों ने चमत्कार को रस का सार तक मान लिया है। अनन्तवर्धनाचार्य ने चमत्कार को काव्य-रसास्वादन के अर्थ में प्रयुक्त किया है। महाकवि क्षेमेन्द्र ने भी इसे काव्य का प्राण माना है। अपने 'कवि-कण्ठाभरण' में एक स्थल पर उन्होंने लिखा है कि चमत्कार विहीन काव्य उसी प्रकार असुन्दर प्रतीत होता है, जिस प्रकार लावण्यहीन ललना-यौवन। उन्होंने चमत्कार दस प्रकार के माने हैं —

(1) अविचारित रमणीय (2) विचार्यमाण रमणीय (3) समस्त सूक्ति व्यापी रमणीय (4) सूक्तैक देशदृश्य। (5) शब्दगत चमत्कार (6) अर्थगत चमत्कार (7) शब्दार्थोभयगत रमणीयता (8) अलंकारगत रमणीयता (9) रसगत रमणीयता (10) रसालंकारोभयगत रमणीयता।

## आलोच्य महाकाव्यों में भाषा-शैली का स्वरूप

### 'जननायक'

भाषा :— कवि ने यथास्थान संस्कृतनिष्ठ और मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है।

संस्कृतनिष्ठ भाषा :— वैसे तो इस महाकाव्य में यत्र तत्र संस्कृत शब्दों का प्रयोग कहीं भी देखने को मिलता है —

सत्यवीर ज्ञानी कवि थे वे, भावुक किन्तु बलवान थे।

शब्द योग थे, आत्मज्ञान थे, ज्ञान-निधि थे बुद्धिमान थे।

## अंगराज

भाषा :— अंगराज की भाषा दुरूह और संस्कृतनिष्ठ है। उसमें कहीं कहीं अत्यन्त क्लिष्ट और संस्कृत के अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया है - जो सामान्य पाठक के लिए बोधगम्य नहीं है। जैसे — गवाक्षीर, रुक्मजाल, द्रुवन्ती, प्रधन्याय, आरवड़, नधर, कुड्मक, मकरेषु, कुसुमाल, यशोव, वृषस्यन्ती, वनीशा, वर्त्तीक, उरूशर्म, मत्सरणाद्रोवन, तरंग मालाकुल आदि शब्द।

प्रस्तुत काव्य में संस्कृत का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। कहीं कहीं उसकी भाषा देखकर किसी संस्कृत काव्य की भाषा का भ्रम हो जाता है। उदाहरणार्थ निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

तरुणांकुर सम्पन्न लताद्रुम कुंज सुपुष्पित।
इन्द्राम्बर सौन्दर्य धनी इन्दिन्दिर गुंजित (अंगराज, पृ० 1-3।)

संवाद शैली :— अंगराज में कहीं कहीं प्रश्नोत्तर शैली के माध्यम से सजीव संवाद योजना के दर्शन होते हैं। शल्य और कर्ण का निम्नांकित वार्तालाप द्रष्टव्य है —

बोला मद्रराज सप्रश्रय अंगराज से
सूतपुत्र सावधान होकर प्रहार करो
बार बार ध्यान करो, पार्थ के प्रताप का (अंगराज पृ० 220)

कर्ण वीरोचित उत्तर देते हुए कहता है —

स्यन्दन चढ़ाके हम डोंगे न डराके भी
दूर भवितव्यता से दीन दैवगति से। (वही, पृ० 221)

## वर्द्धमान

भाषा :— वर्द्धमान में अनुभूतिपक्ष जितना गौण है, कलापक्ष उतना ही प्रधान है। भाषा एकदम अव्यावहारिक, दुरूह और बोझिल है। उसमें कृत्रिमता अधिक है। स्वाभाविकता

## देवार्चन

देवार्चन में कवित्व की उत्कर्षता नहीं है। भाषा अभिधात्मक है, उसमें पाण्डित्य आकर्षण और समुन्नयन है। संस्कृत शब्दावली के प्रयोग में कवि ने तुलसी के पाण्डित्य को ही अधिक प्रदर्शित किया है। यहाँ संस्कृत की पंक्तियाँ और छंद तक प्रयुक्त हैं।'[1]

## 'रावण'

भाषा :— रावण की भाषा ब्रजभाषा है, जिसमें ओज और प्रवाह है। रामकथा ब्रजभाषा में कम ही लिखी गयी है। यहाँ ब्रजभाषा में दोहा, कवित्त, घनाक्षरी के अतिरिक्त दोहा-चौपाई का अनूठा प्रयोग भी प्राप्त होता है।

## 'जयभारत'

भाषा :— 'जयभारत' प्रौढ़ कवि की प्रौढ़ रचना है। यह उनके साहित्यिक क्रम-विकास और प्रतिनिधि रूप की सुंदर अभिव्यंजना करती है। इतने बृहदाकार काव्य की प्रवाहमयी शैली में रचना करना सहज बुद्धि साध्य नहीं है। डा० नगेन्द्र ने लिखा है कि कुन्तक ने प्रकरण-वक्रता और प्रबन्ध-वक्रता के जिन रमणीय रूपों का विवेचन किया है, प्रायः उनके सभी रोचक उदाहरण मैथिली शरण गुप्त के कथा-काव्यों में मिल जाते हैं।"[2] पर जयभारत में वह वक्रता कम है। गुप्त जी की शैली नाटकीयता एवं गीतात्मकता के कारण रोचक अवश्य है, लेकिन 'जयभारत' महाकाव्य में यही दुर्बल पक्ष बन गयी है।[3] साकेत से लगभग 23 वर्ष पश्चात् रचे जाने पर भी 'जयभारत' में शिल्प सौन्दर्य का वह वैभव नहीं है, जो साकेत में दृष्टि-गोचर होता है। कतिपय स्थानों पर संवादों में कुछ रोचकता और नाटकीयता आ गयी है।[4]

---

1- देवार्चन, पृ० 337
2- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 8 अगस्त, 1965 पृष्ठ 46
3- मैथिली शरणगुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता के रूप में डा० उमाकान्त गोयल, पृ० 182
4- जयभारत, पृ० 146-147

भाषा में संस्कृत का स्पष्ट प्रभाव है। संधि समासों का प्रयोग किया गया है —

'भूतोत्थित'[1]

इसी प्रकार कुछ शब्द ऐसे मिल जाते हैं, जो हमारे सामने संस्कृत भाषा का कहीं अखण्ड और कहीं खण्डित रूप प्रस्तुत कर देते हैं।

'शान्तं पापं।'[2]

शैली — (उपदेशात्मक शैली)

वन में द्रौपदी सत्यभामा को समझाती है —

नारी लेने नहीं लोक में देने ही आती है
अमृत भेंट रखकर वह उससे प्रभु-पद पा जाती है
पर देने में विनय न होकर जहाँ गर्व होता है
तप-त्याग का पर्व हमारा वहीं व्यर्थ होता है। (जयभारत, पृ0 91)

संवाद शैली —— जयभारत में कवि ने इस शैली का प्रयोग अधिक किया है। उर्वशी-अर्जुन संवाद, द्रौपदी-युधिष्ठिर संवाद आदि द्रष्टव्य है —

बीच में ही द्रौपदी कहने लगी यों,
वह भरी थी ही उमड़ बहने लगी यों —
देव भी क्या, भव्य है जब राज्य भोगी
दूसरे अपदस्थ अवश-अनाथ योगी। (जयभारत, पृ0 165)
देखि तप ही आज मेरा भी पुरातन
पर अनल की उष्णता भी जल चुका तन
हाय नाथ भले तुम्हें क्योंकि न भाया,
आप ही तुमने उसे है आज खाया। (जयभारत, पृ0 166)

---

1- जयभारत, पृ0 403

2- वही, पृ0 414

अयस्कान्त से हो सकता है आकर्षित जड़ लोहा।

किन्तु आत्मवश योगी का मन कब माया ने मोहा। (पार्वती, 110)

<u>सरलभाषा का प्रयोग</u> :-

इस काव्य में प्रसाद गुण सम्पन्न सरल भाषा का भी प्रयोग किया गया है। 'पार्वती-परिणय' नामक सर्ग में सभी कर्मकाण्ड हो रहे हैं। स्त्रियाँ रात्रि जागरण करती हुई मंगलगीत गा रही हैं -

ललनाओं की नींद स्वप्न-सी भागती,

विरहिणियों सी पल पल सोती जागती,

ले शिशुओं को अंक सुला कर गोद में

करतीं रुचिरालाप नर्म-मय मोद में। (वही, पृ0 231)

<u>भावानुगामिनी भाषा का प्रयोग</u> :-

इस काव्य में भाषा भावों का अनुगमन करती है। इसके उदाहरण सर्वत्र उपलब्ध होते हैं। देवोद्बोधन, तारकवध, तथा त्रिपुर-उद्धार आदि प्रसंगों में ओज गुण सम्पन्न भाषा का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार शिवदर्शन नामक सर्ग में हास-परिहास के अनेक उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं। व रजतपुर वर्णन में अधिकतर व्यंग्य का सहारा लिया गया है।

<u>संस्कृत के क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग</u> :— कवि ने निम्नांकित पंक्तियों में संस्कृत के ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जो हिन्दी में प्रायः प्रयुक्त नहीं होते हैं। यथा —

कर प्रदान पाद्यार्घ्य पूर्वक अतिथि की विधिवत् सपर्या। (पार्वती, 157)

ग्रहण कर इंगित सखी बोली विपश्चित ब्रह्मचारी (वही, 162)

कुसुम से आकीर्ण रम्य चतुष्क में कोमल गमन से। (वही, पृ0164)

## मीरा

भाषा :- मीरा महाकाव्य में प्रसंगानुसार क्लिष्ट एवं सरल दोनों प्रकार की भाषाओं के उदाहरण उपलब्ध होते हैं —

क्लिष्ट भाषा :—नव मरन्द सौरभ-विभोर प्रिय

नाच रही अलिनी अलबेली

भृंग पंखों से रेणु उड़ाते

अनडूबा नु कल्पवन सम्भव। (मीरा, पृ0 72)

कवि ने संस्कृत युक्त, परिमार्जित किन्तु बोधगम्य भाषा का भी प्रयोग किया है —

नयन-तारकाद्वीप को

अश्रुधार निरन्तर है बहाती।

यह निराशा-व्योम से घिर

हृदय धारा विरह-घन की

स्नेह रस प्लावित मधुर स्मृतियों

के व्रणों से व्यथित उर में

चिर विरह प्रवमान प्रेरित

धधकती ज्वाला मिलन की। (मीरा, पृ0 156)

वल्लरी-दल क्लान्त, निश्चल

शान्त निर्मल जल सरित् का

विरह से आपाहृदय भर

मुख छिपाए अँखों में। (मीरा, पृ0 148)

सिंधु सुखद कर-आँखों में

खिल उठी फिर यामिनी

नील नभ से आ मिली फिर

बिरचती सौदामिनी थी। (मीरा, 157)

अरुणिमा-तरुणिमा अलंकृत

जलधर घिर घिर विद्युत फिर फिर

ज्योतिर्मिलिप्य तन का हविष्य

मन गगन चिरंतन अचिर अजिर। (मीरा, पृ0 230)

सरल भाषा का प्रयोग :— कवि ने इस महाकाव्य में कहीं कहीं बहुत ही सरल तथा सरस भाषा का प्रयोग किया है। कवि प्रकृति का वर्णन कितनी सरल भाषा में करता है, यह इस पद से व्यक्त हो जाता है —

पवन के वक्ष पर वे नाचते घुंघरात

आँसुओं के साथ झुकाते नयन जलजात

हरे भरे प्रसन्न तरु की छाँह का सुख और

झुरमुटों में कह रहे विश्राम सुंदर मोर। (मीरा, 69)

शैली :—

चिन्तनप्रधान शैली :— कवि ने स्थान स्थान पर चिन्तन का आधार ग्रहण किया है। अतएव उनकी शैली चिन्तन प्रधान हो गयी है —

क्यों चिन्तन में ही उसकी

मौन दृष्टि आ पड़ी सुता पर

पानी फेर दिया आवेश

यों ही उसकी भी इच्छा पर। (वही, पृ0 23)

'एकलव्य'

भाषा :— एकलव्य की भाषा में प्रवाह और आवेग है। वह दुरूह भी है और सुबोध भी। कहीं कहीं पारम्परिक शब्दावली से दुरूहता पैदा हो गयी है। ऐसे

शब्दों में संस्कृत के व्याकरण शब्द, पुस्तकों के नाम, अलंकारों, छन्दों के नाम, धनुर्विद्या के पारिभाषिक शब्द आदि समाहित हैं —

हो गये विवर्ण एकलव्य के सुयोग से
जैसे वे कुहेलिकाः बने लिट् के आभास में। (एकलव्य, पृ० 136)
अपने कौरव की प्रतिज्ञा इन्द्रवज्रा - सी
सुनकर सदैव शार्दूल विक्रीड़ित हो। (एकलव्य, पृ० 141)

एकलव्य महाकाव्य की भाषा प्रांजल, एवं गठी हुई है। कहीं कहीं तो ऐसा लगता है कि कवि अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन कर रहा है — भीम और सुयोधन में गदा युद्ध हो रहा है कहीं गदा-युद्ध द्वन्द्वयुद्ध का रूप न धारण कर ले अतः द्रोणाचार्य अश्वत्थामा को दोनों के बीच द्वन्द्व को रोकने के लिए भेजते हैं —

आकर खड़े हुए वे दोनों ही के मध्य में
ज्यों दो अक्षरों के बीच चिन्ह हो विसर्ग का। (वही, पृ० 107)

यहाँ भीम और दुर्योधन के मध्य स्थित अश्वत्थामा को दो व्यंजनों के मध्य स्थित विसर्ग (:) के चिन्ह के समान बतलाया गया है, जो कवि के व्याकरण-ज्ञान को सूचित करता है।

संस्कृत निष्ठ प्रौढ़ भाषा का प्रयोग :—

आकर्षण, विकर्षण या कि पर्याकर्षण
अनुकर्षण या मुक्त मंडलीकरण हो।
पूरण हो, धारण हो या कि आसन्नपात
दूरपात, दृढ़पात द्वारा लक्ष्यवेध है।
एकलव्य ने अनेक धनुष बनाये हैं
यौगिक क्षिप्रा, शलाका, वर्तुल, व्याघाती हैं,

श्रमिक कौतुकिक हैं दुरूपात्तजन हैं,

दुरवेद्य हैं, विकर्षी और वांछित हैं। (एकलव्य, पृ0 208)

<u>शैली</u> :— एकलव्य संवाद शैली और उपदेशात्मक शैली आदि विभिन्न शैलियों के दर्शन होते हैं।

<u>संवाद शैली</u> :— कवि उस समय की सामाजिक, राजनीतिक दशा का वर्णन करते हुए समाज से प्रश्न करता है —

क्षत्रिय जाति ही है अकेली क्या धनुर्वेद में?

ढाल या तूणीर क्या उन्हीं का पृष्ठ भाग है?

धन्वा क्या उन्हीं की कीर्ति के समक्ष है झुका?

बाण क्या उन्हीं करों से फुफकारित नाग है?

मेरा अपराध क्या है?

वह कुछ भी नहीं।'

शूद्र जाति मेरी है?

'ना' बात यह भी नहीं,

फिर क्या बात है?

वीरवरः, तरुण कौन? शब्द सुने पार्थ के —

किसका आश्रम यह? और गुरु कौन है?

तीन वाक्य पार्थ-कंठ से उठे निनादों से।

एकलव्य चौंक उठा, देखा राजपुत्र हैं

उसने प्रणाम किया — स्वागत महाभाग,

आश्रम ग्रहण करें कष्ट हुआ आपको।

ये भी तीन वाक्य थे शिष्टता-वात्सल्य-धारा के

जिनसे विषाद आप ही विनष्ट होते हैं।

× × ×

कौन गुरू ?

मेरे गुरू आर्य श्रेष्ठ द्रोण हैं।

समासीन वे हैं इस आश्रम में सामने

उनको प्रणाम करें।' (एकलव्य, पृ० 252)

जय गुरू देव,

पार्थ?'

आर्य को प्रणाम है।

क्योंकि तुम जाग उठे,

— देव, सो सका नहीं।' (एकलव्य, पृ० 287)

यहाँ काव्य के साथ नाट्य संवादों का समन्वय सुन्दर और स्पष्ट है। ऐसे संवादों में सजीव अभिनय का गुण भी आ गया है। इससे काव्य की भाषा और शैली में आकर्षण भी उत्पन्न हो गया है। प्रथम सर्ग 'गुरुदक्षिणा' में संवादात्मक शैली अवलोकनीय है।[1]

<u>उपदेशात्मक शैली</u> :— द्रोणाचार्य राजकुमारों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि तुम सावधान होकर राजदण्ड की रक्षा करना —

राजपुत्र कुरु के,

देखना भविष्य में किसी भी अन्य व्यक्ति को

आना पड़े रक्षा के लिए न तुम वीरों की।

वीटिका की भाँति यदि राजदण्ड कूप में

पतित हुआ तो कौन ब्राह्मण निकालेगा?

क्षत्रिय हो, राजधर्म चाहता है तुमसे

जीवन धनुष पर तीर रखो प्राण का।

---

1- एकलव्य, सर्ग दक्षिणा, पृ० 302

अच्छा कुछ बोलो मत, केवल यही कहो,

तुम धनुर्वेद में या धनुर्वेद तुम में। (एकलव्य, पृ0 138)

<u>स्वकथन-प्रणाली</u> :— संकल्प नामक सर्ग में कवि ने स्वकथन प्रणाली का आश्रय लिया है। एकलव्य एकान्त में बैठा हुआ सोच रहा है —

आर्य गुरु द्रोण रे आर्य गुरु द्रोण ने

क्या कहा था जब मैं झुकाए शीश बैठा था —

किन्तु मेरे शिक्षण के वे ही अधिकारी हैं।

जो कि भूमि-पुत्र नहीं किन्तु भूमि-पति हैं।'

× × ×

इष्ट प्राप्ति शीघ्र हो मैं चाहता आशिष हूँ

ताकि मैं परख लूँ —

ओह शिला-खण्ड है। (एकलव्य, पृ0 175-184)

एकलव्य सामाजिक व्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए कहता है —

मैंने सुना विद्या-दान शूद्र हेतु है नहीं

सत्य है क्या देव यह सामाजिक मान्यता? (वही, पृ0 196)

शूद्र, धनुर्वेद अधिकारी यदि हो गये,

तो करेंगे आर्यवीरों रण में पराजित

क्योंकि अभी आर्यों का मात्र नवोदय है,

और शूद्र भारत के आदिम निवासी हैं।

× × ×

शूद्र कहा हम मूल देश-वासियों को क्यों?

इसलिए कि ये आर्य गौर वर्ण वाले हैं।

और हम श्यामवर्ण वन्य-वेश-धारी हैं।

अत्याचार सहते हैं इसलिए शूद्र हैं। (वही, पृ0 197)

किन्तु जब मानव की विद्या का निषेध हो,

बात क्या नहीं है क्रान्तिकारी बन जाने की?

जब द्रोणाचार्य ने अर्जुन से अपने स्वप्न की बात बतायी, तो वह मृगया के लिए तैयार होते हुए बार-बार सोचता है —

> बार-बार सोचता है, वह कौन शिष्य है,
> जो कि गुरुदेव को भी लीन करे चिन्ता में?
> बोधित की वाणी ब्राह्म वेला में भी उनकी,
> वह अल्प वार्तालाप कितना गम्भीर था।'
> ×          ×     ×          ×
> सिद्धि निज धनुर्वेद की लखी मैं मानूँगा,
> जब शिव के समक्ष धन्वी नतजानु हो
> मुझको करें प्रणाम - - - -(एकलव्य, पृ0 233-235)

<u>'तारकवध'</u>

<u>भाषा :—</u>

कवि का उद्देश्य तारकवध को लोकप्रिय महाकाव्य बनाना था, परन्तु भाषा की अपेक्षित सुकुमारता, स्वाभाविक अलंकृत शैली, कोमलता, मृदुता, जीवंतता और प्राणवत्ता के अभाव में वह एक अनुत्कृष्ट एवं असफल रचना है। नये प्रयोग और रसावगर्भित प्रतीक के लोभ ने उसमें कृत्रिमता और जड़ता भर दी है। नवोन्मेषशाली कल्पना द्वारा जैसे आकर्षक चित्र पाठकों के समक्ष उतारे जा सकते हैं, वे यहाँ दुर्लभ हैं। कहीं-कहीं नवीनता का दुराग्रह है, लेकिन उसमें प्राणवत्ता और सजीवता नहीं। मुहावरों का प्रयोग भी है। पत्नी के स्थान पर 'पाणिनी' बालकों के स्थान पर 'बालकिनी' जैसे अस्वाभाविक प्रयोग भी किये हैं। कहीं कहीं ग्रामीण शब्दों जायेंगे, लायेंगे आदि के प्रयोग से काव्य का आकर्षण घट गया है। कहीं कहीं संस्कृतनिष्ठ भाषा का भी प्रयोग किया गया है —

> आप्लावन मन्मथ मंडित कर।
> बाहुल्य प्रवाह तरंगायित कर।

भाल विराजित ललित शशिकर

भृकुटि भंग अंकित मन्वन्तर। ( तारकवध, पृ0 48 )

शैली :—

प्रतीकात्मक शैली :—

इसकी भाषा यत्नज प्रतीकों की दुरूहता और जटिलता से आक्रान्त है —

भोग लोभ रूपी तारक ही तुम पर अत्याचारी।

सनत्सम तुम किन्तु बनी जड़ ज्यों शारदा दुलारी।

× × × × ×

कार्तिकेय सम प्रणय हमारा तब उद्धार करेगा।

वैराग्योपम काम रूप धर नारद का विचरेगा।

सत्य रूप शिव सौंपे तुमको उन्हें सचेत करेगा। ( तारकवध, पृ026)

चेतन प्याले अधिक प्रबल दानव हो उतरे।

जो थे प्याले अल्प देव बनकर वह विचरे।

जिनकी अदम्य प्यास वही मानव कहलाये।

दैत्य देव गुण दोष मिलित जो लेकर आये। ( तारकवध, पृ0 65 )

उपदेशात्मक शैली :—

कवि ने इस शैली का प्रयोग स्थान-स्थान पर किया है। शान्ता के वनगमन के समय जब सभी लोग अत्यन्त आर्त्त हो जाते हैं, तब मुनि द्वारा कर्तव्य का बोध व्यापक कराया जाता है। इसी प्रकार जब शान्ता ऋषि के आश्रम में पहुँचती है, तब शृंगी ऋषि उसे जीवन का रहस्य बताते हैं। इसी प्रकार वे तारक को प्रेम का रहस्य बतलाते हैं और तारकासुर के राज्य पाने के बाद उसे शासन सम्बन्धी उचित-अनुचित कर्तव्य का बोध कराते हैं।

परिलक्षित होता है। जीवन-जगत् के शाश्वत आदर्शों, मूल्यों के मंगल तोरण 'वाणाम्बरी' -प्रासाद के पृष्ठों-द्वारों पर सुसज्जित हैं।[1]

' लोकायतन '

इसकी भाषा छायावादी जलकणों से आर्द्र और कहीं अनुभूति से तरलित है। यह अपनी साज-सज्जा में कवि की प्रतिनिधि रचना है। इसकी स्निग्ध, मसृण, शुभ्र स्फटिक शब्दराशि कवि के व्यक्तित्व का पूर्ण और सजीव बिम्ब प्रस्तुत करती है। स्वर्ण-के ही पन्त को स्वर्णिम शब्द ही अधिक भाते हैं। यहाँ वे एक बार फिर अपनी 'वीणा' गुंजन, पल्लव के पन्ने उलटते नजर पड़ते हैं — स्फटिक शुभ्र स्वर चिन्मय पावक, केवड़ी कुर्ती, हेम शांति, हेम समीर मर्मरित वन, मखमल ज्वाला, सोम मसृण क्षीर तन्द्रिल तलहटियाँ, फेनिल अंचल, अर्पित आदि शब्द इस बात को पुष्ट करते हैं। भाषा अत्यधिक प्रांजल और परिमार्जित है। यह संस्कृतनिष्ठ भी है, अप्रचलित संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी उपलब्ध होता है — यथा अत्यय, स्तवन, आस्तरण, पुय, ऊष, अजा अवाङ्मनस गोचर, विपर्यास, प्रयोजन, प्रययम्, वियत्, प्रत्ययन, अयुत आदि संस्कृत-व्याकरण-सम्मत विशेषणों का प्रयोग भी किया गया है। अनेक शब्द कवि-निर्मित भी हैं — विम्मल, म्हा, वात्सल्यता, ललित, मंजरित आदि। यहाँ कहीं स्वरलोप, स्वरागम और अक्षरागम के दर्शन होते हैं। सील, ठमकी, हुआ-हुआ, पैगम, आदि ग्रामीण लोक-जीवन, से संबद्ध लघुतर भाषाओं के शब्द भी प्रयुक्त हैं। लोकजीवन का महाकाव्य होने के कारण अनेक स्थलों पर शब्द-विधान ग्राम-चेतना से अनुप्राणित

---

1 (क) महानुभूति ही मानवता की है परिभाषा। वाणाम्बरी, पृ० 3

(ख) है वर्ष नहीं जो रोके तन्मय अनाचार। वही, पृ० 245

(ग) संसार में वियोग ही संयोग का तप है। वही, पृ० 35।

भारतभू उद्वेलित सागर,

कच्छप युग-नायक का दृढ़ पण,

जनगण बल अहि रज्जु कोटि फण

मंदर गिरि स्थिर लोक संगठन -

आत्म-शक्ति पशु बल जुट मथते

नव युग देवासुर संघर्षण

जब स्वराज्य लक्ष्मी प्रकटी तब

जनभू मंगल हित का शुभ क्षण (लोकायतन, पृ0 112)

<u>प्रौढ़ गम्भीर शैली</u> :—

जिसको देखा ऊर्ध्व-प्राण-पर हर ने

स्मर ने सहज नवाया मधु सायक शर

जिसे राम ने उभय छोर अतिक्रम कर

किया प्रीति नत धरा चेतना को वर। (वही, पृ07)

संस्कृति के नवनीत त्याग की

मूर्ति, अहिंसा ज्योति सत्यव्रत

लोक पुरुष स्थितप्रज्ञ स्नेहघन

युग नायक निष्काम कर्मरत

वज्र अस्थि तप दृढ़ तन पंजर

अग्नि वर्ण त्वच मंडित भास्वर

शील युक्त देवोपम विग्रह

मेरु शिखर से चलते भू पर। (वही, पृ0 52)

ऊर्ध्व अन्तर्मुख वह प्रभु शक्ति

बहिर्मुख जन भू जीवन शक्ति

वे भू प्राणों में विन्युक्त

प्रेम को मिले पूर्ण अभिव्यक्ति(लोकायतन, पृ0 424)

विश्व विकास निवर्तित-क्षण गोपन

तम तन्द्रा से जग जड़ जीवन, मन

मध्य चेतना सोपानों पर चढ़

रत्न रश्मि रचते विज्योतित भुवन।(लोकायतन, पृ0 553)

वर्णनात्मक शैली :—

कवि वाणी विदेश यात्रा करता है। वह अन्य देशों की विशेषताएँ बतलाता है। यहाँ पर कवि ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। कवि लंदन शहर का वर्णन करते हुए कहता है —

राजधानी यह जगत प्रसिद्ध

पूर्ण अपने में नव ग्रह-लोक

× × × ×

लोकप्रिय है शेक्सपियर की जन्म

दिया जिसने उस भू को धन्य।(वही, पृ0 397)

' झाँसी की रानी'

भाषा :— काव्य की भाषा सरल और गतिमान है। उर्दू शब्दों — कतार, तरज, मरदाना, निशानी, रवानी आदि का निःसंकोच प्रयोग किया गया है। भाषा में कतिपय शब्दों की पुनरावृत्ति अवश्य ही खटकती है। कवि ने शपथ शब्द का 14 बार प्रयोग किया है। इसीप्रकार आने सैं सिंह का पृ0 – 46 पर अनेक बार प्रयोग किया है। सस्वर — सर-सर, धर-धर, तड़-तड़, धाँय-धाँय, सन-सन आदि ऐसे ही शब्द हैं। पावस-वर्णन में एक स्थान पर 'ड' की आवृत्ति से नादात्मक बिंब उभरता है। तड़क-भड़क युक्त भाषा ओज, उत्साह, वीरता के भावों को उद्दीप्त करने वाली है। मुहावरों और कहावतों का प्रयोग भी स्वाभाविक है। कवि ने सुविधा-

<u>आत्मकथन शैली</u> :— महाभारती काव्य में कई स्थानों पर आत्मकथन शैली का प्रयोग किया गया है। विश्वामित्र के पास जाती हुई रम्भा अप्सरा अपने आप ही विचार करती है। इसी प्रकार शकुन्तला भी दुष्यन्त के वापस लौट जाने पर अनेक प्रकार की चिन्ता से ग्रसित है और अपने आप ही स्त्री को पुरुष से श्रेष्ठ बतलाती है —

हाय री नारी, तेरा हृदय
बहुत ही कोमल बहुत विशाल
भोगती तू ही अतिशय व्यथा —
और रचती राग का जाल।
× × × ×
असंभव तेरे बिना सुकेशि
सफल मानव जीवन-संपूर्ति (पृ0 379)
नहीं रुकता क्यों चिन्तन वेग?
आज क्यों मैं इतनी तल्लीन?
× × × ×
सिन्धु सी गुरु मेरी पुकार
तरंगों सी मैं तीव्र अधीर
बहुत गहराई में हूँ आज
कौन समझेगा मेरी पीर। (वही, पृ0 387)

शकुन्तला दुष्यन्त से रूष्ट होकर प्रवासिनी हो जाती है। भरत उनको रोकना चाहता है, किन्तु दुष्यन्त उसे डाँट देते हैं। अन्त में वे स्वयं ही बहुत दुखी होते हैं और तरह तरह से आत्म-प्रलाप करते हैं —

पड़ा हूँ आह पीड़ा सेज पर औषधि सुरोदर
विधुरता कष्ट से कलुषित किसी का कन्त हूँ। (वही, पृ0 487)

और भी —

तुम्हीं हो मेनका की मोहिनी तनया प्रणयिनी?

तुम्हीं दुष्यन्त की द्युति-नायिका चितवन विजयिनी।

क्षमा करना तपोवन कान्ति, उर ही जो गया था

गरज कर सिंह उस तम-गुहा में जो गया था। (पृ० 490)

भगवानराम

भाषा :— काव्य में संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया गया है। कहीं कहीं पर कवि ने शब्दों के रूप में परिवर्तन भी किये हैं। इसी तरह इयमेव शब्द का नया प्रयोग किया गया है —

दूर कर देख कहीं इयमेव वह अज्ञान्। (भगवानराम, पृ० 23)

सरल भाषा — कवि ने सरल प्रसाद गुण सम्पन्न भाषा का प्रयोग किया है —

सज्जित हुई विवाह वेदिका कुछ क्षण में
नन्दन ही आ गया उतर गृह प्रांगण में
पीत सित अवली रत्नों की पंक्ति बनी
विलुलित हुई वन्दिनी माला सुरभि सनी। (वही, पृ० 152)

संस्कृतनिष्ठ भाषा :— काव्य में संस्कृत निष्ठ भाषा का प्रयोग किया गया है। किन्तु इससे काव्य में दुरूहता नहीं आने पायी है। लक्ष्मण का वर्णन देखिए —

सितांशु राजपति कांति कांत
प्रचण्ड वे ही सम शक्तिशाली
अनन्य भ्रातपद पद्म सेवी
सुशील सौमित्र अनन्त से हैं।

इसी प्रकार राम के शील-सौन्दर्य का भी वर्णन किया गया है —

प्रफुल्ल इन्दीवर कान्तियुक्त

अखण्ड आनन्द स्वरूप दिव्य

महाजयी [illegible] मनस्वी

त्रिलोक श्रीराम विलसती हैं। (भगवान राम, पृ0 94)

अंगलालेपन युक्त सुवर्णित गंध-कुंकुमवासित

नृप सुतायें हुईं सब शुभ अंगिकलाभूषिता। (वही, पृ0 178)

## शैली

व्यंग्यात्मक शैली :— कवि ने इस शैली का प्रयोग कैकेयी-मंथरा के संवाद में किया है। मंथरा का वाक्चातुर्य अनुपम है। कवि ने इसको बड़े ही अच्छे ढंग से व्यक्त किया है। इस प्रकार की कुटिल स्त्रियाँ समाज में आज भी देखी जाती हैं। यहाँ पर यह भी दृष्टव्य है कि बातों का प्रभाव मनुष्य के ऊपर इतना होता है कि कुछ का कुछ हो जाता है। मन्थरा कैकेयी को समझा रही है —

देख सपत्नी सुत भाग्योदय तुम्हें हो रहा हर्ष।

नहीं देखती हो स्वपुत्र का अति दुःखद अपकर्ष

पशुओं को भी निज अपत्य की रक्षा का है ज्ञान

है शोचनीय कुबुद्धि तुम्हारी तुम्हें नहीं कुछ ध्यान। (वही, पृ0 34-182)

इसी प्रकार मन्थरा अनेक प्रकार से कैकेयी को व्यंग्य करती है और उसे अपने प्रभाव में ले आती है।

उपदेशात्मक शैली :— स्थान स्थान पर इस शैली का प्रयोग किया गया है। श्री राम कौशल्या को समझाते हैं —

जननि, विपत्ति में जो कान्त को त्यागती है,
वह पवि हृदया ही नारि होती नृशंसा

निज प्रभु पद को जो देवता मानती है,

सूत्र।

सुख विभव उसी के भाग्य में नित्य होता। (भगवानराम, पृ087)

निशि दिन निज भर्ता मंगलाकांक्षिणी को,

तप व्रत उपवासादि होते वृथा हैं। (वही, पृ0 87)

यहाँ, जब रावण मारीच के पास जाता है, तो मारीच उसे समझाता है -

हे राजेश कुविचार अनीतिकारी

होगा पुलस्त्य कुल केतु कुठारघाती।

रक्षार्थ आत्महित राज्य स्वबांधवों के

मेरे सुनो वचन अप्रिय पथ्य जैसे। (वही, पृ0 339-459)

त्याग दो कुविचार, मन को करो अपने शान्त।

नीतिपथ का अनुसरण कर रहो वैभव-कान्त।

पाप परदारा हरण से अन्य है न जघन्य

तुम स्वपत्नी-निरत होके नित्य सुख पर्जन्य। (वही, पृ0 341)

'जानकीजीवन(

भाषा :— खड़ी बोली के स्वरूप को अक्षुण्ण रखते हुए संस्कृत वर्णवृत्तों में काव्य-रचना करना बड़ा जटिल कार्य है। इस विषय में 'राष्ट्रीय आत्मा' जी को जो आशातीत सफलता प्राप्त हुई, वह अत्यन्त स्पृहणीय है। शब्दों के प्रयोग में विविध विकृतियों को बचाते हुए प्रभावपूर्ण ढंग से अपने भाव को स्पष्ट कर देना कवि की एक विशिष्ट सिद्धि मानी जाती है। उनकी संस्कृतनिष्ठ पदावली ने इन वर्णवृत्तों को जैसे स्वयं ही वरण कर लिया है। यथा —

चिन्ता-चिन्तित, श्री सुचिन्तिता चकिता

लज्जा लज्जित ज्यों ललाम लज्जालु थी।

अद्भुत गीतिकासी चमकत अद्भुतालु तो,

अशोकाश्रय में अकुल उत्फुल्लता।

× × ×

उद्भ्रान्ता व्यथिता विषादिता विह्वला

कान्तारें करुणाई क्लान्त धराम्बिनी।

वर्षा सी घनघोर वारिधारा बहा,

रोती आर्त निनाद गर्जना तर्जना। (जानकीजीवन, सर्ग 14, 62-71)

इनकी भाषा में कोमलता का गुण पाया जाता है। कहीं विषय के अनुरूप ही उनकी भाषा में एक विशिष्ट प्रकार की चित्रकला पायी जाती है। यथा —

क्रीड़ास्थली कुसुमित की मधुस्थली मिली,

वनभूमि रूप श्यामला बनी कला खिली।

शोभ मयी सुरम्य पुष्पवाटिका बनी,

आभा भरी अधित्यका उपत्यका बनी। (जानकीजीवन, सर्ग 19, पृ0 86)

'राष्ट्रीय आत्मा' जी का शब्द-विन्यास भावानुमोदन करता हुआ चलता है। उसमें एक अनुपम चित्रात्मकता का गुण विद्यमान रहता है। प्रसंगानुसार उसमें हम शैशव का सारल्य, कैशोर की मृदुलता, यौवन की दीप्ति एवं ओज तथा वार्धक्य का भावगाम्भीर्य पाते हैं।

## 'अरुणरामायण'

**भाषा :—**

**पात्रानुकूल भाषा :—** मन्थरा (कुबड़ी) की भाषा उसका प्रतिनिधित्व करती है —

कुबड़ी हूँ कपटी हूँ, कुरूप हूँ, काली हूँ,

दुष्टा घरफोड़ी गरल छिपाये व्याली हूँ,

सच भी बोलूँ तो कौन करे विश्वास यहाँ

नमता धरती ऊपर नीचे आकाश यहाँ। (अरुणरामायण, पृ0 131)

सभी जगह कुछ कुटनी औरतें होती हैं जो भोली भाली औरतों को अपने इन्द्रजाल में उलझाकर उनसे अपनी बात पूरी करवा लेती हैं। मन्थरा भी उनमें से एक है। मन्थरा और कैकेयी दोनोंविचार विमर्श कर रही हैं —

तू त्रिया चरित्र में निपुण दूर से आई है —
विद्युत चमका कर सघन मेघ सी छाई है।
अब तो समाप्त कर तू अपना रोना धोना।
आता है तुझे स्वयं ही अग्नि-बीज बोना।
तू नील अम्बर में सचमुच शनि के समान
फैला सकती तू कुशल कुटिलता का वितान।
× × ×
तू ऐसी चन्द्र-मणि जिसको मैंने ही जाना।
है नहीं निरर्थक तेरा सरि-तट पर आना। ([illegible], पृ० 21)
अंधा सी मेरी बुद्धि अघोरी-सा विचार
आँधी-सी मैं हूँ, बढ़ी नयन मुझमें अंगार। (वही, पृ० 25)

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग :—

इस खण्ड की भाषा संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली है —

सुन्दरित अयोध्या तोरण-वन्दनवारों से
गुंजित गुरु-पद गीतों की प्रिय झंकारों से
आमोद-प्रमोद निमग्न नगर उल्लास भरा,
राज्याभिषेक का समय स्वयं मधुमास-भरा। (वही, पृ० 11 6)
चन्दन का सुरभित पवन चतुर्दिक चलता-सा
पुष्पित अनुराग हृदय में स्वयं मचलता-सा। (वही, पृ०116)
आँखों से ओझल न हो स्वदेश का अक्षय वट
अविछिन्न-हिमालय चिर-पुरातन अरुण देश

शिव में ही विष्णु-प्रभा सुविष्णु में ही महेश

हरिहर-भावना में प्रकृत ज्योति-विस्तार एक

अक्षुण्ण रहे हैं राष्ट्रभूमि शाश्वत विवेक
विजयी हो तम-तन्द्रा पर अर्जित सत्य-प्राण।
मेरी यात्रा से हो भास्वरतर विहान। (वही, पृ0 194)

<u>देशज शब्दों का प्रयोग</u> :—

यद्यपि पूरा महाकाव्य खड़ी बोली में लिखा गया है, किन्तु कहीं कहीं पर कवि ने ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग किया है। परशुराम लक्ष्मण के लिए कौशिक से कह रहे हैं—

अपनी आँखे बंदर की तरह <u>गुरेर</u> रहा।

देखा तुमने यह कितना मुझको छेड़ रहा। (वही, पृ0 76)

<u>मुहावरेदार भाषा</u> ,— अधिक तो नहीं किन्तु कहीं कहीं पर कवि ने मुहावरेदार भाषा का प्रयोग कर दिया है, जिससे काव्य में चमत्कार की वृद्धि ही हुई है -

मैं वृद्ध पके फल-सा जाने कब गिर जाऊँ

ढीले शरीर से कितनी सेवा कर पाऊँ। (वही, पृ0 111)

दीपक के नीचे रहता जो तू वह तम है

जो सत्य नहीं जानता, वही तो तू भ्रम है। (वही, पृ0 119)

बन्धुत्व बिखर जाता नारी के खटपट से

चूने लगता पानी मुँह के फूटे घट से। (वही, पृ0 133)

मुझको यथार्थ से प्रेम नहीं भावुकता से,

मैंने न निकाला तेल कभी भी सिकता से। (वही, पृ0 246)

जितना हीरा कंचन को किसी कसौटी पर

जो पायेगी रे तभी परख उसकी सुंदर। (वही, पृ0 581)

शैली :—

उपदेशात्मक शैली :— तारा बालि के मरण के बाद विलाप कर रही है। राम उसे समझा रहे हैं —

बोले सीतापति, देह शोक मत करो देवि,
अपने मन में आलोकित आस्था भरो देवि,
अविनश्वर आत्मा के अधीन है जन्म-मरण
जिसके प्राणों पर पड़ा नहीं है काल-चरण। (अरुण रामायण, पृ0 414)

व्यंग्यात्मक शैली :— कवि ने स्थान-स्थान पर व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। रावण हनुमान से राम के लिए व्यंग्य कर रहा है —

तेरा प्रभु वह जिसने भू पर अवतार लिया —
जिसने माँ के से अपना मुकुट उतार दिया।
प्यारी माँ ने दिया जिसे वनवास-दण्ड
जिसकी इच्छा हो गई उसी दिन खण्ड-खण्ड।
कटवा भेजा जो नवयुवती के नाक-कान
रे वानर तेरा प्रभु वास्तव में है महान। (वही, पृ0 470)

जो कपि से प्राण मांगकर धनुष उठाता है
जो कभी-कभी छिपकर भी तीर चलाता है। (वही, पृ0 470)

प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग :—

कवि ने कैकेयी को अतिक्रान्त कामना, मंथरा को कलह, कौशल्या को ममता तथा सुमित्रा को साधना का प्रतीक माना है —

अतिक्रान्त कामना कैकेयी जब हठ करती,
तब धर्म-मार्ग पर भी कुनीति तम-घन धरती
ईर्ष्या के कारण रुक जाता राज्याभिषेक

देती है कलह-मन्थरा बाधाएँ अनेक

नयकल्मषपट से ग्रसित कौशल्या विचलित

साधना-पुनीता शुभ-आशान्त से चुप, चिन्तित। (अरुणरामायण, पृ0273)

लक्ष्मण वन में गज-सिंह युद्ध देखते हैं।उन्हें रावण में गज की परछाईं दिखायी देती है—

वन मग में लक्ष्मण ने देखा गज-सिंह युद्ध

देखा विस्फारित अनल नेत्र की धुक्-धुक्

आँखों में क्रूर दशानन की गज-परछाईं

वीरता लक्ष्य की लाल प्रभा की छितराई

गजबाहु स्थिति को भी तो लक्ष्मण ने देखा।

उग आई नयनों में रावण की स्मृति-रेखा

वन श्वान देखकर अनुसन्धान का हुआ स्मरण

मन के भूतल पर पड़ा दिखाई रण ही रण। (वही, पृ0396)

---

## उपसंहार

महाकाव्य का स्वरूप अन्य-काव्य-रूपों की अपेक्षा विशिष्ट और गरिमा-पूर्ण होता है। स्वातंत्र्योत्तर युग में लगभग 27 उल्लेखनीय महाकाव्यों का प्रणयन हुआ है। यह संख्या महत्त्वपूर्ण है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में नयी कविता की प्रमुखता रही है। इसके बावजूद 27 महाकाव्यों की रचना से यह सिद्ध होता है कि आधुनिक कवियों की प्रवृत्ति महाकाव्य-रचना की ओर रही है। प्राचीन काव्यशास्त्रियों ने महाकाव्य के जो लक्षण निर्धारित किये हैं, उनमें युगानुरूप परिवर्तन हुआ है। पहले देवता या सद्वंश में उत्पन्न धीरोदात्त नायक के गुणों से युक्त महापुरुष ही महाकाव्य का नायक हो सकता था, किन्तु अब महाकाव्य के नायक सामान्य व्यक्ति भी हो सकते हैं। आधुनिक कवियों ने एक ओर दैवी पात्रों( राम, कृष्ण, सीता, राधा आदि) को महाकाव्य का नायक बनाया है, तो दूसरी ओर रावण जैसे दुष्ट पात्र को भी महाकाव्य के नायक का पद प्रदान किया है। इसी प्रकार उपेक्षित, तिरस्कृत एवं कलंकित कहे जाने वाले पात्रों — एकलव्य और कर्ण आदि — को महाकाव्यों का नायक बनाकर व्यापक मानवतावादी जीवन दृष्टि का परिचय दिया गया है। इसके अतिरिक्त आधुनिक युग के अनेक महाकाव्य नायिका-प्रधान हैं, जैसे उर्मिला, दमयन्ती, मीरा, झाँसी की रानी, कैकेयी और उर्वशी आदि। इन काव्यों के माध्यम से कवियों ने नारी-जीवन की समस्याओं और आदर्शों को ही नहीं प्रस्तुत किया है, वरन् नारी-जागरण की महान् आन्दोलनकारी चेतना को भी अभिव्यक्त की है।

यद्यपि स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्यों के कथानक के प्रमुख स्रोत पुराण और इतिहास रहे हैं, तथापि समसामयिक जीवन की घटनाएँ परिस्थितियाँ एवं व्यक्तित्व भी महाकाव्य - रचना के आधार रहे हैं। उदाहरण के लिए रावण, जयभारत पार्वती, रश्मिरथी, एकलव्य, उर्मिला, उर्वशी, तारकवध, कुरुक्षेत्र, भारती, दमयन्ती,

और रामराज्य आदि महाकाव्यों की कथावस्तु पुराणों पर आधारित है, तो वर्द्धमान मीरा, झाँसी की रानी, बाणाम्बरी, आदि महाकाव्यों का कथानक इतिहासोद्भूत है। इसी प्रकार जननायक, जगदालोक, युगद्रष्टा,- प्रेमचन्द, लोकायतन और मानवेन्द्र आदि महाकाव्यों की रचना समसामयिक युग जीवन , युग-पुरुषों और युगीन घटनाओं पर आधारित है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्यों की कथावस्तु के इतिहास और पुराणों पर आधारित होने पर भी कथा-चयन की नवीनता, मौलिक प्रसंगों की उद्भावना और मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि महाकाव्यकारों के असाधारण रचना-सामर्थ्य का परिचय देती है।

आधुनिक महाकाव्यों में देश-प्रेम स्वजातीय गौरव, राष्ट्रीय सम्मान, मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा और समसामयिक जीवनादर्शों के अनुरूप युगीन प्रश्नों के समाधान की विराट् चेष्टा परिलक्षित होती है। इनमें शोषित और उपेक्षित वर्ग के व्यक्तियों के आक्रोश को व्यक्त किया गया है। समष्टिरूप से मानवतावादी जीवन-दर्शन, सांस्कृतिक निष्ठा, उत्थान मूलक जीवनादर्श, युगीन नारी-चेतना के मुखरित स्वर जन-जागृति का उद्घोष, रचना-शिल्प की नवीनता तथा चरित्रों की युगीन सन्दर्भों में अवतारणा; आधुनिक काल के महाकाव्यों की विशेषतायें रही हैं।

आचार्य भरत के अनुसार विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के योग से रस की अभिव्यक्ति होती है —' विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पत्तिः।' आचार्य विश्वनाथ के मत से सहृदय के हृदय में वासना रूप में संचित स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के योग से रस रूप में परिणत हो जाते हैं —

'विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।

रसतामेति रत्यादिः स्थायीभावः सचेतसाम्॥ (सा०द० 3/1)

संस्कृत और हिन्दी साहित्य में वात्सल्य सहित दस रसों को प्रतिष्ठा प्राप्त है। हमारे सभी आलोच्य महाकाव्यों में प्रसंगानुसार विभिन्न रसों की निष्पत्ति हुई है।

अलंकार शास्त्रियों ने अलंकार शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि जो शब्दार्थ को विभूषित करे, वह अलंकार है — 'अलंकरोतीति अलंकारः' अलंकार के तीन भेद होते हैं — शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकार। अलंकार शब्द - अर्थ के अस्थायी धर्म हैं और गुण रस के स्थायी धर्म हैं। सभी महाकाव्यों में यथावसर अलंकारों का सन्निवेश हुआ है। वक्रोक्ति एक अलंकार है, किन्तु कुन्तक ने वक्रोक्ति को काव्य का जीवन बतलाया है — 'वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्'। वक्रोक्ति या वक्रता छः प्रकार की बतलायी गयी है, वर्णविन्यास वक्रता, पदपूर्वार्द्ध वक्रता, पदपरार्द्ध वक्रता, वाक्य वक्रता, प्रकरण वक्रता और प्रबन्ध वक्रता। केवल जननायक, वर्द्धमान, जयभारत, पार्वती, तारकवध, लोकायतन, झाँसी की रानी, भगवानराम, जानकी जीवन और अरूण रामायण में ही वक्रोक्ति या वक्रता के दर्शन होते हैं।

विशिष्ट पद रचना को रीति कहते हैं — 'विशिष्टा पदरचना रीतिः।' रीति के चार रूप होते हैं, वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली, और लाटी। विलास - विन्यास क्रम को वृत्ति कहते हैं, विलास-विन्यासक्रमो वृत्तिः। वृत्तियाँ भी चार प्रकार की होती हैं, भारती, सात्वती, कैशिकी और आरभटी। जननायक, जयभारत, पार्वती मीरा, एकलव्य, तारकवध, लोकायतन, झाँसी की रानी, महाभारती, भगवानराम, जानकीजीवन, और अरूण रामायण में रीतियों और वृत्तियों के दर्शन होते हैं।

जहाँ वाचक शब्द अपने अभिधेयार्थ को गौण कर विशेष अर्थ को प्रकाशित करते हैं, वहाँ ध्वनि होती है —

'यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।

व्यङ्क्तः काव्य विशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।(ध्वन्या0 1/13)

आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश में ध्वनि के 10455 भेदों का उल्लेख किया है — शरेषु युगखेन्दवः।(काव्यप्रकाश 4/44)। आलोच्य महाकाव्यों में से केवल जननायक, वर्द्धमान, जयभारत, पार्वती, एकलव्य, तारकवध, लोकायतन, झाँसी की रानी, भगवानराम,

जानकीजीवन, और अरुणरामायण, में ही ध्वनि के उदाहरण उपलब्ध होते हैं।

उचित होने के भाव को औचित्य कहते हैं — 'उचितस्य च यो भावः तदौचित्यं प्रचक्षते।' आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य के 27 भेद बतलाये हैं। चरित्रगत औचित्य और प्रबन्धगत औचित्य की दृष्टि से प्रतिपाद्य महाकाव्यों की समीक्षा की गयी है। अंगराज में कौरवों को न्यायशील और पाण्डवों को अन्यायी बतलाकर कवि ने चारित्रगत औचित्य का उल्लंघन किया है। इसी प्रकार देवार्चन में शीतला से पुत्र की मृत्यु होने पर दुःखी पत्नी के प्रति तुलसी को कामासक्त वर्णित कर कवि ने चरित्रगत अनौचित्य का प्रदर्शन किया है। महाभारतीकार ने दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला के प्रत्याख्यान में वशिष्ठ की दुर्भेद-भावना को कारण बतलाया है। यहाँ प्रसंगगत अनौचित्य है। शेष महाकाव्यों में औचित्य का ~~[illegible]~~ ध्यान रखा गया है।

शब्द के अर्थ का बोध स्पष्ट कराने वाली शक्ति को शब्द-शक्ति कहते हैं। शब्द शक्ति के तीन प्रकार होते हैं, अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। प्रायः सभी आलोच्य महाकाव्यों में तीनों शब्द-शक्तियों के उदाहरण मिल जाते हैं। शूरता और उदारता आदि की भाँति जो रस रूपी आत्मा के स्थायी धर्म होते हैं, उन्हें काव्य-गुण कहते हैं—

ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः ।

उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ॥ (काव्यप्रकाश 8 /66)

तीन गुण होते हैं, ओज, प्रसाद और माधुर्य,। प्रायः सभी महाकाव्यों में ओज, प्रसाद और माधुर्य गुण के उदाहरण उपलब्ध हो जाते हैं।

एकादश अध्याय में सभी प्रतिपाद्य महाकाव्यों, की भाषा-शैली की समीक्षा की गयी है। वर्द्धमान, देवार्चन, पार्वती, एकलव्य, कामाम्बरी, महाभारती और भगवान राम में क्लिष्ट और अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया है। शेष सभी महाकाव्यों की भाषा भावानुकूल है। जननायक, अंगराज और जयभारत में संवाद-शैली मीरा में चिन्तन प्रधान शैली, एकलव्य में संवाद शैली और स्वकथन शैली, तारकवध

में उपदेशात्मक शैली, कादम्बरी में पद्यात्मक शैली, भगवानराम में कथात्मक शैली और उपदेशात्मक शैली तथा अरुणरामायण में उपदेशात्मक शैली के दर्शन होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर युग में अनेक उल्लेखनीय महाकाव्यों का सृजन हुआ है और उनमें काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का यथासंभव सन्निवेश भी हुआ है। यह शुभ लक्षण है; क्योंकि उदात्त जीवन-दर्शन का प्रतिपादन करने वाले और महत् उद्देश्य की व्यंजना करने वाले महाकाव्य साहित्य की अमूल्य निधि होते हैं। अस्तु, हम कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य का भविष्य उज्ज्वल एवं मंगलमय है।

---

## उपस्थारिय ग्रन्थ

### संस्कृत ग्रन्थसूची :-


| | |
|---|---|
| अलंकार सर्वस्व | रूय्यक |
| अग्निपुराण | |
| औचित्य विचार चर्चा | क्षेमेन्द्र |
| उज्ज्वल नीलमणि | रूप गोस्वामी |
| काव्यप्रकाश | मम्मट |
| काव्य मीमांसा | राजशेखर |
| काव्यादर्श | दण्डी |
| काव्यालंकार | रूद्रट |
| काव्या लंकार | भामह |
| काव्या लंकार सूत्र | वामन |
| काव्यानुशासन | हेमचन्द्र |
| कुवलयानन्द | अप्पय दीक्षित |
| चन्द्रालोक | जयदेव |
| दशरूपक | धनंजय |
| नाट्यशास्त्र | भरत |
| ध्वन्यालोक | आनन्दवर्धन |
| रस गंगाधर | जगन्नाथ |
| वक्रोक्तिजीवित | कुन्तक |
| साहित्यदर्पण | विश्वनाथ |

## हिन्दी ग्रन्थ-सूची

अरस्तू का काव्य शास्त्र — डा० नगेन्द्र

आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प-विधान — डा० श्यामनन्दन किशोर — सरस्वती पुस्तक सदन आगरा

आधुनिक हिन्दी महाकाव्य — डा० वीणा शर्मा, अनुपम प्रकाशन जयपुर।

अवधपुरी

आधुनिक प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्य — डा० देवीप्रसाद गुप्त, पंचशील प्रकाशन, जयपुर

आधुनिक हिन्दी काव्य में रसस्थितियाँ — डा० निर्मला जैन।

काव्यशास्त्र — डा० भगीरथ मिश्र।

छायावादोत्तर हिन्दी प्रबन्ध काव्यों का सांस्कृतिक अनुशीलन — डा० शिवकुमार दयाल अवस्थी, सरस्वती प्रकाशन मन्दिर इलाहाबाद।

बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य — डा० प्रतिपाल सिंह

भारतीय साहित्य शास्त्र कोश — डा० राजवंश सहाय 'हीरा' बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना।

भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा — डा० नगेन्द्र।

मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य — डा० कमलाकान्त पाठक।

हिन्दी महाकाव्य : सिद्धान्त और मूल्यांकन — डा० देवी प्रसाद गुप्त, पंचशील प्रकाशन जयपुर

हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास — डा० शम्भूनाथ सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्त० वाराणसी।

हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य — डा० गोविन्दराम शर्मा — हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली

रस सिद्धान्त — डा० नगेन्द्र।

रामचरित मानस का काव्यशास्त्रीय अध्ययन — डा० राजकुमार पाण्डेय, अनुसन्धान प्रकाशन कानपुर।

वाङ्मय विमर्श — विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।

शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, भाग 1 व 2 — डा० गोविन्द त्रिगुणायत, भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली।